प्रस्तावना ।

सम्यक्त्व-कौमुदीमें सम्यक्त्व प्राप्त करनेवालोंकी आठ कथाएँ हैं । कथाएँ सब धार्मिक हैं, प्राचीन हैं । इसलिए उनके सम्बन्धमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं । हाँ इतना तब भी कहेंगे कि किसी किसी कथाकी * रचना अधिक अत्युक्तिको लिए की गई है और हमारा विश्वास है कि प्राचीन कथाका रूप ऐसा न होगा । हमारा यह कथन सम्भव है कुछ भाइयोंको पसन्द न पड़े, पर उनसे हमारा अनुरोध है कि वे एक बार इस विषय पर शान्तिके साथ विचार करें । तब उन्हें हमारे कथनकी प्रमाणताका विश्वास हो सकेगा ।

इसका संस्कृत-साहित्य साधारण श्रेणीका है । संस्कृत-भाषामें प्रवेश करनेकी इच्छा करनेवाले इसके द्वारा थोड़ा-बहुत लाभ जरूर उठा सकते हैं । इसमें एक विशेषता है । वह यह कि 'पंचतंत्र' 'हितोपदेश' आदिकी तरह इसमें भी प्रसंग प्रसंग पर अन्य अन्य ग्रन्थोंकी नीतियाँ उद्धृत की गई हैं । और वे प्रायः उपयोगी हैं । इस योजनासे मूलग्रन्थकी शोभा और भी बढ़ गई है ।

अनुवादके सम्बन्धमें मुझे यह कहना है कि यह मेरा पहला ही प्रयत्न है । इसमें त्रुटियाँ रह जाना आश्चर्य नहीं । मुझसे जहाँतक हुआ मैंने इसे सरल बनानेकी कोशिश की है । मैं अपने इस कार्यमें मेरे मित्र श्रीयुत पं० उदयलालजी काशलीवालका उपकार माने बिना नहीं रह सकता कि

---

* इसके लिए 'पद्मलताकी कथा' को पढ़िए ।

जिन्होंने संस्कृत पुस्तकका सम्पादन और अनुवादके संशोधनमें मुझे बड़ी सहायता दी है।

मूल पुस्तकमें एक-दो प्राकृत गाथाएँ तथा संस्कृत श्लोक ऐसे आये हैं कि वे प्रयत्न करने पर भी समझमें न आ सके। हो सकता है कि उनका पाठ बहुत अशुद्ध हो। इसलिए वे छोड़ दिये गये हैं। समझदार पाठक उन्हें समझनेका यत्न करें।

अन्तमें मैं 'हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय' के मालिकोंका अत्यंत आभारी हूँ कि जिन्होंने मेरी इस अनुवादित पुस्तकको प्रकाशित कर मेरा उत्साह बढ़ाया और मेरे प्रथम प्रयत्नको सफल किया।

ता० २०-८-१५ ई०

विनीत--
तुलसीराम काव्यतीर्थ।

श्रीवीतरागाय नमः।

सम्यक्त्व-कौमुदी।

जगतके प्रभु श्रीवर्धमान जिनेन्द्रको नमस्कार कर मैं सम्यक्त्वकौमुदी नामक ग्रन्थको इसलिए बनाता हूँ कि जिससे जीवोंको सम्यक्त्व गुणकी प्राप्ति हो।

समस्त शास्त्रोंके सागर गौतम गणधरको और सर्वज्ञ भगवानके मुखारविन्दसे निकली हुई सरस्वती देवीकी मैं स्तुति करता हूं।

संपूर्ण शास्त्रोंके पारगामी गुरुओंकी शुद्ध मन-वचन-कायसे भक्ति करता हूं, जिनके प्रसादसे हृदयकी सब शङ्का मिट जाती है।

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगध नामका देश है। इस देशमें इन्द्रपुरीके समान राजगृह नगर है। इस नगरमें बड़े बड़े विशाल जिनमन्दिर थे। उनमें हर समय उत्सव हुआ करता था। वहांके श्रावक जिनधर्मके अनुसार चारित्रका पालन करते थे और आनन्दके साथ रहते थे। राजगृहके राजा श्रेणिक थे। इनके दरबारमें देश देशान्तरोंके राजा रहा करते

थे। श्रेणिक संपूर्ण कलाओंमें प्रवीण, और राजनीतिके अच्छे विद्वान् थे। श्रेणिककी पट्टरानीका नाम चेलनी था। चेलिनी भी सब गुणोंसे भरपूर थी, जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाली थी और परम सुन्दरी थी। राजगृहमें श्रेणिक इन्द्र जैसी शोभाको पाते थे।

एक समय वनपाल वनमें घूम रहा था। उसने देखा कि जिन जीवोंका परस्परमें विरोध है, वे सब घोड़ा और भैंसा, चूहा और बिल्ली, साँप और नेवला, इकट्ठे हो रहे हैं। यह देख वनपाल अचम्भेमें पड़ गया। वह विचारने लगा कि यह क्या है? इन सबका इकट्ठा होना शुभ है या अशुभ? इसी विचारसे वह घूमने लगा। इतनेहीमें इसने विपुलाचल पर्वतके ऊपर अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्धमान भगवान्का समवसरण देखा। समवसरण देवों और उनके जय जय शब्दों द्वारा बहुत ही शोभाको धारण किये हुए था, दशों दिशायें गूँज रही थीं। यह सब देख वनपाल प्रसन्न होकर विचारने लगा-मैंने जो एक ही स्थानमें इन परस्पर विरोधी जीवोंका समागम देखा, वह सब इन ही महापुरुषका माहात्म्य जान पड़ता है। देखो, यह हरिणी सिंहके बच्चेको अपना बालक समझ कर और यह गाय भेड़ियेके बच्चेको अपना बछड़ा जानकर प्रेम कर रही है-उसे चाट रही है। प्रेमके वश हो बिल्ली हंसके बच्चेसे और नागिन मोरसे स्नेह कर रही है। यही नहीं किन्तु और भी परस्पर विरोधी जीव,

इन पाप और मोह रहित शान्त स्वरूप, परमयोगी श्रीवर्धमान भगवान्‌की शरण लेकर वैराग्यभाव धारण कर और मद रहित हो अपने अपने स्वाभाविक वैरको छोड़ रहे हैं।

इस प्रकार विचार कर वनपाल बिना ऋतुके फले फूल फलोंको लेकर महामंडलेश्वर राजाओंके साथ बैठे हुए श्रेणिक महाराजके पास पहुँचा और उन फलोंको उनके हाथमें भेंट रखकर बोला—राजराजेश्वर, आपके पुण्यप्रतापसे विपुलाचल पर्वत पर श्रीवर्धमान भगवानका समवसरण आया है। यह सुन कर श्रेणिक सिंहासनसे उठे और जिस दिशामें समवसरण था उस दिशामें सात पाँव चल कर उन्होंने आठों अंगोंसे भगवानको नमस्कार किया। और इस शुभ समाचार लानेवाले वनपाल पर बहुत खुश होकर उन्होंने उसे बड़े प्रेमसे अपने शरीर परके सब वस्त्र और आभूषण दे दिये। वनपाल बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—राजाका, देवका, गुरुका और विशेष कर ज्योतिषीका रीते हाथों दर्शन नहीं करना चाहिए; क्योंकि फलसे ही फलकी प्राप्ति होती है। भावार्थ—मैंने फल देकर राजाका दर्शन किया, इसलिए मुझे फलकी प्राप्ति हुई।

इसके बाद ही नगरमें आनन्द भेरी दिलवा कर श्रेणिक अपने परिवार तथा नगरके और और लोगोंके साथ लिए बड़े उत्साहसे समवसरणमें गये। वहाँ उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌की पूजा तथा स्तुति की कि हे देव, आपके चरणकम-

लोंके दर्शनसे आज मेरे दोनों नेत्र सफल हुए; हे त्रैलोक्य-तिलक, आज यह संसाररूपी समुद्र मुझे चुल्लूके समान जान पड़ता है। इसी तरह और अनेक प्रकारसे श्रीवर्धमान भगवान्की और श्रीगौतम स्वामीकी स्तुति कर वे मनुष्योंके कोठेमें बैठ गये। वहाँ उन्होंने भगवान्के उपदेश-रूपी अमृतका पान किया। पीछे अवसर देखकर श्रेणिकने गौतमस्वामीसे निवेदन किया—हे स्वामिन्, आप सम्यक्त्व-कौमुदी-कथाको कहिए। यह सुनकर गौतमस्वामी बोले—

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सौर नामका एक देश है। इस देशमें उत्तरमथुरा नामकी नगरी है। इस नगरीमें पद्मोदय नामका राजा था। यशोमति उसकी रानी और उदितोदय नामका उसका पुत्र था। मंत्रीका नाम संभिन्नमति था। मंत्रीकी सुप्रभा नामकी स्त्री तथा सुबुद्धि नामका पुत्र था। इसी नगरीमें अंजनगुटिका आदि विद्याओंमें प्रवीण रूपखुर नामका एक चोर रहता था। इसकी स्त्रीका नाम रूपखुरा था। इसके एक पुत्र था। उसका नाम सुवर्णखुर था। यहीं जिनदत्त नामका एक राजसेठ रहता था। सेठकी स्त्रीका नाम जिनमति और पुत्रका नाम अर्हद्दास था। अर्हद्दासकी आठ स्त्रियां थीं। उनके नाम थे—मित्रश्री, चन्दनश्री, विष्णुश्री, नागश्री, पद्मलता, कनकलता, विद्युल्लता और कुंदलता। इन आठोंका परस्परमें बड़ा प्रेम था। तथा ये दया, दान, और तपमें सदा लगी रहती थीं।

उत्तरमथुराके राजा पद्मोदयने अपना राज्य उदितो-दय पुत्रको देकर जिनदीक्षा लेली। उदितोदय सुखसे राज्य करने लगा। उदितोदय अपने बगीचेमें प्रतिवर्ष कौ-मुदी महोत्सव करवाता था। जब कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णमासीका दिन आया तब उसने नगरमें ढौंडी पिटवाई कि आज सारे शहर की स्त्रियाँ वनक्रीडाके लिए बागमें जावें और रातभर वहीं रहें तथा सब लोग शहरमें रहें। यदि कोई भी बागमें स्त्रियोंके पास जायगा तो वह राजद्रोही ठहरेगा। राजाने इतना और भी कहलाया था कि नृत्य, गीत, विनोद भरी, वनक्रीडा करके जब स्त्रियां बागसे लौटें तब बड़े ही आमोद प्रमोदके साथ वे शहरमें आवें। इस घोषणा-को सुन कर कोई भी बगीचेमें नहीं गया। शहरके सब लोगोंने राजाकी आज्ञाका पालन किया। इससे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। राजाने तब इस नीतिका स्मरण किया—पूज्य जनों-का तिरस्कार, और स्त्रियोंकी पतिसे अलहदी शय्या जिस तरह मरणके समान है उसी तरह राजाओंको अपनी आज्ञा-का भंग होना मरणके समान है।

तथा जिस तरह तपका फल ब्रह्मचर्य है, विद्याका फल ज्ञानकी प्राप्ति है, और धनका फल दान और भोगोपभोग है, उसी तरह राज्यका भी यही फल है कि इस राज्यमें राजाकी आज्ञाका भंग तथा मंत्रका भेद न हो। इत्यादि विचार कर राजाने चारों दिशाओंमें सामन्तोंका पहरा बैठा

दिया, जो अपने काममें सदा सावधान रहा करते थे। क्यों-कि जिस तरह नदियोंका, नखवाले और सींगवाले जान-वरोंका तथा हथयारवाले लोगोंका विश्वास नहीं करना चाहिए उसी तरह स्त्रियोंका और राजकुलका भी विश्वास नहीं करना चाहिए। जब राजाकी आज्ञासे शहरकी सब स्त्रियाँ नानाभांति शृंगार कर बागमें जानेको तैयार हुईं तब राजाने शहरके सब मनुष्योंको बुला कर कहा—आप लोग शहरहीमें अमोद प्रमोद और क्रीड़ा-विनोद करें—आनंद म-नावें। यह सुनकर अर्हद्दास राजसेठने विचारा कि आज मैं अपने परिवारके साथ जिनमन्दिरोंमें पूजा और वन्दना कैसे करूँगा। इसके बाद ही उसने एक प्रयत्न किया। वह यह कि एक सोनेकी थालीमें बहुतसे कीमती और सुन्दर रत्नोंको भरकर वह राजाके पास गया। राजाके आगे उस थालीको रख कर उसने प्रणाम किया। राजाने सेठसे पूछा—सेठ महाशय, कहिए कैसे आपका आना हुआ? सेठ विनयसे झुक गये मस्तक पर अंजलि लगाकर बोला-महाराज, मैंने आज श्रीवर्धमान भगवान्‌के पास चार महीने-का व्रत लिया है। तथा यह नियम भी लिया है कि पाँच दिनमें सम्पूर्ण जिनमन्दिरोंकी और साधुओंकी विधि पू-र्वक वन्दना करूँगा तथा रातको एक मन्दिरमें महापूजा करूँगा और गीत नृत्यादिक उत्सव करूँगा। इसलिए मुझे आप ऐसी आज्ञा दीजिए कि जिसमें मेरे नियमका भंग न हो

और आपकी आज्ञाका भी मैं पालन कर सकूँ। यह सुनकर राजाने मनमें विचारा कि इस सेठकी धर्ममें बड़ी ही श्रद्धा है। इस पुण्यात्मासे तो मेरे शहरकी शोभा है।

इत्यादि विचार कर राजा बोला—सेठ महाशय, तुम धन्य हो, तुम कृतार्थ हो, तुम्हारा ही मनुष्य जन्म सफल है, जो तुम ऐसे कौमुदी-महोत्सवके समयमें भी धर्मके लिए उद्यम कर रहे हो। सचमुच तुमसे मेरे राज्यकी शोभा है। आप जाइए और निडर होकर अपने परिवारके साथ सब धर्म कार्योंको कीजिए। मैं भी तुम्हारे इस कार्यकी अनुमोदना करता हूँ। ऐसा कह कर राजाने उस सोनेकी थालीको भी लौटा दिया तथा अपनी ओरसे अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र और आभूषण भेंटकर सेठको विदा किया। सेठ बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने फिर बड़े आनन्दसे अपने परिवारके साथ दिनमें प्रतिमा-वन्दनादि कार्य समाप्त किया, रातको अपने घरके चैत्यालयमें पूजा की तथा जिनेन्द्र-भगवानके सामने बड़ी भक्तिसे देवोंके भी मनको हरने-वाला और राजाओंको दुर्लभ उत्सव मनाया। सेठकी आठों स्त्रियोंने भी धार्मिकबुद्धिसे अपने पतिका अनुकरण किया। वे भी उस उत्सवमें मधुर स्वरसे जिनेन्द्र भगवानका गुणगान करने लगीं, ताल, मँजीरे और दुन्दुभि आदि बाजोंको बजाने लगीं और नृत्य भी करने लगीं। सहरके और और लोगोंने भी आमोद प्रमोदसे वह दिन बिताया। रातको वे सब अपने अपने घरोंमें ही रहे।

इसी समय निर्मळ चन्द्रमाका उदय हुआ। राजाको कामने सताया। उसे अपनी प्रियाकी याद आई, पर रानी महलमें न थी। इसलिए उसके हृदयमें चिन्ता उत्पन्न हो गई और निद्रा यह समझ कर, कि मेरी दूसरी सोत आगई, भाग गई। बहुत चेष्टा करने पर भी जब निद्रा न आई तब राजाने मंत्रीको बुलाकर कहा—अमात्यराज, जहाँ पर मेरी रानी विलास कर रही है, उस उपवनमें मैं भी क्रीड़ाके लिए जाना चाहता हूँ। यह बात सुनकर सुबुद्धि मंत्री बोला—महाराज, ऐसे समय यदि आप उपवनमें जायँगे तो शहरके सब लोगोंसे आपका विरोध होगा और विरोध होजानेसे आपके सारे राज्यका विनाश हो जायगा। नीतिकारोंने भी कहा है कि बहुतोंके साथ विरोध नहीं करना चाहिए; क्योंकि बहुतोंको जीतना कठिन है। देखिए, बड़े भारी गजराजको छोटी छोटी चींटियाँ भी मार डालती हैं।

मंत्रीके हृदयकी बात जानकर अनादरसे और घमंडसे राजा बोला—जब मैं क्रोध करूँगा तब ये नीच नागरिक मेरा क्या कर सकते हैं? अपने मनसे जन्मके वैरको भुलाकर भेड़िया अगर मृगोंसे आदर पूर्वक मैत्रीभाव स्थापित करले, तो क्या वह उस सिंहका भी सामना कर सकता है, जो सिंह हाथीके मस्तकको चीर कर मुक्ताफल निकाल उनकी ज्योतिसे अपने बालोंको चमकाता है। यह सुनकर मंत्री बोला—महाराज, यह सब ठीक है, पर थोड़ा विचार कर

देखिए, मनुष्यके वे ही गुण सुखदायक होते हैं, वे ही सौभाग्य
सूचक होते हैं जिनको अच्छे जानकर दूसरे मनुष्य भी उनका
अनुकरण करें । ये गुण किस कामके जिनको दूसरे ग्रहण
नहीं करें; किन्तु दुर्गुण होनेके कारण केवल हम ही उन्हें
ग्रहण किये रहें । ऐसे गुण शोभा नहीं देते । स्त्रियोंके
स्तनोंकी तबतक कोई भी शोभा नहीं जब कि कोई उनका मर्दन
नहीं करता । पर जब अन्य मनुष्य उनका मर्दन करता है तब ही
वे शोभा पाते हैं । ठीक यही दशा गुणोंकी है । और
आपने जो यह कहा कि ये नीच हमारा क्या कर सकते हैं, यह
भी ठीक नहीं । क्योंकि असमर्थ मनुष्य भी यदि बहुतसे
मिल जायँ तो एक बड़ी भारी शक्ति बहुत जल्दी तैयार
हो जाती है । इसलिए आप अपनी हठको छोड़ दीजिए ।
देखिए, तृण कितनी निःसार वस्तु है, पर जब वे मिलकर
इकट्ठे हो जाते हैं तो एक रस्सी बन जाते हैं । और फिर
उसका तोड़ना तक मुश्किल हो जाता है । उससे फिर बड़े
बड़े हाथी बाँध लिये जाते हैं । यह सुन राजाने फिर भी
कहा–माना कि ये नागरिक बहुत हैं, पर हैं तो असमर्थ ही न !
तब समर्थ एक ही उनके लिए बहुत है । देखिए, नीतिकार
कहते हैं–एक होकर भी यदि वह सब कामोंको करनेके लिए
हिम्मत रखता है तो वह पराक्रमी है और सबसे बलवान है ।
बहुत होकर भी यदि असमर्थ है तो उनसे क्या हो सकता
है ? चन्द्रमा यद्यपि एक है पर सम्पूर्ण दिशाओंके सुखसंद-

लको प्रकाशित कर देता है और तारागण बहुत मिलकर भी ऐसा नहीं कर सकते—वे बहुत होकर भी असमर्थ हैं। यह सुनकर तो मंत्रीने स्पष्ट ही कह दिया कि महाराज, जान पड़ता है अब आपके विनाशका समय आ पहुँचा, नहीं तो आपकी बुद्धि ऐसी उल्टी न होती। देखिए, सोनेका हरिण न तो किसीने बनाया और न किसीने उसे पहले देखा, तो भी रामचन्द्रको सुवर्णमृगकी तृष्णा हो आई। ठीक ही है, विनाशके समय बुद्धिमें फेर पड़ ही जाता है। बहुतोंके साथ विरोध करनेसे भी विनाशके सिवाय और कुछ नहीं होता। महाराज, इसी सम्बन्धमें मैं सुयोधन राजाकी एक कथा कहता हूँ। आप सावधान हो कर उसे सुनिए।

हस्तिनापुरमें सुयोधन नामका राजा राज्य करता था। कमला उसकी पट्टरानी थी तथा गुणपाल नामका उसके पुत्र था। पुरुषोत्तम उसका मंत्री था। मंत्री सब राजनीतिमें चतुर था। इसलिए राजाका उस पर प्रेम था। नीतिकारने कहा है, जिनके मंत्रसे—परामर्शसे कार्योंकी सिद्धि होती है और जिनका कार्य भी अपने स्वामीका हित करनेवाला होता है, वे ही सच्चे राजमंत्री हैं। जो केवल गाल फुलाना जानते हैं वे मंत्री होनेके लायक नहीं। राजपुरोहितका नाम कपिल था। पुरोहित महाशय, जप, होम, आशीर्वाद आदि कार्योंमें बड़े ही चतुर थे। कहा भी है कि जो सपूर्ण शास्त्रोंका वेत्ता हो, जप और होममें तत्पर हो, और आशीर्वाद देनेमें चतुर

ने कहा—संसारके सब पदार्थोंमें भय है, एक वैराग्य ही अभय है। तुम लोगोंने दीक्षा लेकर बड़ा ही अच्छा किया। देखो, भोगोंमें रोगका भय है, सुखमें उसके विनाश होनेका भय है, धन रहने पर राजा और चोरका भय है, अगर मनुष्य नौकर होकर रहे तो उसे मालिकका डर रहता है, विजय हो जाने पर भी शत्रुका भय है, कुलमें दुष्टा—व्यभिचारिणी स्त्रीके होनेका भय है और किसी तरहसे मान-मर्यादा बढ़ जाय तो उसके घटनेका डर है, गुणोंमें दुष्टोंका भय और देहमें यमराजका भय है। मतलब यह कि भय सबमें है, पर एक वैराग्य ही ऐसा है, जो भयसे सर्वथा परे है।

इस कथाको सुनकर अर्हद्दासकी स्त्री मित्रश्रीने कहा—नाथ, मैंने यह सब प्रत्यक्ष देखा है। इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये तूने जो देखा है, उस पर मैं विश्वास करता हूँ, उसको चाहता हूँ और उसमें रुचि करता हूँ। सेठकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर सेठकी छोटी स्त्री कुन्दलताने कहा—यह सब झूठ है। मैं इस पर श्रद्धान नहीं कर सकती। राजाने, मंत्रीने और वड़के वृक्ष पर छुपे हुए चोरने कुंदलताकी बात सुनी। राजाने मनमें विचारा—यह कैसी पापिनी है जो सत्यको भी असत्य कह रही है। सवेरे ही इसे गधे पर चढ़ाकर निकाल शहर बाहर करूँगा। चोरने अपने मनमें विचारा—दुर्जन गुणोंको छोड़कर दोषोंको ही ग्रहण करता है। नीति-

उपस्थित है। इसका खूब ध्यान रक्खें। इसके बाद जब राजा पयान करने लगा उस समय यमदंड कोतवालको बुला कर उससे राजाने कहा–कोतवाल महाशय, हम शत्रुका पीछा करने जाते हैं, तुम प्रजाकी अच्छी तरह रक्षा करना। यम-दंड बोला–महाराज, आपने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया। मैं आपकी आज्ञाको अच्छी तरह पालन करूँगा। राजाने यमदंडको और भी कई काम सौंपकर दिग्विजयके लिए पयान किया। यमदंडने उसी दिनसे ऐसा शासन किया कि उससे सब प्रजाके लोग बड़े ही प्रसन्न हुए। यहाँतक कि यमदंडने अपने सुशासनसे राजकुमारोंको भी वशमें कर लिया। उधर सुयोधन थोड़े ही दिनोंमें शत्रुको जीत कर और उसकी सब धन-दौलत छीन कर अपने शहरको लौट आया। राजाको आया जान शहरके महाजन लोग उसके सामने अगवानी करनेको आये। राजाने उन सबका सम्मान कर पूछा कि आप लोग सुखसे तो रहे? महाजनोंने उत्तर दिया–महाराज, यमदंडके प्रसादसे हम लोग खूब सुखी रहे। कुछ देर बाद उन्हें पान-सुपारी देकर राजाने फिर वही बात उनसे पूछी। उन लोगोंने फिर भी वैसा ही उत्तर दिया। इसके बाद राजाने महाजनोंको विदा कर विचार किया— आश्चर्य है कि इस यमदंडने सबहीको अपने वशमें कर लिया। अवश्य यह दुष्टात्मा है और मेरा द्रोही है। किसी न किसी उपायसे इसे मार डालना ही अच्छा है। इसको

कुछ दिनोंके लिए राजाका मान देकर मैंने यह बड़ा अनर्थ किया। नीतिकारोंने बहुत ठीक कहा है, जो राजा मंत्री आदि नौकरोंके हाथमें राज्यका भार दे स्वच्छन्द होकर आनन्द उडाते हैं, वे बिल्लियोंसे दूधके घडोंकी रखवाली करवाना चाहते हैं। अर्थात् नौकरोंके हाथमें राज्य सौंपनां ठीक ऐसा ही है जैसे बिल्लीसे दूधकी रखवाली कराना। जो राजा ऐसा करते हैं वे सचमुच मूर्ख हैं।

यमदंडसे सब प्रजाजन प्रसन्न हैं, इस बातसे राजाने अपना अपमान तो समझा पर यह बात उसने किसीसे न कही। राजाका ऐसा करना ठीक ही था। क्योंकि अपने धनका नाश, मनका संताप, घरकी बुराईयां, ठगाई और अपने अपमानको समझदार कभी प्रगट नहीं करते।

किसी तरह यमदंडने राजाके दुष्ट अभिप्रायोंको जान कर मनमें विचारा कि उस समय मैंने राज्यका भार अपने ऊपर लेकर अच्छा काम नहीं किया। यह बात सच है कि राजा अपनी दुष्टताको नहीं छोड़ता। यह लोकोक्ति भी है कि राजा किसीके वशमें नहीं होता। नीतिकारोंने भी कहा है कि जिस तरह कौएमें पवित्रता, जुआरीमें सत्यता, नपुंसकमें धैर्य, मदिरा पीनेवालोंमें तत्वविचार, साँपमें क्षमा तथा स्त्रियोंमें कामशांति, न देखी गई न सुनी गई, उसी तरह राजा भी न किसीका मित्र सुना गया, न देखा गया। कुछ दिनोंके बाद राजाने मंत्री और पुरोहितको

बुला कर अपने दिलकी सब बातें उन दोनोंसे कहीं। अन्तमें निश्चय किया कि यह यमदंड दुष्टात्मा है और उसे किसी उपायसे मार डालना चाहिए।

मंत्री और पुरोहितने भी राजाकी हाँमें हाँ मिलाकर राजाके प्रस्तावका समर्थन किया। आचार्य कहते हैं यह ठीक ही है । क्योंकि जैसी होनहार होती है वैसी ही बुद्धि हो जाती है, उद्यम भी वैसे ही होने लगते हैं और सहायक भी वैसे ही मिल जाते हैं।

निदान राजा मंत्री और पुरोहित इन तीनोंने मिलकर यमदंडको फँसानेका उपाय ढूंढ़ निकाला। एक दिन तीनोंने राज्यके खजानेको खोद कर और उसकी सब चीजें वहाँ-से उठा कर किसी दूसरे गुप्त स्थानमें रखकर वे जल्दी-से अपने अपने स्थानको चले गये । लेकिन जाते समय राजा अपनी दोनों खड़ाऊँ, मंत्री अपनी अँगूठी, तथा पुरोहित महाराज अपने जनेऊको वहीं पर भूलसे छोड़ गये । सवेरा होते ही राजाने खजानेमें चोरी हो जानेका शोर मचाया । इधर यमदंडको बुलानेके लिए उसने नौकरोंको भेजा। यमदंडने उन्हें अपने पकड़नेको आये देख जान लिया कि आज मेरी मृत्यु आ पहुँची । क्योंकि राजाका मुझ पर पहलेहीसे डाह है । आज जो न हो जाय सो थोड़ा है । क्योंकि राजाके क्रोधकी कुछ सीमा नहीं। उससे कवि कवि नहीं रहता, होशियार गँवार हो जाता है, चतुर मूर्ख

हो जाता है, शूरवीर कायर-डरपोंक हो जाता है, बड़ी आयुवालों-की आयु कम हो जाती है और कुलीन नीच हो जाता है। इत्यादि विचार कर यमदंड राजदरबारमें आया। यमदंडको देखकर राजा बोला—अरे यमदंड, शहरके महाजनोंकी तो तू रखवाली करता है और हमारी कुछ खबर ही नहीं रखता। आज मेरे खजानेकी सब चीजें चोर चुरा ले गये। उन सब चीजों और चोरोंको जितनी जल्दी हो सके मेरे सामने लाकर उपस्थित कर, नहीं तो तेरा सिर काटा जायगा। राजाकी इस बातको सुनकर यमदंड खजाना देखने गया। जाकर देखा तो खजानेके पास ही खड़ाऊँ, अँगूठी, और जनेऊ पड़ा है। यमदंडने उन तीनोंको उठा लिया। उसने खड़ाऊँसे राजाको, अँगूठीसे मंत्रीको और जनेऊसे पुरोहित महाराज-को चोर निश्चय किया। जान लिया कि ये ही तीनों चोर हैं। यमदंडने सोचा—जब स्वयं राजाकी ऐसी दशा है तब फिर किससे कहा जाय? इधर शहरमें कोलाहल मच-गया कि राजाके खजानेकी चोरी हो गई। शहरके सब लोग वहाँ इकट्ठे हो गये। राजाने भी उन सबोंको सारा हाल सुनाया। यह भी कहा कि यदि चोरीका पता न लगा तो यमदंड-को सिर काटा जायगा। महाजनोंने राजासे निवेदन किया कि महाराज, यमदंडको सात दिनकी मोहलत दीजिए। इतनेमें अगर यह चोरी हुई चीजोंको और चोरोंको न ढूँढ़लावे तो बादमें आप वही कीजिए जो आपने विचार रक्खा है। राजाने उन महाजनोंके कहनेको बड़ी कठिनतासे मान लिया।

इसी बातको फिर एक बार राजासे कहलवा कर महाजन लोग अपने अपने घर चले गये। इधर यमदंडने शहरके लोगों और राजकुमारोंसे मिलकर कहा—अब मैं क्या करूँ ? मेरे लिए यह बड़ी ही बुरी दशा उपस्थित है। उत्तरमें उन्होंने कहा—कोतवाल साहब, आप डरिए मत। क्योंकि हमें विश्वास है, आपके रक्षा करते यहाँ चोरी कभी हो ही नहीं सकती। यह चोरी तो राजाके भेदहीसे हुई है। आपमें जो चोर ठहरेगा, हम लोग उसका निग्रह करेंगे—उसको दंड देंगे। यमदंड बोला, ठीक है।

इसके बाद यमदंड धूर्ततासे चोरकी तलाशमें रहने लगा। पहले दिन यमदंड राजसभामें गया। राजाको नमस्कार कर वह बैठ गया। राजाने पूछा—चोर मिला ? यमदंड बोला—महाराज, मैंने बहुत ढूँढ़ा पर चोर नहीं मिला। राजाने फिर पूछा—तब तूने इतना समय कहाँ गमाया ? यमदंड बोला—महाराज, एक जगह एक कथा कहनेवाला कथा कह रहा था। मैं उसे सुनने लग गया। इसलिए मुझे इतनी देर लग गई। राजा बोला—अरे यमदंड, तू अपनी मृत्युको क्यों भूल रहा है ? अच्छा तू अपनी उस आश्चर्य भरी कथाको तो कह। यमदंड बोला—महाराज, कहता हूँ। आप सावधान होकर सुनिए।

"चिर समय तक जो लता वृक्ष पर निरुपद्रव बढ़ती रही—वृक्षने उसे आश्रय दिया, और फिर वही लता वृक्ष द्वारा जड़ मूलसे उखाड़ कर फैंकदी जाये तो इसे आश्रयसे भय प्राप्त हुआ कहना चाहिए। अर्थात् रक्षक ही भक्षक बन गया।"

एक वनमें नाना भांतिके कमलोंसे शोभायमान निर्मल मानस नामका तालाब था। उसके तट पर एक मोटा और ऊँचा पेड़ था। उस पर बहुतसे हंस रहते थे। एक दिन उनमेंसे एक बूढ़े हंसने उस पेड़के पास एक बेलका अंकुर देखकर बाल-बच्चोंकी रक्षाके लिए कुछ हंसोंसे कहा— कि इस पेड़की जड़से निकलते हुए इस बेलके अंकुरको अपनी चोंचोंसे तुम उखाड़ डालो, नहीं तो इससे तुम लोगोंकी एक न एक दिन मृत्यु होगी। इस बातको सुनकर वे युवा हंस उसकी दिल्लगी उड़ाने लगे—यह बूढ़ा हुआ, अब भी मरनेसे डरता है। चाहता है मैं सदा अमर रहूँ। भला यहाँ डर किस बातका? बूढ़ेने उन दिल्लगी बाजोंकी बातें सुनकर मनमें विचारा—ये सब मूर्ख हैं। अपने हितकर उपदेशको ये नहीं समझते। सिर्फ गुस्सा होना जानते हैं। ठीक ही है अच्छे उपदेशसे मूर्खोंको बहुधा क्रोध ही आता है। नकटेको दर्पण दिखानेसे क्रोध आजाना मामूली बात है। बूढ़ेने और भी सोचा कि मूर्खोंसे कुछ कहना निष्फल है। खैर, मौके पर इन्हें सब मालूम पड़ जायगा। इत्यादि विचार कर वह चुप हो गया। कुछ दिनों बाद वह बेल उस पेड़ पर चढ़ गई। एक दिन एक शिकारी उसे पकड़ कर उस पेड़ पर चढ़ गया और बहुतसे जाल उसने फैला दिये। रातमें वे सब हंस उस शिकारीके जालमें फँस गये। उन सबका कोलाहल सुनकर बूढ़ा हंस बोला—पुत्रो,

उस समय तुम लोगोंने मेरी बात न मानी, परन्तु देखते हो, उसी दुर्बुद्धिसे आज तुम्हारी मौत आ उपस्थित हुई।

नीतिकारोंने कहा है–विद्या न भी हो तो कुछ परवा नहीं, पर बुद्धिका होना जरूरी है। अपने हित अहितका ज्ञान तो होना ही चाहिए। क्योंकि यदि विद्या होकर भी जिन्हें अपने भले बुरेकी पहचान नहीं है, वे विनाशको प्राप्त होते हैं। जैसे कि सिंहको जिलानेवाले कुछ लोग मारे गये थे। एक समय वनमें एक अध मरा सिंह पड़ा था। कुछ लोगोंने उसे जीवित कर दिया। बादमें वह सिंह उन्हें ही खा गया। मतलब यह है कि तुम सब मूर्ख हो। यह सुनकर वे जालमें फँसे हुए हंस बोले–पिताजी, हमारे जीनेका कुछ उपाय सोचिए। बूढ़ा बोला–पुत्रो, अब तो जो होना था हो चुका, अब उपाय क्या हो सकता है ? एक नीतिकारने कहा है– अपनी मूर्खतासे, वा आलससे, अथवा देखभाल न करनेसे, जब काम बिगड़ जाता है, फिर मनुष्यका कोई वस नहीं चलता–सब उपाय व्यर्थ हो जाते हैं। जहाँ पानी ही नहीं वहाँ पुल बाँधनेसे क्या होता है ? यह सुनकर वे हंस फिर बोले–पूज्य, अपने चित्तको जरा स्थिर करके कोई उपाय सोचें तो अच्छा हो। यदि आप चित्तको स्वस्थ करके सोचेंगे तो कोई न कोई उपाय निकल ही आवेगा। नीतिकार कहते हैं, रक्त मांस आदि धातुसे बना हुआ यह शरीर मनके आधीन है। जब मनकी शक्ति नष्ट हो जाती है तब शरीरके धातु

भी नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अपने मनकी रक्षा बड़े यत्नसे करनी चाहिए। जब चित्त स्वस्थ होता है तब बुद्धि भी नई नई पैदा होने लगती है। इसलिए आप चित्तको स्वस्थ करके उपाय सोचिए। कुछ देर विचार कर बूढ़ा बोला—अच्छा पुत्रो, तुम सब मरे हुएकी तरह पड़े रहो, अन्यथा तुम्हें जीता जानकर शिकारी तुम्हारी गर्दनें मरोड़ डालेगा। उन हंसोंने ऐसा ही किया। सवेरे वह शिकारी आया। उसने जाना सब हंस मर गये, सो जालसे निकाल निकाल कर उसने उन्हें जमीन पर डाल दिया। तब बूढ़ा बोला—बच्चो, अब उड़ जाओ। यह सुनते ही वे हंस उड़ गये। वे कहने लगे—बूढ़ेके उपदेशसे हम लोग आज बच गये। इसीलिए तो नीतिकारोंने कहा है कि समझदारोंको भी वृद्धकी बात माननी चाहिए। देखो, वनमें हंस जालमें फँस गये थे, पर वृद्धकी सलाहसे वे छूट गये। नीतिकारका कहना है—जो काम भूलसे ही नष्ट हो जाता है, फिर सुझाने पर भी वह समझमें नहीं आता। इसका कारण दुराग्रह है। हठी मनुष्यको समझदार कहाँतक समझा सकता है। चाहे जितना पानी बरसे पर काला पत्थर कभी नरम नहीं होता। इस कथाको सुनाकर यमदंड अपने घर चला गया। इस तरह यमदंडका पहला दिन बीता।

दूसरे दिन जब फिर यमदंड राजाके पास आया तो राजाने उससे पूछा कि चोर मिला क्या? वह बोला—महाराज,

नहीं मिला। तब राजाने कहा–इतना समय कहाँ लगा? यमदंड बोला–रास्तेमें एक कुम्हार एक कहानी कह रहा था, मैं उसे सुनने लग गया, इसीसे देर हो गई। राजा बोला–वह कहानी कैसी है? यमदंड बोला–सुनिए, इसी नगरमें एक कुम्हार रहता था। उसका नाम पाल्हण था। बर्तन बनानेमें वह बड़ा ही निपुण था। वह जन्मसे ही शहरके पासवाली खानसे मिट्टी लाकर नाना भाँतिके बर्तन बना बना कर बेचा करता था। इसीमें वह धनी हो गया। पीछे उसने एक बहुत सुन्दर मकान बनवाया, बाल-बच्चोंका उसने विवाह किया। साधु वैरागीको वह उत्तम दान देने लगा, भिखारियोंको भीख देने लगा। इसी तरह उस कुम्हारने बड़ा नाम कमा लिया। अपनी जातिमें वह सबसे बड़ा गिना जाने लगा। एक दिन पाल्हण अपनी गधीको लेकर मिट्टी लानेको खान पर गया। खानमेंसे वह मिट्टी खोदने लगा। इतनेमें खानका एक किनारा उसकी कमर पर आ गिरा। उसकी कमर टूट गई। तब वह कहने लगा कि मैं जो साधु वैरागियोंकी सेवा-शुश्रूषा करता हूँ, भिखारियोंको भीख देता हूँ और भी जो दान-पुण्य करता हूँ, यह उसीका फल है जो आज मेरी कमर टूट गई। तब यह कहना चाहिए कि मुझे आश्रयहीसे भय प्राप्त हुआ। यमदंडने अपनी कथा समाप्त

की, पर राजाने उस कहानीका सच्चा मतलब न समझा। यमदंड घर चला गया। इस तरह उसका दूसरा दिन बीता।

जब तीसरे दिन यमदंड आया तो राजाने फिर उससे पूछा कि यमदंड, चोरका पता पाया क्या? वह बोला—महाराज, नहीं। तब राजा बोला—फिर इतनी देर कहाँ लगी? वह बोला—महाराज रास्तेमें एक आदमी एक कहानी कह रहा था, मैं उसे सुनने लग गया, इससे देर हो गई। राजा बोला—वह कहानी मुझे भी तो सुना। यमदंड बोला—महाराज, सुनिए—पांचाल देशमें वरशक्ति नामका एक नगर है। उसमें सुधर्म नामका एक राजा था। वह बड़ा ही धर्मात्मा और जिनमतके अनुसार चलनेवाला था। उसकी रानी जिनमति भी उसीकी तरह धर्मात्मा थी।

राजमंत्रीका नाम जयदेव था। मंत्रीकी स्त्रीका नाम विजया था। ये दोनों श्रावकके व्रतोंको पालते थे। इस प्रकार राजा सुखसे राज्य करता था। एक दिन सभामें बैठे हुए राजाके पास आकर एक गुप्तचरने कहा—महाराज, आपका शत्रु महाबल प्रजाको बड़ा ही कष्ट देता है। राजा कहने लगा—जबतक मैं नहीं पहुँचता तबतक वह ऐसे उपद्रव भले ही मचाले। पीछे मैं उसे देख लूँगा। राजाने और भी कहा—मैं बिना कारण किसी पर हथियार नहीं बाँधता। लेकिन हाँ जो युद्धमें सामने आता है, जो देशका कंटक है, जो देशद्रोही है, उसका निराकरण तो राजाको अवश्य

करना ही चाहिए-उसे दंड जरूर देना चाहिए। नीतिकारोंने भी तो कहा है-जो शास्त्रके अनुसार युद्धमें शत्रु हैं, तथा जो देशमें कंटक समान है, राजा लोग उन ही पर शस्त्र प्रहार करते हैं, पर जो बेचारे दीन हैं, अनाथ बालक हैं, और जो महापुरुष हैं, उन पर वे कभी हथियार नहीं उठाते। तथा दुष्टोंको दंड देना, सज्जनोंका पालन करना यह राजाओंका धर्म है-परम कर्तव्य है। मूड़ मुड़ाकर जटा धारण करना राजाओंका काम नहीं। ऐसा विचार कर अपने शत्रु महाबलके ऊपर उसने चढ़ाई करदी। युद्ध हुआ। सुधर्म राजाने महाबलको जीत लिया और उसका सर्वस्व हरण कर राजपाट भी छीन लिया। बाद बड़े आनन्दसे वह अपनी राजधानीमें लौट आया। जब सुधर्म नगरमें प्रवेश करने लगा तब नगरका दरवाजा टूट कर गिर पड़ा। उसे देखकर राजाने समझा यह अपशकुन हुआ। तब नगरमें प्रवेश न कर वह नगरके बाहर ही ठहर गया। राजाने मंत्रीसे कह कर उस दरवाजेको फिरसे बनवाया। दूसरे दिन जब फिर राजा प्रवेश करने लगा तब भी वही दशा हुई। इसी तरह तीसरे दिन भी यही घटना घटी। तब राजाने मंत्रीसे पूछा कि यह दरवाजा कैसे स्थिर रहेगा? मंत्री बोला-महाराज, "यदि आप अपने हाथसे मनुष्यको मारकर उसके लोहूसे इसको सींचें तो यह स्थिर हो सकेगा-फिर नहीं गिरेगा" ऐसा अपने कुल

परम्परासे चले आये हुए आचार्य महाराजका कहना है। इस बातको सुनकर राजा बोला–जिस नगरमें जीव मारे जायँ, उस नगरसे मुझे कोई मतलब नहीं। जहाँ मैं हूँ वहीं नगर है। ऐसे सोनेके गहनेसे क्या प्रयोजन जिससे कान ही टूट जायँ।

राजाने और भी कहा–जो अपना हित चाहता है उसे हिंसा न करनी चाहिए। नीतिकारोंने भी कहा है कि जो राजा अपने जीवनको, बलको और निरोगताको चाहता है, उसे हिंसा न करनी चाहिए। बल्कि जो दूसरा करे उसे भी मना कर देना चाहिए। और भी कहा है–सुमेरु पर्वतके बराबर सुवर्णदानसे अथवा सम्पूर्ण पृथिवीके दानसे जितना फल होता है उतना फल केवल एक जीवको मरनेसे बचाने मात्रमें हो जाता है। राजाका ऐसा निश्चय जान कर वहाँ महाजन लोग आ पहुँचे और कहने लगे–महाराज, आप कुछ न कीजिए। हम लोग सब कुछ कर लेंगे। यह सुनकर राजा बोला–यह कैसे हो सकता है, क्योंकि प्रजाजनोंके पुण्य-पापका छठा अंश राजाको भी तो भोगना पड़ता है। देखो न नीतिकार भी ऐसा ही कहते हैं–

यथैव पुण्यस्य सुकर्मभाजां षडंशभागी नृपतिः सुवृत्तः।
तथैव पापस्य कुकर्मभाजां षष्ठांशभागी नृपतिः कुवृत्तः॥

अर्थात् जिस तरह सदाचारी राजा पुण्यात्मा जीवोंके पुण्यमें छठे अंशका भागी है, इसी तरह पापियोंके पापमें भी

वह छठे अंशका भागी है–हिस्सेदार है। प्रजाके पुण्य और पाप इन दोनोंमें राजाका हिस्सा है। यह सुनकर महाजन लोग फिर बोले–महाराज, अगर ऐसा ही है तो पापके भागी हम लोग होंगे और पुण्यके भागी आप। बस अब आप चुप हो रहें, हम सब कर लेंगे। राजाने तब कहा–जैसी आप-लोगोंकी इच्छा। इसके बाद महाजनोंने चन्दा इकट्ठा किया। चन्देके धनसे उन्होंने एक सोनेका आदमी बनवाया, उसे नाना प्रकारके रत्नोंके गहने पहनाये और फिर उसे गाडीमें बैठा कर नगरमें मुनादी पिटवाई कि " यह सोनेका आदमी और करोड़ रुपया उसको दिया जायगा जो इसके बदलेमें अपने लड़केको देगा और लड़केकी मा अपने हाथसे उसे विष पिलावेगी तथा पिता उसकी गर्दन मरोड़ेगा "।

इस मुनादीको वरदत्त नामके एक ब्राह्मणने सुनी। यह ब्राह्मण उसी नगरका रहनेवाला था। यह बड़ा ही निर्दयी और दरिद्री था। इसके सात लड़के थे। वरदत्तने अपनी निर्दया नामकी स्त्रीसे पूछा—

मैं अपने छोटे लड़के इन्द्रदत्तको देकर यह सोनेका आदमी और रुपये लिये लेता हूँ। जब हम और तुम अच्छी तरह हैं तब लड़के तो बहुतसे हो जायँगे। स्त्री तो नामसे ही निर्दया थी। इसलिए उसने अपने पतिका कहना मान लिया। तब वरदत्तने आगे बढ़कर घोषणाको बंद करदी और कहा–मैं इसके बदलेमें अपने लड़केको देता हूँ। इस समय कुछ समझदार

लोग कहने लगे कि यदि माता अपने लड़केको विष दे, पिता उसे बेचे, तथा राजा सब धन-दौलत छीन लेनेको तैयार हो तो फिर दुःख किसे जाकर कहा जाय ? वरदत्तकी बात सुनकर महाजन लोग कहने लगे-देखो वरदत्त, यदि बालककी माता उसे विष पिलावे और तुम उसकी गर्दन मरोड़ो तो यह रुपया और सुवर्णपुरुष तुम्हें मिलेगा, नहीं तो न मिलेगा। वरदत्त बोला-हाँ मैं और मेरी स्त्री ऐसा करनेको राजी हैं। यह सुनकर बेचारा बालक इन्द्रदत्त मनमें सोचने लगा-आश्चर्य है कि इस स्वार्थमय संसारमें कोई किसीका प्यारा नहीं। बहुत ही ठीक कहा है-जब पेड़में फल नहीं रहते तब पक्षी भी उस पर नहीं आते, सूखे तालावके पास हंस नहीं जाते, बिना गंधके फूलको भौंरे और जले हुए वनको मृग छोड़ देते हैं, निर्धन मनुष्यको वेश्याएँ भगा देती हैं तथा धनहीनका नौकर लोग साथ नहीं देते। सारांश यह कि अपने अपने मतलबसे सब कोई एक दूसरेसे प्रेम करता है, पर असलमें कोई किसीका प्यारा नहीं। वस्तुका चमत्कार तो देखिए कि धनके लिए ऐसे अकर्तव्य भी किये जा सकते हैं! ऐसा अन्याय, ऐसा भयंकर पाप भी किया जा सकता है! अथवा भूखा आदमी कौन पाप नहीं करता? नीच मनुष्य निर्दय हुआ ही करते हैं। अन्तमें वरदत्तने वह रुपया और सुवर्ण-पुरुष ले लिया और अपने इन्द्रदत्त नामके छोटे लड़केको महाजनोंके हाथ सौंप दिया। जब उस गहने पहरे हुए,

माता-पिता आदि बहुतसे लोगोंसे घिरे हुए और हँस रहे इन्द्रदत्तको महाजन लोग दरवाजेके पास लाये तब राजाने उसे हँसते देख कर पूछा—तू क्यों हँसता है? क्या तू मरनेसे नहीं डरता? इन्द्रदत्त कहने लगा—महाराज, भयसे तब ही तक डर है जब तक कि वह आया नहीं है। भय आजाने पर तो उसे सहना ही चाहिए।

नीतिकारोंका भी यही कहना है। महाराज, एक बात और भी है—जब बालक पितासे दुःखी होता है तब माकी शरणमें जाता है और जब राजासे दुःखी होता है तब महाजनोंकी शरण लेता है। लेकिन जब माता ही विष देने लगी और पिता गर्दन मरोड़ने लगा, महाजन लोग धन देकर खरीदने लगे और राजा प्रेरणा करता है, तब फिर बताइए किससे कहा जाय?

देखिए नीतिकारने कैसा अच्छा कहा है कि जब माता-पिताने अपने बच्चेको बेच डाला, उस पर राजा शस्त्रप्रहार कर रहा है और देव बलि (भेंट) चाह रहे हैं तो फिर चिल्लाने हीसे क्या होगा?

अतएव मैं धीरता पूर्वक मरना चाहता हूँ। राजा इन्द्रदत्तकी बातें सुनकर कहने लगा—इस दरवाजेसे और इस नगरसे भी मुझे कोई मतलब नहीं। जहाँ मैं हूँ वहीं नगर भी हो जायगा। राजाके इस धैर्यको, इन्द्रदत्तके उस विलक्षण साहसको देखकर नगर देवताने दरवाजा बना दिया,

पंच आश्चर्योंकी वर्षा की और इन्द्रदत्तकी पूजा की। सच है—उद्योग, साहस, धीरता, बल, बुद्धि, और पराक्रम जिसके पास हैं, उससे देव भी डरते हैं। इस कथाको सुनकर भी यमदंडका अभिप्राय राजाने न समझा। यमदंड कहानी कह कर अपने घर चला गया। इस तरह यमदंडने तीसरा दिन भी बिताया।

चौथे दिन यमदंड फिर राजाके पास सभामें आया। राजाने फिर भी पूछा कि चोर मिला क्या? यमदंडने उत्तर दिया—महाराज, चोर नहीं मिला। राजाने जब देरीका कारण पूछा तब यमदंडने कहा—महाराज, रास्तेमें एक आदमी हरिणीकी कहानी कह रहा था, मैं उसे सुनने लग गया, इसलिए देर हो गई। राजाने कहा—वह कैसी कहानी थी? यमदंड सुनाने लगा—

एक उपवनमें तालावके किनारे एक हरिणी रहती थी। वह अपने बच्चोंके साथ वनमें घास वगैरह खाती और उस तालावका पानी पीकर सुखसे काल बिताती थी।

उस तालाव हीके पास एक नगर था। उसमें अरिमर्दन नामका राजा था। उसके बहुतसे राजकुमार थे। एक दिन किसी शिकारीने पुराने वनमेंसे एक मृगके बच्चेको पकड़ लाकर एक राजकुमारको भेट किया। उसे और और राजकुमारोंने जब देखा तब वे सब मिलकर राजासे कहने लगे—हमें भी मृगके बच्चे मँगा दीजिए। राजाने बहुतसे शिकारियोंको बुलाया और

उनसे पूछा–ये मृगके बच्चे कहाँ पर मिलते हैं? उनमेंसे किसी शिकारीने कहा–महाराज,पुराने वनमें मिलते हैं । तब राजा स्वयं शिकारीका भेष बनाकर उस वनमें गया। वह वन बड़ा ही बेढब था। मृग पकड़ना वहाँ कठिन था । राजाने तब उस वनमें एक ओर शिकारियोंसे आग लगवादी, एक ओर जाल बिछवा दिये, और एक ओर गहरे गढ़े खुदवा दिये।

यह सब देखकर एक पंडितने कहा कि जहाँ चारों दिशाओंमें रस्सी बँधी हैं, पानीमें विष मिला है, जाल फैल रहे हैं, चारों तरफ आग लगी है और शिकारी धनुष लेकर मृगोंके पीछे दौड़ रहा है, ऐसी दशामें उस वनमेंसे गर्भिणी हरिणी कहाँ और कैसे भाग सकती है? यमदंडने इस कथाको कहा, पर राजाकी समझमें इसका मतलब न आया । यमदंड कहानी समाप्त कर अपने घर चला गया।

पाँचवें दिन यमदंड फिर राजसभामें आया । राजाने फिर वही चोरके मिलनेकी बात पूछी और यमदंडने भी रोजकी तरह अपना बना बनाया उत्तर दे दिया । राजाने उससे जब देरीका सबब पूछा तो उसने वही कहानीकी बात कही। राजाने कहानी कहनेकी उसे आज्ञा दी और वह इस तरह कहने लगा–

नेपाल देशमें पाटली एक नगरी है। उसमें वसुंधर नामका राजा था। उसकी रानीका नाम वसुमती था। राजा कविता करनेमें बड़ा निपुण था। इस राजाके मंत्रीका नाम भारती-

भूषण था। देविका इसकी स्त्री थी। भारतीभूषण भी कवि था। जल्दी कविता करनेका इसमें बड़ा गुण था और इसीलिए संसारमें यह प्रसिद्ध था। एक दिन राजसभामें भारतीभूषण मंत्रीने राजाकी कविताको बहुत ही दूषित कर डाला, उसमें उसने खूब अशुद्धियाँ निकालीं। गरज़ यह कि राजाकी कविताको उसने महज़ गलत साबित कर दिया।

राजाको इससे बड़ा क्रोध आया। उसने तब भारती-भूषणको बँधवा कर गंगाकी धारमें फिकवा दिया। कर्म संयोगसे भारतीभूषण धारमें न गिर कर बालूमें गिरा।

नीतिकार कहते हैं—वनमें, रणमें, शत्रुके सामने, गंभीर समुद्रमें, अग्निमें, जलमें पर्वतकी चोटी पर, चाहे जिस हालतमें हो, जीवोंकी पहले किये हुए पुण्य—कर्म विपत्तिसे रक्षा करते हैं। भयंकर वन पुण्यात्माके लिए मनोहर नगर बन जाता है। सब मनुष्य उसके बन्धु हो जाते हैं। सारी पृथिवी उसके लिए निधि और रत्नोंसे भरपूर है। मतलब यह कि जिन्होंने पूर्व जन्ममें विपुल पुण्य संचय किया है उन्हें संकट कहीं पर नहीं होता—वे सब जगह सुखी रहते हैं।

भारतीभूषण विचारने लगा—यह सच है कि कवि दूसरे कविको नहीं देख सकता। नीतिकार भी इस विषयमें इससे सहमत हैं, वे भी कहते हैं—सज्जनोंसे दुष्टात्मा कुढ़ता है, विरक्तसे कामी चिढ़ता है, जागनेवाला आदमी स्वभावहीसे चोरको बुरा मालूम पड़ता है, पापियोंको धर्मात्मा

नहीं सुहाते, जोरावरकी डरपोंक निन्दा करता है, और रसोइया रसोइयाको, वैद्य वैद्यको, ब्राह्मण ब्राह्मणको, नट नटको, राजा राजाको और कवि कविको देखकर कुत्तेकी तरह घुरघुराने लगते हैं।

इस तर्कवितर्कके बाद भारतीभूषणने उसी बालमें बैठे बैठे, जो चारों तरफ पानीसे घिरी थी, एक पद्य पढ़ा–जिसका मतलब यह है कि "मैं उस पानीके बीचमें मरूँगा, जिससे सब तरहके बीज पैदा होते हैं, जिससे वृक्ष बड़े होते हैं। मुझे यह आश्रयसे भय प्राप्त हुआ।" इसके बाद भारतीभूषणकी दृष्टि नीचेको बहते हुए पानी पर पड़ी। उसे देखकर उसने एक अन्योक्ति कही। उसका मतलब यह है–हे जल, तुममें शीतल गुण है, तुम स्वभावसे ही निर्मल हो, तुम्हारी पवित्रताके विषयमें हम क्या कहें जब कि तुम्हारे सम्पर्कसे दूसरे भी पवित्र हो जाते हैं, तुम प्राणियोंके प्राण हो, इससे बढ़कर तुम्हारी और क्या स्तुति हो सकती है। फिर यदि तुम भी नीच मार्गका अवलम्बन करो, तो तुम्हें रोकनेवाला ही कौन है?

भारतीभूषणकी यह सब बातें वसुंधर राजा भी छुपा हुआ सुन रहा था। उसने मनमें विचारा–इसे गंगामें फिंकवा दिया, यह मैंने अच्छा नहीं किया। सज्जनको अपने आश्रित जनोंके गुण दोषों पर विचार नहीं करना चाहिए। नीतिकारने भी कहा है कि देखो, चन्द्रमा क्षयी है–

हर रोज घटता बढ़ता है, स्वभाव हीसे टेढ़ा–तिरछा है, जड़ है, कलंकी है और मित्र पर विपत्ति आने पर प्रसन्न होता है। अर्थात् सूर्यके डूबने पर उदय होता है। इतने दोष रहने पर भी महादेवजीने उसे अपने सिर पर बैठा रक्खा है। सच है महापुरुष अपने सहारेसे जीनेवालोंके गुण दोषों पर विचार नहीं करते। इत्यादि विचार कर राजाने भारती-भूषणको गंगामेंसे निकलवा कर उसका सन्मान किया और फिर उसे मन्त्री बना लिया।

राजाने कथा सुनी, पर इसका मतलब वह न समझ सका। यमदंड कथाको समाप्त कर घर चला गया। इस तरह पाँचवाँ दिन बीता।

छठे दिन यमदंड फिर राजाके पास आया। राजाने उससे पूछा—चोर मिला? यमदंडने उत्तर दिया महाराज, नहीं मिला। राजाने देरीका कारण पूछा। वह कहने लगा—बाजारमें एक आदमीसे कथा सुनने लग गया था, इससे देर हो गई। राजाने कहा वह कथा कैसी थी? यमदंड इस प्रकार कहने लगा—

कुरुजांगल देशमें पाटलीपुर नामका नगर था। उसमें सुभद्र नामका राजा था। इसकी रानीका नाम सुभद्रा था। एक समय सुभद्राने मनोविनोदके लिए एक बगीचा बनवाया, उसमें नाना जातिके वृक्ष लगवाये और उसके बीचमें एक नहर निकलवाई। नहरका पानी बड़ा ही निर्मल था। उसमें हंस,

सारस, चकवा, चकवी आदि पक्षीगण मिलकर सदा किलोलें किया करते थे। बगीचेके फूलोंकी महक चारों तरफ उड़ती थी। भौंरे वहा आकर गूँजते थे। मतलब यह कि बगीचेमें किसी बातकी कमी न थी। सब तरहसे वह सुन्दर था। लेकिन ताड़ीकी मदिरा पी–पी कर बन्दर पागल जैसे होकर उस बगीचेमें बड़ा ऊधम मचाते थे। एक कविने बन्दरके विषयमें कहा है–बन्दर स्वभावहीसे पाजी होता है, फिर जिसने मदिरा पीली, जिसे बिच्छूने काट खाया और तिस पर भी जिसे भूत लगा गया फिर उसकी लीलाका क्या पार? उसका तमाशा तो देखते ही बनता है। निदान बागके मालीने बन्दरोंका उपद्रव देखकर राजासे जाकर कहा। राजाने मालीकी बात सुनकर बगीचेकी रखवालीके लिए अपने घरके उन बन्दरोंको भेज दिया, जिन्हें उसने अपने मनोविनोदको लिए रख छोड़े थे। मालीने यह देखकर मनमें विचारा कि काम तो पहलेहीसे बिगड़ा हुआ है, तभी तो बागकी रखवालीके लिए बन्दर रखे गये। माली समझ गया राजा अविवेकी है। जिसको विवेक रूपी नेत्र नहीं वह यदि अन्याय रूपी अंधकारमें चले–कुमार्गमें प्रवृत्ति करे तो उसका अपराध ही क्या है?

एक नीतिकारने कहा है कि मनुष्यका एक नेत्र तो स्वाभाविक विवेक है और विवेकियोंकी संगति दूसरा। जिसके ये दोनों नेत्र नहीं हैं–जो विवेकी नहीं है और न जिसकी

विवेकवानोंके साथ संगति ही है, वह अगर कुराहमें चले तो उसमें उसका अपराध भी क्या? यमदंडने अपनी कथा यहीं पर समाप्त की। राजाने अब भी कथाका मतलब नहीं समझा। यमदंड अपने घर चला गया। इस तरह छठा दिन भी बीता।

सातवें दिन यमदंड राजसभामें गया। राजाने पूछा—चोर मिला? वह बोला—नहीं। राजाने कहा—तब इतनी देर कहाँ लगी? यमदंड बोला—महाराज, एक जगह चबूतरे पर एक माली कथा कह रहा था, मैं उसे सुनने लगा। इससे देरी हो गई। राजाने वह कथा सुनानेको यमदंडसे कहा, यमदंडने कहा—अच्छा महाराज, सुनिए।

अवन्ति देशमें उज्जयिनी नगरी है। उसमें सुभद्र नामका एक व्यापारी था। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। एक दिन सुभद्र व्यापारके लिए बाहर जानेकी इच्छासे अपनी दोनों स्त्रियोंको अपनी माताको सौंपकर आप शुभ मुहूर्तमें अपने साथियोंके साथ विदेशके लिए रवाना हुआ और नगरके बाहर जाकर ठहरा। सुभद्रकी मा व्यभिचारिणी थी। सो वह लड़केको घर बाहर होते ही अपनी फुलवारीमें यारको लेकर जा सोई। रातको किसी कामके लिए सुभद्र घर पर आया और दरवाजे बाहरसे उसने पुकारा—मा, किवाड़ खोल। माने लड़केकी आवाज सुनकर किवाड़ खोल दिये। पर वे दोनों मा और यार डरके मारे भागे और घरके एक कोनेमें छुप गये। जब लड़का भीतर आया तो उसने अपनी माके पहरनेका

कपड़ा अरंडके पेड़ पर टँगा देखा। वह मनमें विचारने लगा—आश्चर्य है यह सत्तर वर्षकी बुड्ढी हुई तब भी कामसेवन करती है, उसे छोड़ती नहीं है। बड़ी ही विचित्र बात है—गजब तमाशा है। यह सब लीला कामदेव महाराजकी है जो मरेको भी मार रहा है। नीतिकारने बहुत ही ठीक कहा है—जो दुबला-पतला है, काना और गंजा है, जिसके कान पूँछ नहीं हैं, फोड़ोंमेंसे पीब निकल रही है, देहमें सैकड़ों कीड़े बिलबिला रहे हैं, भूखके मारे तड़फ रहा है और गलेमें फूटे घड़ेका गला पड़ा है, ऐसा होकर भी कुत्ता कुत्तीके पीछे लगा फिरता है। इसीलिए कहना पड़ता है कि कामदेव मरेको भी मारता है। सुभद्र और भी विचारने लगा—स्त्रियोंके चरित्रको, उनकी करतूतोंको कोई नहीं जान सकता। लोगोंका यह कहना झूठ नहीं है कि स्त्रियाँ किसीसे लिपटती हैं, तो किसीको मीठी बातोंसे खुश रखती हैं; किसीको देखती हैं, तो किसीके सामने किसी दूसरे यारके लिए रोने लगती हैं; एकको शपथ खाकर प्रसन्न करती हैं; तो दूसरे पर गाढ़ा प्रेम दिखलाती हैं; किसीके साथ सो रही हैं, तो पड़ी पड़ी ध्यान किसी दूसरेका ही लगा रही हैं। स्त्रियाँ ऐसी कुटिल होती हैं, यह बात सब जानते हैं तो भी लोग उन्हें बहुत मानते हैं। नहीं मालूम किस धूर्तने इनकी रचना की? किस पाजीने इन्हें बनाया? जब बुढ़ापेमें मेरी माका यह हाल है तो न जाने उन दोनों जवान औरतोंकी क्या दशा होगी? जिस तूफानमें, जिस वायुके वेगमें

साठ साठ सालके हाथी गायब हो गये—उड़कर लापता हो गये, उसमें मच्छरोंकी बातको तो जाने दीजिए बेचारी गौओंकी भी कोई गिनती नहीं। ऐसा विचार कर सुभद्र अपनी दोनों स्त्रियोंको शिक्षा देने लगा—मैं जाते समय तुम दोनोंको अपनी माकी रखवालीमें छोड़ गया था। रातको मैंने लौटकर देखा तो मेरी मा एक यारको लेकर फुलवारीमें पड़ी है और अरंडके पेड़ पर उसके कपड़े रक्खे थे। मैंने सब भेद जान लिया। मेरा सब घर चौपट हो गया। यमदंडने यहीं पर कथा समाप्त की। राजाने इस कथाका भी कुछ मतलब न समझा। यमदंड अपने घर चला गया। इस तरह सातवाँ दिन भी बीत गया।

आठवें दिन यमदंडको सभामें आया देखकर राजाके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उसने क्रोधसे लाल होकर पूछा—क्यों यमदंड, चोर मिला या नहीं? यमदंड बोला—महाराज, चोरका कहीं पता न चला। यह सुनकर राजाने शहरके सब महाजनोंको बुलाकर कहा—देखिए, अब मेरा कोई दोष नहीं है। यह पाजी मुझे सात दिनसे धोखा दे रहा है। अभीतक न चोर लाया, न चोरीका माल। अब मैं इसके सौ टुकड़े कर इनसे दिशाओंकी बलि दूंगा। इस बातके सुनते ही यमदंड घर गया और जनेऊ, अँगूठी, तथा खड़ाऊँ लाकर उसने उन तीनों चीजोंको राजसभामें रख दिया और कहा—महाजनो, आप न्यायकर्ता हैं, (इन तीनों चीजोंको

दिखाकर) यह चोरीका माल है (राजा, मंत्री, और पुरोहितकी ओर इशारा करके) और ये तीनों चोर हैं। यह कह कर यमदंडने एक पद्य पढ़ा, जिसका भावार्थ यह है, कि जहाँ राजा, मंत्री और पुरोहित ही जब चोर हैं, तब हम सब लोगोंको जंगलमें जाकर रहना चाहिए। क्योंकि जिसकी शरणमें हम लोग हैं उसीसे हमें जब भय प्राप्त है—रक्षक ही जब भक्षक बन रहा है तब उसकी पुकार किसके पास की जाये ? यमदंडने महाजनोंसे और भी कहा—यदि आप लोग इस अन्यायी, अविवेकी राजाका परित्याग न करेंगे, इसे न छोड़ेंगे तो आप लोग भी पापके भागी होंगे। यह आपको याद रखना चाहिए। नीतिकारोंने भी कहा है कि—

शत्रुसे मिले हुए मित्रको, व्यभिचारिणी स्त्रीको, कुलको नाश करनेवाले पुत्रको, मूर्ख मंत्रीको, अविवेकी राजाको, आलसी वैद्यको, रागी देवको, विषयलम्पटी गुरुको, और दया रहित धर्मको, मोहके वश जो नहीं छोड़ता उसका कभी कल्याण नहीं होता। वह कल्याणसे वंचित ही रहता है। महाजनोंने भी उन तीनों चीजोंसे जान लिया कि राजा, मंत्री, और पुरोहित ही चोर हैं। इसके बाद सबने विचार कर राजाको निकाल कर राजकुमारको गद्दी पर बैठाया, मंत्रीको निकाल कर मंत्रीपुत्रको मंत्री बनाया तथा पुरोहित निकाल कर पुरोहितके पुत्रको राज पुरोहित बनाया। जब ये तीनों शहरसे बाहर निकल रहे थे या निकाले जा रहे थे, तब लोग कहने

क्यों-कि विनाशके समय बुद्धि भी नष्ट हो जाती है यह कहावत सच है।

रामचन्द्रने सोनेके मृगकी मायाको न जाना। नहुष राजा ब्राह्मणोंको गाड़ीमें जोतता था। अर्जुनके पुत्रकी मति ब्राह्मणकी गाय और बछड़ोंको चुरानेमें प्रवृत्त हो गई। युधिष्ठिर अपने चारों भाई और द्रौपदीको जुएमें हार गये। कहनेका मतलब यह कि विनाशका समय आजाने पर समझदारोंकी भी बुद्धि बिगड़ जाती है—भ्रष्ट हो जाती है। देखो न, रावणके दिमागमें एक सौ आठ विद्याएँ समाई हुईं थीं, पर जब लंका नष्ट होने लगी—जब रामचन्द्र उसका नाश करने पर उतारू हुए तब बेचारे रावणकी एक भी विद्या काम न आई। इत्यादि कहकर लोग चुप रहे। सुयोधन विचारने लगा कि मैंने तो विचारा था कि इस उपायसे यमदंडको मार कर मैं सुखसे राज्य करूँगा, पर यह आफत मेरे ही सिर पड़ी। कर्मोंकी बड़ी ही विचित्र गति है।

पाठकगण, अब प्रकृत विषय पर आजाइए। सुबुद्धि मंत्रीने सुयोधन राजाकी कथा समाप्त की। अब फिर वही प्रकरण चलता है।

सुयोधन राजाकी कथा कह कर सुबुद्धि मंत्री उदितोदय महाराजसे कहने लगा—महाराज, इस कथासे आपने जान लिया होगा कि किसीके साथ विरोध न करना चाहिए—किसीका तिरस्कार न करना चाहिए। ऐसा करनेसे अप-

ना ही विनाश हो जाता है । इसके सिवा और कुछ नहीं होता । नीतिकारोंका भी कहना है—छोटेसे छोटेका भी तिरस्कार करना ठीक नहीं । क्योंकि छोटा भी मौका पाकर बड़ा काम कर डालता है । टीड़ियोंके झुंडने एक बार समुद्र-को भी व्याकुल कर दिया था । उदितोदय राजा मंत्रीकी इस उपदेश पूर्ण कहानीको सुनकर बोला—तुमने जो कुछ भी कहा वह बिलकुल ठीक है । यदि मैं उपवनमें चला जाता तो जरूर ही विरोध खड़ा हो जाता और मेरी भी वही दशा होती जो सुयोधन राजाकी हुई थी । इसमें जरा भी संदेह नहीं । इस बातको कौन जान सकता कि बीचमें किस कर्मका उदय आ जाय? देखिए, गर्मीके दिनोंमें मारे गर्मीके खूब प्यासा कोई हाथी भरे तालाबको देख कर दौड़ा दौड़ा पानी पीने गया, पर इस जल्दीके मारे वह किनारे पर कीचड़में फँस गया । भाग्यसे न तो वह पानी पी सका और न कीचड़से निकल कर बाहर ही आ सका—दोनों तरफसे हाथ धो बैठा । मतलब यह कि होनहारको कोई देख नहीं आया । राजा मंत्रीसे बोला—अब मुझे इस बातका निश्चय हो गया कि योग्य मंत्रीके बिना राज्यका नाश हो जाता है । नीतिकारोंने यह झूठ नहीं कहा है, कि विषसे एक ही आदमी मरता है, हथियार भी एक बारमें एक ही आदमीको मार सकता है, पर जहाँ अयोग्य मंत्री हुआ और उसने उलटी सम्मति दी, कि राज्यका राजाका और राजाके परिवारका समूल नाश

हो जाता है। इसलिए जो राजाको अनर्थोंसे बचाता है, कुमार्गसे उसकी रक्षा करता है, वही राजाका परम मंत्री है। यह सुनकर सुबुद्धि मंत्रीने कहा—महाराज, अपने स्वामीका हित करना यही तो मंत्रीका कर्तव्य है। राजा बोला—तुम संसारमें सचमुच सत्पुरुष हो। तुम्हारे होनेसे ही मैं बड़े भारी अपयश और दुर्गतिसे बच गया। नीतिकारोंने क्या ही अच्छा कहा है—मूर्खोंकी संगतिसे गुणोंका नाश होता है, पापमय विचारोंसे धनका नाश होता है, युवतिके सम्पर्कसे तप नष्ट होता है और नीचोंके साथ रहनेसे बुद्धि मलिन होती है। इत्यादि प्रकारसे सुबुद्धि मंत्रीकी राजाने बड़ी प्रशंसा की और कहा—अच्छा तो अब रात बितानेके और मनोविनोदके लिए कहीं नगरहीमें घूम आवें। वहाँ कुछ न कुछ कौतूहल देखेंगे। क्योंकि सोते रहना तो अच्छा नहीं। समझदारोंका समय तो धर्म-चर्चा अथवा मनोविनोदमें बीतता है। हाँ गँवार लोग जरूर अपने समयको सोनेमें, या दंगा फिसादमें बिताते हैं। मंत्री बोला—अच्छी बात है, चलिए। इस प्रकार विचार कर राजा और मंत्री चुपचाप चल दिये। नगरके भीतर दोनोंने एक अचम्भा देखा। वे देखते हैं कि एक आदमीकी केवल परछाईं तो दिखलाई देती है मगर आदमी नहीं।

राजाने मंत्रीसे पूछा—यह कौन है? मंत्री बोला—इसका नाम सुवर्णखुर है। यह अंजनवटी विद्यामें बड़ा प्रसिद्ध है।

इसके पास आँखोंमें आँजनेका एक ऐसा अंजन है कि उसे आँज लेने पर इसे कोई देख नहीं पाता। राजाने पूछा—यह कहाँ जा रहा है? इसीके साथ हमें भी चलनां चाहिए। ऐसा विचार कर दोनों उसके पीछे पीछे हो लिये। वह चोर धीरे धीरे अर्हद्दास सेठकी दीवालके ऊपर जो बड़का पेड़ था, उस पर चढ़कर कोई न देख सके इस तरह वृक्षकी आड़में छुप गया। राजा और मंत्री भी उसी पेड़के नीचे छुप कर बैठ गये। पहले कह आये हैं कि नगरकी सब स्त्रियाँ राजाकी आज्ञासे कौमुदी-महोत्सव मनानेको उपवनमें गई हैं और नगरके लोग अपने अपने घरोंहीमें आनन्द मना रहे हैं। लेकिन अर्हद्दास सेठकी आठों स्त्रियोंने इस उत्सवमें भाग नहीं लिया। राजाकी आज्ञासे आठों स्त्रियोंने और सेठने अपने घरके चैत्यालयमें ही धर्मोत्सव मनाया। यहाँसे आगे फिर कथा आरंभ होती है।

अर्हद्दास आठ दिनका उपवासा था। उसने अपनी स्त्रियोंसे कहा—राजाकी आज्ञासे आज नगरकी सब स्त्रियाँ क्रीड़ा करने उपवनमें गई हैं, तुम भी जाओ। मैं अपना धर्म-साधन यहीं करता हूँ। यदि तुम न जाओगी तो राजाकी आज्ञाका भंग होगा। आज्ञा भंग होने पर राजा सर्पकी तरह भयंकर हो उठेगा और सब तरहसे अपना अनिष्ट कर डालेगा। क्योंकि नीतिकारोंने कहा है कि साँपका डसा तो मणि, मंत्र और औषधि आदिसे अच्छा होता देखा गया, पर राजाके दृष्टि रूपी विषका मारा हुआ कभी जीता न देखा गया।

राजाका जिस पर कोप हो जाता है फिर वह बचना नहीं है। वे स्त्रियाँ बोलीं—नाथ, हमारे भी आज आठ आठ उपवास हो गये। उपवासके दिनोंमें धर्मके कामोंको छोड़कर क्रीड़ाके लिए उपवनमें हम कैसे जायँ? यह आप ही विचारें। राजाकी ऐसी आज्ञासे हमें क्या मतलब? जो हमने उपार्जन किया, जो होना होगा, वह होगा। हम उपवनमें न जायँगी। होनहारको कोई टाल नहीं सकता। पानीमें डूब जाओ, सुमेरु पर्वतकी चोटी पर जा बैठो, युद्धमें शत्रुको जीत लो, व्यापार, खेती नौकरी, चाकरी, आदि सब कला सीखलो और प्रयत्न करके पक्षियोंकी तरह अनन्त आकाशमें उड़ने लग जाओ, पर जो होना होता है वह तो हो ही कर रहता है—अनहोनी कभी नहीं होती। कर्मोंकी ऐसी ही विचित्रता है। इसलिए हम तो न जायँगी। यह सुनकर सेठने कहा—तुमने जो कुछ कहा वह सच है। ऐसा ही है। उपवासके दिन जिनशास्त्र श्रवण तथा भक्ति, पूजादि ही करना चाहिए। इसीसे कर्म कटते हैं। वनमें जाकर क्रीड़ा करनेसे—खेलने कूदनेसे नहीं कटते। आचार्य कहते हैं—जिसका मन निश्चल है, व्रतोंमें रहता है, पाँचों इन्द्रियाँ वशमें हैं, तथा जो आत्मामें लीन रहता है और हिंसासे दूर रहता है, उसको मोक्षकी प्राप्ति अवश्य होती है। स्त्रियोंने सेठसे कहा—नाथ, आइए आप और हम अपने घरके सहस्रकूट चैत्यालयमें जागरण करें। सेठने कहा—ठीक है। इसके बाद वे सब नाना प्रकार शुद्ध द्रव्य

लेकर सहस्रकूट चैत्यालयमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने मंगल पाठ पढ़ा, भगवानकी पूजा की और बड़ा आनन्द मनाया। उस समय मौका पाकर वे स्त्रियाँ सेठसे कहने लगीं—स्वामिन्, आपको दृढ़तर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कैसे हुई? कहिए। सेठने कहा—अच्छा पहले तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हे सम्यग्दर्शन किस कारणसे हुआ? वे कहने लगीं—स्वामिन्, आप हम लोगोंके पूज्य हैं, इसलिए पहले आप ही कहिए। फिर हम तो कहेंगी हीं। देखिए, अग्नि ब्राह्मणोंकी गुरु है, ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु है, पति स्त्रियोंका गुरु है तथा अतिथि सबका गुरु है। इस न्यायसे प्रथम आपहीको कहना चाहिए।

इसी बीचमें अर्हद्दास सेठकी सबसे छोटी कुंदलता नामकी स्त्री बोल उठी—नाथ, ऐसे आनन्ददायक और सबको प्यारे कौमुदी-महोत्सवको छोड़कर यह भगवानकी पूजा, उपवास, तप आदिक किस लिए किया जा रहा है? सेठने उत्तर दिया—प्रिये, हम अपने परलोकके सुधारनेके लिए यह सब पुण्य-धर्म कर रहे हैं। कुंदलताने कहा- नाथ, परलोक देख कर कोई आया है क्या? अथवा संसारमें किसीने धर्मका फल देखा भी है? हाँ यदि पुण्यका फल इस लोक और परलोकमें दिखाई देता हो तब तो यह देवपूजादिक करना युक्तियुक्त है—ठीक है; नहीं तो व्यर्थ है। यह सुन सेठ कहने लगे—पुण्यादिकका परलोकमें जो फल होता है वह तो दूर रहे, पर धर्मका फल मैंने प्रत्यक्ष देखा: है, उसे सुन।

कुंदलताने कहा–अच्छा नाथ, कहिए। मैं उसे सुनती हूँ। सेठने तब अपने सम्यक्त्व प्राप्त होनेकी कथाको यों कहना आरंभ किया—

इसी उत्तरमथुरामें पद्मोदय राजा थे। यशोमति उनकी रानी थी। वर्तमान राजा उदितोदय उन्हीं पद्मोदयके पुत्र हैं। पद्मोदयके समयमें मंत्री संभिन्नमति था। मंत्रीकी स्त्री सुप्रभा थी। सुबुद्धि नामका उसके एक पुत्र है। यही सुबुद्धि इस समय उदितोदयका मंत्री है। तथा यहीं पर अंजनवटी आदि विद्यामें निपुण रूपखुर नामका एक चोर था। उसकी स्त्रीका नाम रूपखुरा था। सुवर्णखुर नामका इसके एक लड़का है। यहीं जिनदत्त सेठ हुए। जिनमति उनकी स्त्रीका नाम था। इन्हीं जिनदत्तका पुत्र मैं अर्हद्दास हूँ।

ये सब बातें राजाने, मंत्रीने, और वड़के पेड़ पर छुपे हुए सुवर्णखुर चोरने भी सुनी। चोरने मनमें विचारा—चोरी तो मैं हर रोज करता ही रहता हूँ, आज न सही। पर इस सेठकी बातें तो सुनूँ। देखूँ यह क्या क्या कहता है। राजा और मंत्रीने भी सेठकी बातें सुननेका विचार किया।

सेठ बोले–जो कथा मैंने सुनी है, देखी है, और अनुभव की है, उसे मैं कहता हूँ। सावधान होकर सुनना। उनकी स्त्रियाँ बोलीं–नाथ, हम सुनती हैं, आप कृपा कर कहिए।

सेठ कहने लगे–वह रूपखुर चोर सातों व्यसनोंका सेवन करनेवाला था। एक दिन जूआ खेलकर उसने बहु-

तसा धन जीता। उस धनको उसने भिखारियोंको बाँट दिया। दो पहरको जब उसे भूख लगी तो वह घरकी तरफ आने लगा। रास्तेमें उसे राजमहल पड़ा। रूपखुरको राजमहलके रसोईघरकी ओरसे बहुत अच्छी सुगंध आई। वह मनमें विचारने लगा—मुझे कुछ मुश्किल नहीं है, फिर अपने अंजनको लगाकर अदृश्य होकर ऐसी सुगन्धित रसोई क्यों न खाई जाय? ऐसा विचार कर उसने आखोंमें अंजन लगाया और फिर निडर होकर वह राजमहलमें चला गया। वहाँ उसने राजाके साथ भोजन करके अपने घरका रास्ता लिया। अंजनचोरने यह कायदा हर रोजके लिए बना लिया। हर रोज वह आता और राजाके साथ भोजन करके चला जाता। रूपखुरको इस प्रकार रोज रोज राजाके साथ भोजन कर जानेसे राजा धीरे धीरे दुबला हो गया। दिन एक मंत्रीने राजाको दुबला देखकर मनमें विचारा—इन्हें क्या खानेके लिए अन्न नहीं मिलता? ये इतने दुबले क्यों हैं? मेरी समझसे तो अन्नके न मिलनेसे ही ऐसी दशा हो गई है। नीतिकार भी ऐसा ही कहते हैं—

आखोंके विना मुँहकी, न्यायके विना राज्यकी, नमकके विना भोजनकी, धर्मके विना जीवनकी, चन्द्रमाके बिना रातकी और अन्नके विना शरीरकी शोभा नहीं।

निदान मंत्रीने राजासे पूछा—महाराज, आपका शरीर दुबला क्यों पड़ता जाता है? इसका कारण कहिए। यदि

कोई चिन्ता हो, तो वह बतलाइए। राजाने कहा—तुम्हारे रहते हुए भी मुझे कोई चिंता हो सकती है क्या ! पर आश्चर्य इस बातका है कि मैं दुगुना, तिगुना, चौगुना, और पँचगुना तक भोजन कर जाता हूँ, पर तृप्त नहीं होता । मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मेरे साथ कोई भोजन करता हो। इसी कारणसे मेरे उदरकी अग्नि शांत नहीं होती।

इस बातको सुनकर मंत्रीने मनमें विचारा कि कोई अंजन लगाकर अदृश्य हो राजाके साथ भोजन करता है। इसी-लिए ये दुबले होते जाते हैं। मंत्रीने एक दिन इसका पता लगानेको एक प्रयत्न किया। राजाके भोजनके कुछ समय पहले उसने रसोईघरके आस पास खूब आकके सूखे फूल बिछवा दिये, चारों कोनोंमें तीव्र धूपके धुएँसे भरे हुए घड़ोंको मुँह बाँधकर रखवा दिया, चारों तरफ हथियार लिए सामन्तोंको खड़ा कर दिया और एक जगह बड़े बड़े मल्लोंको छुपा दिया। इस प्रकार सब ठीक प्रबंध करके वे थोड़ी देर तक ठहरे होंगे कि अंजनचोर आ पहुँचा। जब वह रसोई घरमें जाने लगा तो आकके फूलों पर उसके पाँव पड़नेसे फूल चुरमुराने लगे। उससे सब लोगोंने जान लिया कि चोर आ गया। उन्होंने उसी समय सब किवाड़ोंको बन्द करके मजबूत अर्गला (भागल) लगादी। उन धुएँके घड़ोंका मुँह खोल दिया गया। चोरकी आखोंमें धुँआ लगा, आँखें मिलमिलाने लगीं, आखोंका अंजन

निकल गया और चोर स्पष्ट दिखाई देने लगा। तब मल्लोंने उसे पकड़ लिया। उसे वे राजाके पास ले गये। ऐसी दशा देख चोर मनमें विचारने लगा—राजाके साथ भोजन करना गया सो तो गया ही, पर दैवीघटनासे अब तो मेरा घर द्वार भी जाता दिखाई देता है। मैं दोनों तरफसे गया। ठीक मेरी वही दशा हुई जैसी कि उस हाथी की, जो गरमीमें प्यासके मारे तालावमें पानी पीने गया था और दैवयोगसे किनारे पर कीचडमें फँस गया था।

मैंने कुछ तो विचारा था, पर दैवयोगसे कुछ और ही हो गया। सच है मनचाहा कभी नहीं होता। एक समय एक राजकुमारी एक भिक्षु पर प्रसन्न हो गई थी, पर दैवयोगसे उस भिक्षुकको ही व्याघ्रने खा लिया। इसी तरह एक भौंरा कमलिनीके भीतर बैठा बैठा रातमें विचार बाँध रहा था—रात बीतते ही सबेरा होगा, सूर्यका उदय होगा, कमल खिलेंगे और मैं रस पान करूँगा कि इतनेहीमें एक हाथीने आकर उस कमलिनीको उखाड़ कर खा लिया। भौंरेके विचार ज्योंके त्यों रह गये। चोर इसी उधेड़ बुनमें लगा था कि राजाने सुभटोंको आज्ञा देदी कि इसको सूली पर चढ़ादो। यह सुनकर किसीने कहा—देखो, एक व्यसनका सेवन करनेवाला भी जब नियमसे मारा जाता है, तब सातों व्यसनोंको सेवन करनेवालेका तो कहना ही क्या है। यही कारण था जो जूआ खेलनेसे पांडवोंका,

मांस भक्षण करनेसे बक राजाका, मदिरापानसे यादवोंका, वेश्या सेवनसे चारुदत्त सेठका, शिकार खेलनेसे ब्रह्मदत्त राजाका, चोरी करनेसे शिवभूतिका और परस्त्रीके सम्पर्कसे रावणका विनाश हुआ। जब एक एक व्यसनके सेवनसे इनकी यह दशा हुई तो सबके सेवनसे कौन नर विनाशको प्राप्त न होगा? इसके बाद राजाकी आज्ञासे सुभटोंने अंजन-चोरको सूली पर चढ़ा दिया। राजाने चारों तरफ कुछ नौकरोंको बैठा कर कह दिया कि देखो, इसके साथ जो कोई बातचीत करे वह राजद्रोही है, और उसके पास चोरीका माल है गया, यह देखना। इसके बाद उसकी मुझे फौरन सूचना देना।

इसी समय जब कि अंजनचोर सूली पर अधमरा लटक रहा था, तब मेरे पिता जिनदत्त मुझको साथ लिए शहर बाहर के सहस्रकूट चैत्यालयमें अभिषेक पूजन और परम गुरु श्रीजिनचन्द्रभट्टारकके चरणोंकी वन्दना करके अपने घरको लौट रहे थे। रास्तेमें अंजनचोर सूली पर लटक रहा था। उसके शरीरसे खून टपक रहा था। प्यासकी व्याकुल-तासे उसके प्राण निकलना ही चाहते थे। मैंने उसे देख कर पितासे पूछा—पिताजी, यह सूली पर क्यों चढ़ाया गया? पिताजीने कहा—बेटा, पहले जो कर्म उपार्जन किये, वे अपना फल दिये बिना कैसे छूट सकते हैं! चाहे कोई पातालमें प्रवेश कर जाय, स्वर्गमें चला जाय, सुमेरु पर्वत पर

चढ़ जाय, मंत्र, औषधि और अस्त्र-शस्त्रोंसे अपनी रक्षा करे, पर जो होना होता है, वह होकर ही रहता है। इसमें विचार कर-नेका कोई कारण नहीं। जिनदत्त और अर्हद्दासकी सब बातें चोरने सुनलीं। वह विचारने लगा—जिसके पैरोंको भेड़ियेने खा लिया और कौओंने सिरको चोंथ डाला, ऐसे पूर्व कर्मके उदय आने पर समझदार मनुष्य भी क्या कर सकता है? इसके बाद वह बोला—सेठजी, आप दयाके समुद्र हैं और धर्मात्मा हैं। वृक्षकी तरह बिना कारण ही जगत्का उपकार करनेवाले हैं। जो कुछ भी आप करते हैं वह सब परोपकारके लिए। मुझे बड़े जोरसे प्यास लगी है, तब पानी पिलाकर मेरा भी उपकार कीजिए। आज पूरे तीन दिन हो गये, क्या करूँ प्राण भी नहीं निकलते। यह कह कर वह जिन-दत्तके परोपकारकी महिमा सुनाने लगा—जिसके चित्तमें सम्पूर्ण प्राणियों पर दया है, जिसका हृदय दयासे भींगा है, उसीको ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होती है। जटा रखा लेने, भस्म लगालेने और गेरुआ कपड़ा पहनलेनेसे कुछ नहीं होता।

वृक्षोंको देखिए, स्वयं तो वे घाममें खड़े हैं, दुःख सह रहे हैं, पर दूसरोंको छाया करते हैं, और फलते भी हैं तो परोपकार हीके लिए। अपने लिए नहीं। गौएँ भी परोपकारके लिए दूध देती हैं, नदियाँ बहती हैं। मतलब यह कि सज्जन पुरुष जो कुछ भी करते हैं। वह सब परोपकारके लिए। सेठजी, आप परोपकारी हैं। जान पड़ता है आपका

जन्म परोपकारार्थ ही हुआ है। चोरने सेठकी स्तुति-प्रशंसा कर कहा—मुझे पानी पिला दीजिए। आपका बड़ा उपकार होगा। सेठजी यह जानते थे कि इसे पानी पिलाना राजाकी आज्ञाके विरुद्ध है। पर उसकी बातें सुनकर उनका चित्त पिघल गया। उन्होंने कहा—भाई, मैंने बारह वर्ष तक अपने गुरुकी सेवा की, आज प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक मंत्र बताया है। अब इस समय मैं यदि पानी लेने चला जाऊँ तो वह मंत्र भूला जाता हूँ। इसलिए मैं नहीं जाता। चोरने पूछा—इस मंत्रसे क्या सिद्धि होती है? सेठने कहा—इसका नाम पंच नमस्कार मंत्र है। इससे देवोंकी संपदा मिलती है, मुक्तिरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, चारों गतियोंके दुःख मिट जाते हैं, पापोंका नाश होता है, पापमें प्रवृत्ति नहीं होती, और मोहका क्षय होता है। जिस मंत्रका ऐसा माहात्म्य है, वह पंचनमस्कारात्मक देवता हम सबकी रक्षा करे। हजारों पापों और सैकड़ों जीवोंका वध, करनेवाले बहुतसे हिंसक जीव भी इस मंत्रकी आराधना करके मोक्षको गये। यह सुनकर चोरने कहा—अच्छा तो जबतक आप पानी लेकर आते हैं तबतक मैं इस मंत्रको याद रक्खूँगा, इसका पाठ किया करूँगा। इसलिए आप मुझे इस मंत्रको सिखा दीजिए। सेठने चोरकी बात मानली। उसे मंत्र सिखाकर वे पानी लेने चले गये। इधर मंत्रका पाठ करते करते ही चोरने प्राण छोड़ दिये। इस पंच परमेष्ठी मंत्रके

माहात्म्यसे वह सौधर्मस्वर्गमें सोलहों प्रकारके आभूषणोंसे भूषित और अनेक देव-देवांगनाओंसे युक्त देव हुआ। इधर कुछ देर बाद सेठ पानी लेकर चोरके पास आये। चोरको मरा देखकर सेठने विचारा—जान पड़ता है, यह समाधि मरण कर स्वर्ग गया। मैंने तब पिताजीसे कहा—पिताजी, सत्संगतिसे किसके पाप दूर नहीं होते? वे वहाँसे लौटकर फिर अपने गुरुके पास गये। उन्होंने सब वृत्तान्त उनसे कहा। उस दिन उपवास कर वे गुरुके पास चैत्यालयमें ही रहे। गुरु महाराजने वह सब वृत्तान्त सुनकर कहा—महा पुरुषोंके संसर्गसे सभीको ऊँचे पदकी प्राप्ति होती है। पानीकी बूँद गरम लोहे-पर यदि पड़ती है तो उसका नाम निशान भी नहीं रहता; लेकिन वही बूँद कमलपत्र पर पड़नेसे मोती जैसी मालूम पड़ती है और समुद्रकी सीपमें पड़ जाये तो वह मोती ही बन जाती है। मतलब यह कि वस्तुको जैसी जैसी संगति मिलती जायगी उससे उसमें वैसे वैसे ही गुणोंका समावेश होता जायगा। मनुष्योंमें भी जो उत्तम, मध्यम, और जघन्य गुण देखे जाते हैं, बहुधा वह संसर्गहीका फल है। नालियोंका पानी जब गंगाजीमें मिल जाता है तब बड़े बड़े देवता भी उसे माथे पर चढ़ाते हैं—उसे नमस्कार करते हैं। यह सब माहात्म्य महा पुरुषोंकी संगतिका है। महा पुरुषोंकी संगतिसे सबको उच्च पदकी प्राप्ति होती है। गुरुजी महाराज इतना कह कर चुप हो रहे।

इधर चोरके साथ बात-चीत करते हुए पितार्जीको उन पहरेदारोंने देख लिया। सो उन्होंने जाकर राजासे कह दिया कि महाराज, जिनदत्त सेठने उस चोरसे बात-चीत की है। राजाने कहा—वह राजद्रोही है। जरूर उसके पास चोरीका माल है। इस प्रकार क्रोधमें आकर जिनदत्त सेठको पकड़नेके लिए उसने अपने नौकरोंको भेज दिया।

इधर सौधर्म-स्वर्गमें वह देव विचार करने लगा—मैंने यह देवपर्याय पुण्यसे प्राप्त की है। पुण्यके बिना ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती। आचार्य कहते हैं—मिष्ट भोजन, सुखपूर्वक शयन, अथवा सुगंधित फूलोंके हार, सुन्दर वस्त्र, स्त्री, आभूषण, हाथी, घोड़े, गाड़ी और ऊँचे ऊँचे मकान यह सब सामग्री बिना प्रयत्न ही मिल जाती है, जब कि पूर्वमें किये हुए पुण्यका उदय होता है। इसके बाद अवधिज्ञानसे देवने सब वृत्तान्त जान कर विचारा—जिनदत्त सेठ मेरा धर्मोपदेशक है। उसने मरते समय मुझे धर्मका उपदेश दिया था। उसके उपकारको मैं कभी न भूलूँगा। नहीं तो मेरे समान कोई पापी न होगा। क्योंकि जब एक अक्षरको पढ़ानेवालेको भूल जाना—उसके उपकारको न मानना पाप है, तो फिर जिसने धर्मका उपदेश दिया है, उसके उपकारको भूलना तो महा पापसे भी बढ़कर है। यह विचार कर वह देव अपने धर्मोपदेशक गुरु जिनदत्त सेठके उपसर्गको निवारण करनेके लिए डंडा लेकर सेठके दरवाजे

पर आ बैठा। और सेठको पकड़नेके लिए जो आदमी आये थे, उनसे वह कहने लगा—अरे कायरो, तुम किस लिए आ रहे हो? वे बोले—रे दीन, तू हमारे हाथों क्यों मरना चाहता है? दूर हो, रास्ता दे! तब मनुष्य-रूपधारी देव बोला—माना कि तुम लोग बहुत हो और मोटे-ताजे भी हो, पर इससे होगा क्या?

जिसमें तेज रहता है—जो तेजस्वी होता है वही बलवान् होता है। देखो, हाथी कितना मोटा होता है, पर वह जरासे अंकुशसे वशमें हो जाता है, तो क्या अंकुश हाथीके बराबर है? वज्र पर्वतोंको ढा देता है, तो क्या वह पर्वतके बराबर है? एक दीपकसे बहुतसा अंधेरा मिट जाता है, तो क्या अंधेरा दीपकके बराबर है? मतलब यह कि जिसमें तेज है वही बलवान है—जोरावर है। मोटे-ताजे ही होनेसे कुछ नहीं होता। यदि सिंह दुबला पतला भी है तो भी बड़े बड़े हाथी उसकी बराबरी नहीं कर सकते। जब सिंह गरजने लगता है तब वनके एक दो नहीं, किन्तु सब हाथी मद छोड़ देते हैं—गर्व नहीं करने पाते। इसलिए बलकी ही प्रधानता है। मांस बढ़जानेसे काम नहीं चलता। ऐसा कहकर उसने किसीको डंडोंसे मारा और कितनेहीको मूर्च्छित कर दिया। यह सब हाल किसीने राजासे जाकर कह दिया। राजाने तब और बहुतसे आदमियोंको भेजा। देवने उनकी भी वही दशा की। तो राजाको तब बड़ा क्रोध आया और चतुरंग सेना लेकर वह स्वयं चढ़ा। महा संग्राम हुआ। राजाकी तमाम सेना मारी गई। अकेला राजा बचा।

देवने बड़ा भयावना रूप धारण किया। उसे देख राजा डरा और भागने लगा। देव भी उसके पीछे पीछे दौड़ा। देवने उससे कहा—पापी, इस समय जहां तू जायगा वहीं मैं तुझे मारूँगा। हाँ गाँवके बाहर सहस्रकूट चैत्यालयमें जिनदत्त सेठ हैं, यदि तू उनकी शरणमें जाय तो तुझे मैं बचा सकता हूँ। नहीं तो बिना मारे न छोड़ूँगा। यह सुन राजा सेठकी शरणमें पहुँचा और सेठसे बोला—मुझे बचाइए, मेरी रक्षा कीजिए! मैं आपकी शरण आया हूँ। यदि आप मुझे बचालेंगे तो मैं बच जाऊँगा और आपको भी पुण्य होगा। यह नीति भी है कि नष्ट भ्रष्ट हुए कुलका, तालावका, बावड़ीका, कुएका, राज्यका, शरणागतका, गौका, ब्राह्मणका, और जीर्ण मंदिरका जो उद्धार करते हैं—इनको नाश होनेसे जो बचाते हैं उन्हें चौगुना पुण्य होता है। यह सुनकर सेठने मनमें विचारा—यह जो राजाके पीछे पड़ा है वह कोई राक्षस है और विक्रियासे इसने ऐसा भयंकर रूप धारण किया है। सिवा राक्षसके और कोई ऐसा चमत्कार नहीं दिखला सकता। ऐसा विचार कर सेठ उस देवसे बोले—हे सुराधीश, पीछे भागते हुएका पीछा नहीं किया जाता। नीति भी ऐसी ही है कि जो डरसे भाग रहा हो, बलवानको उसका पीछा नहीं करना चाहिए। पीछा करनेसे शायद वह मृत्युका निश्चय कर—जीनेकी आशा छोड़ न जाने क्या अनर्थ कर बैठे। क्योंकि ऐसे समय प्रायः सभीको वीरश्री

चढ़ जाया करती है। सेठकी इस नीतियुक्त वातको सुनकर देवने अपने राक्षसी रूपको छोड़ फिर देवरूप धारण कर लिया और सेठकी तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया। पीछे देव-गुरुकी वन्दना कर वह बैठ गया। यह देखकर राजाने पूछा—सुराधीश, क्या स्वर्गमें विवेक नहीं होता, जो तुमने देव-गुरुको छोड़कर एक गृहस्थकी पहले वन्दना की ? इसको आचार्य अपक्रम नामका दोष कहते हैं । जनप्रचलित रीतिके विपरीत काम किया जाता है वह अपक्रम कहलाता है । जैसे भोजनके वाद नहाना और गुरुके वाद देववन्दना करना, इत्यादि। यह सुनकर देव वोला—महाराज, मैं सव जानता हूँ। पहले देवकी और पीछे गुरुकी वन्दना की जाती है और इसके वाद श्रावकसे जुहार वगैरह किया जाता है। परन्तु यहाँ कारण वश मुझे ऐसा करना पड़ा है। क्योंकि ये सेठ मेरे परम गुरु हैं । राजाने पूछा—कैसे ये तुम्हारे परम गुरु हैं ? देवने तव पहलेका सव वृतान्त उसे सुनाया। उस समय वहीं पर बैठे हुए किसी आदमीने कहा—अहा, यह वड़ा ही सत्पुरुष है और यही कारण है कि सत्पुरुष दूसरेके किये उपकारको कभी नहीं भूलते। देखो, नारियलके पेड़ जव छोटे होते हैं, तव लोग उन्हें थोड़ा थोड़ा पानी देते हैं। पर जव वे वड़े होते हैं और फलने लगते हैं तव उन उपकारियोंके लिए एक तो नारियलोंका वोझा अपने सिर पर उठाते हैं, और फिर उनके थोड़ेसे दिये गये पानीका स्मरण

कर—उनका उपकार मानकर उन्हें अपना अमृततुल्य पानी पिलाते हैं । मतलब यह कि महापुरुष किये उपकारको कभी नहीं भूलते। राजाने फिर पूछा—अच्छा किसकी प्रेरणासे सेठने ऐसा किया था ? देव बोला—महापुरुषोंका परोपकार करनेका स्वभाव ही होता है। उन्हें प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं रहती । सूर्यको अन्धकार मिटानेकी आज्ञा कौन देता है ? वृक्षोंके हाथ किसने जोड़े थे—कि तुम रास्तेमें लग जाओ, लोग तुम्हारी छायामें खड़े हुआ करेंगे । मेघोंसे कोई प्रार्थना नहीं करता कि तुम पानी बरसाओ। मतलब यह कि सज्जन पुरुष-स्वभावहीसे— बिना किसीकी प्रेरणाके, परोपकारके लिए कमर कसे रहते हैं । यह सुनकर राजाने कहा—सब धर्मोंमें जैनधर्म ही बड़ा धर्म है । इसकी प्राप्ति बड़े भारी पुण्यसे होती है । सेठ बोले—महाराज, आपने बहुत ठीक कहा । थोड़े पुण्यसे जैनधर्मकी प्राप्ति नहीं होती। प्रभावशाली जैनधर्म, सज्जनोंकी संगति, विद्वानोंका सम्पर्क, बोलनेकी चतुराई, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रवीणता, जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंमें भक्ति, सच्चे गुरुओंकी सेवा, शुद्ध चारित्र और निर्मल बुद्धि, इन बातोंकी प्राप्ति थोड़े पुण्यवानोंको नहीं होती। जिनदत्तकी बातोंसे प्रसन्न होकर देवने पंचाश्चर्य किये, जिनदत्त सेठकी पूजा की, और प्रशंसा कर वह बोला—कि मैं चोर था, पर आपके प्रभावसे देव हो गया । आपने बिना ही कारण मेरा उपकार किया। आपका मैं अत्यन्त कृतज्ञ रहूँगा । यह

सब देखकर राजाको बड़ा वैराग्य हुआ। राजाने कहा—धर्म-की महिमा बड़ी विचित्र है, जो धर्मात्माकी देव भी सेवा करते हैं। जो धर्मात्मा है, उसको साँप हारके समान, तलवार फूलोंकी मालाके समान, विष रसायनके समान, और शत्रु मित्रके समान हो जाता है। उस पर देव प्रसन्न होकर वशमें हो जाते हैं। और अधिक क्या कहें उसके लिए आकाशसे रत्नोंकी वृष्टि तक होती है। इस प्रकार वैराग्यके बाद पद्मोदय राजाने अपने उदितोदय पुत्रको राज्य देकर जिनचन्द्र मुनिराजके पास दीक्षा लेली। इसी प्रकार सांभिन्नमति मंत्रीने, जिनदत्त सेठने तथा और भी बहुतोंने दीक्षा ग्रहण की। बहुतोंने श्रावकोंके व्रत लिये और कोई कोई भद्रपरिणामी—सरल स्वभावी ही हुए। देव भी सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर स्वर्ग चला गया।

यह सब कथा सुनाकर अपनी स्त्रियोंसे अर्हद्दास कहने लगा—कि ये सब बातें मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं और इसीसे मैं सम्यग्दृष्टि हुआ हूँ। यह सुनकर वे स्त्रियाँ बोलीं—नाथ, आपने इन बातोंको देखा है, सुना है, और अनुभव किया है, तब हम सब भी इनका श्रद्धान करती हैं, इन्हें चाहती हैं और इनमें हमारी रुचि भी है। इसी समय सबसे छोटी कुंदलता स्त्री बोली—यह सब झूठ है, इसलिए न मैं इनका श्रद्धान करती हूँ, न मैं इन्हें चाहती हूँ, और न मेरी इन बातोंमें रुचि ही है। इस प्रकार कुन्दलताकी बातको सुनकर उदितोदय राजा,

कोई चिन्ता हो, तो वह बतलाइए। राजाने कहा—तुम्हारे रहते हुए भी मुझे कोई चिंता हो सकती है क्या? पर आश्चर्य इस बातका है कि मैं दुगुना, तिगुना, चौगुना, और पँचगुना तक भोजन कर जाता हूँ, पर तृप्त नहीं होता। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मेरे साथ कोई भोजन करता हो। इसी कारणसे मेरे उदरकी अग्नि शांत नहीं होती।

इस बातको सुनकर मंत्रीने मनमें विचारा कि कोई अंजन लगाकर अदृश्य हो राजाके साथ भोजन करता है। इसीलिए ये दुबले होते जाते हैं। मंत्रीने एक दिन इसका पता लगानेको एक प्रयत्न किया। राजाके भोजनके कुछ समय पहले उसने रसोईघरके आस पास खूब आकके सूखे फूल बिछवा दिये, चारों कोनोंमें तीव्र धूपके धुएँसे भरे हुए घड़ोंको मुँह बाँधकर रखवा दिया, चारों तरफ हथियार लिए सामन्तोंको खड़ा कर दिया और एक जगह बड़े बड़े मल्लोंको छुपा दिया। इस प्रकार सब ठीक प्रबंध करके ये थोड़ी देर तक ठहरे होंगे कि अंजनचोर आ पहुँचा। जब वह रसोई घरमें जाने लगा तो आकके फूलों पर उसके पाँव पड़नेसे फूल चुरमुराने लगे। उससे सब लोगोंने जान लिया कि चोर आ गया। उन्होंने उसी समय सब किंवाडोंको बन्द करके मजबूत अर्गला (भागल) लगादी। उन धुएँके घडोंका मुँह खोल दिया गया। चोरकी आखोंमें धुँआ लगा, आँखे तिल मिलाने लगीं, आखोंका अंजन

ज्ञान होना तथा संग्राममें शूरवीर होना, इन लक्षणोंसे युक्त था। सेठकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। वह भी सम्यग्दर्शनादि गुणोंसे परिपूर्ण थी, बड़ी धर्मात्मा थी। जो स्त्री पतिके अनुकूल चलनेवाली हो, संतोषवती हो, चतुर हो, पतिव्रता हो और समझदार हो, वह साक्षात् लक्ष्मी ही है, इसमें कोई संदेह नहीं। जिनदत्ता भी ऐसी ही थी। परन्तु वह बाँझ थी। किसी भी उपायसे उसके पुत्र नहीं हुआ। एक दिन मौका देखकर जिनदत्ताने अपने स्वामीसे कहा—नाथ, पुत्रके विना कुलकी शोभा नहीं होती और वंशका उच्छेद हो जाता है। इस कारण संतान उत्पत्तिके लिए आपको दूसरा विवाह करना चाहिए। देखिए, नीतिकारने क्या अच्छा कहा है—

हाथीकी मदसे, सरोवरकी कमलोंसे, रात्रिकी पूर्ण चन्द्रमासे, वाणीकी व्याकरणसे, नदीकी हंस-हंसनियोंके जोड़ेसे, सभाकी पंडितोंसे, स्त्रियोंकी शीलसे, घोड़ेकी वेगसे दौड़नेसे, मन्दिरोंकी प्रति दिन होनेवाले उत्सवोंसे, पृथ्वीकी राजासे और तीनों लोकोंकी धर्मात्माओंसे जैसी शोभा होती है वैसी ही सुपुत्रसे कुलकी शोभा है। और भी कहा है—

शर्वरी दीपकश्चन्द्रः प्रभाते रविदीपकः।
त्रैलोक्यदीपको धर्मः सत्पुत्रः कुलदीपकः॥

अर्थात्—रात्रिका दीपक चन्द्रमा है, प्रातःकालका दीपक सूर्य है, तीनों लोकोंका दीपक धर्म है, और कुलका दीपक

लेकर सहस्रकूट चैत्यालयमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने मंगल पाठ पढ़ा, भगवानकी पूजा की और बड़ा आनन्द मनाया। उस समय मौका पाकर वे स्त्रियाँ सेठसे कहने लगीं—स्वामिन्, आपको दृढ़तर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कैसे हुई? कहिए। सेठने कहा—अच्छा पहले तुम्हीं बतलाओ कि तुम्हे सम्यग्दर्शन किस कारणसे हुआ? वे कहने लगीं—स्वामिन्, आप हम लोगोंके पूज्य हैं, इसलिए पहले आप ही कहिए। फिर हम तो कहेंगी हीं। देखिए, अग्नि ब्राह्मणोंकी गुरु है, ब्राह्मण सब वर्णोंका गुरु है, पति स्त्रियोंका गुरु है तथा अतिथि सबका गुरु है। इस न्यायसे प्रथम आपहीको कहना चाहिए।

इसी बीचमें अर्हद्दास सेठकी सबसे छोटी कुंदलता नामकी स्त्री बोल उठी—नाथ, ऐसे आनन्ददायक और सबको प्यारे कौमुदी-महोत्सवको छोड़कर यह भगवानकी पूजा, उपवास, तप आदिक किस लिए किया जा रहा है? सेठने उत्तर दिया—प्रिये, हम अपने परलोकके सुधारनेके लिए यह सब पुण्य-धर्म कर रहे हैं। कुंदलताने कहा-नाथ, परलोक देख कर कोई आया है क्या? अथवा संसारमें किसीने धर्मका फल देखा भी है? हाँ यदि पुण्यका फल इस लोक और परलोकमें दिखाई देता हो तब तो यह देवपूजादिक करना युक्तियुक्त है—ठीक है; नहीं तो व्यर्थ है। यह सुन सेठ कहने लगे—पुण्यादिकका परलोकमें जो फल होता है वह तो दूर रहे, पर धर्मका फल मैंने प्रत्यक्ष देखा: है, उसे सुन।

है, पर पुत्रके लिए तो ऐसा करनेमें दोष नहीं है। इस विवादमें सेठको हार माननी पड़ी। जैसे तैसे उन्होंने विवाह करना मंजूर किया।

इसी नगरमें जिनदत्ताके काकाकी लड़की कनकश्री रहती थी। जिनदत्ताने अपने काका और काकीसे अपने पति अर्हद्दासके लिए कनकश्रीकी मँगनी की। उत्तरमें उन दोनोंने कहा—सौतके रहते हम अपनी लड़कीको नहीं दे सकते। तब जिनदत्ताने कहा—मेरी आप चिन्ता न करें, मैं तो सिर्फ भोजनके समय घर पर आया करूँगी और दिन रात जिनमंदिरमें ही रहा करूँगी। मेरा घर-बारसे कोई वास्ता न रहेगा। कनकश्री ही घरकी मालकिन होकर रहेगी। मैं इस बातकी शपथ करती हूँ। बन्धुश्रीने तब जिनदत्ताकी बात मानली। शुभ मुहूर्तमें विवाह हो गया। अबसे जिनदत्ता जिनमंदिरमें और नवलवधु कनकश्री तथा वृषभदास सेठ घरमें सुखसे रहने लगे। एक दिन कनकश्री अपने मायके आई। तब उसकी माने उससे पूछा—पुत्री, अपने पतिके साथ तू सुखसे तो रहती है न? कनकश्री बोली—मां, मेरा पति तो मुझसे बातचीत भी नहीं करता और तो मैं क्या कहूं? सौतके रहते हुए जब तूने मेरा विवाह कर दिया, फिर सुखकी बात क्या पूछती है? सिर मुड़ाकर नक्षत्र पूछनेसे क्या लाभ? मेरी सौत जिनदत्ताने मेरे पतिको सब तरह अपने पर लुभा रक्खा है। वे दोनों हर समय जिनमंदिरमें रहते हैं और वहीं पर आनन्द उड़ाते हैं। दोनों बार भोजन

जन्म परोपकारार्थ ही हुआ है। चोरने सेठकी स्तुति—प्रशंसा कर कहा—मुझे पानी पिला दीजिए। आपका बड़ा उपकार होगा। सेठजी यह जानते थे कि इसे पानी पिलाना राजाकी आज्ञाके विरुद्ध है। पर उसकी बातें सुनकर उनका चित्त पिघल गया। उन्होंने कहा—भाई, मैंने बारह वर्ष तक अपने गुरुकी सेवा की, आज प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक मंत्र बताया है। अब इस समय मैं यदि पानी लेने चला जाऊँ तो वह मंत्र भूला जाता हूँ। इसलिए मैं नहीं जाता। चोरने पूछा—उस मंत्रसे क्या सिद्धि होती है? सेठने कहा—इसका नाम पंच नमस्कार मंत्र है। इससे देवोंकी संपदा मिलती है, मुक्तिरूपी लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, चारों गतियोंके दुःख मिट जाते हैं, पापोंका नाश होता है, पापमें प्रवृत्ति नहीं होती, और मोहका क्षय होता है। जिस मंत्रका ऐसा माहात्म्य है, वह पंचनमस्कारात्मक देवता हम सबकी रक्षा करे। हजारों पापों और सैकड़ों जीवोंका वध, करनेवाले बहुतसे हिंसक जीव भी इस मंत्रकी आराधना करके मोक्षको गये। यह सुनकर चोरने कहा—अच्छा तो जबतक आप पानी लेकर आते हैं तबतक मैं इस मंत्रको याद रक्खूँगा, इसका पाठ किया करूँगा। इसलिए आप मुझे इस मंत्रको सिखा दीजिए। सेठने चोरकी बात मानली। उसे मंत्र सिखाकर वे पानी लेने चले गये। इधर मंत्रका पाठ करते करते ही चोरने प्राण छोड़ दिये। इस पंच परमेष्ठी मंत्रके

तसी स्त्रियोंको साथ लिये, शरीरमें हाड़के गहने पहिने, एक हाथमें त्रिशूल और एकमें डमरु लिये, पाँवोंमें नूपुर पहरे, महा भयंकर रूप धारण किये, एक कापालिक भिक्षाके लिए बन्धुश्रीके घर आया। उसे देखकर बन्धुश्री मनमें विचारने लगी—मैंने बहुतसे कापालिक देखे, पर इसके जैसा चमत्कारी तो आजतक कोई देखनेमें न आया। जरूर मेरा काम इससे सिद्ध होगा। ऐसा निश्चय कर उसने बड़े प्रेमसे अच्छे अच्छे पकवान उसे भीखमें दिये। ग्रन्थकार कहते हैं—मनुष्य स्वार्थके वश दूसरोंकी सेवा करता है, पर वास्तवमें उसका सच्चा प्रेम किसीसे नहीं होता। गायमें जब दूध नहीं रहता तब उसका बछड़ा भी उसे छोड़ देता है। अस्तु, बन्धुश्री उस कापालिकको हर रोज उसी तरह भीख देने लगी। कापालिकने बन्धुश्रीकी भक्ति देखकर मनमें विचारा—यह मुझे मेरी माताके समान खिलाती-पिलाती है। मुझे जरूर इसका कुछ न कुछ उपकार करना चाहिए। संसारमें उत्पन्न करनेवाले, विवाह करनेवाले, विद्या पढ़ानेवाले, अन्न देनेवाले तथा भयसे रक्षा करनेवाले ये पाँचों माता पिताके समान हैं। इस प्रकार विचार कर एक दिन बन्धुश्रीसे उस कापालिकने कहा—माता, मुझे बहुतसी विद्याएँ सिद्ध हैं। अगर तुम्हारा कोई कार्य हो तो मुझसे कहिए। यह सुनकर बन्धुश्रीने रोते हुए अपना सारा हाल उससे कह कर अन्तमें कहा—जैसे बने वैसे तुम्हें जिनदत्ताको मार डालना चाहिए, जिससे

इधर चोरके साथ बात-चीत करते हुए पिताजीको उन पहरेदारोंने देख लिया। सो उन्होंने ज़ाकर राजासे कह दिया कि महाराज, जिनदत्त सेठने उस चोरसे बात-चीत की है। राजाने कहा—वह राजद्रोही है। जरूर उसके पास चोरीका माल है। इस प्रकार क्रोधमें आकर जिनदत्त सेठको पकड़नेके लिए उसने अपने नौकरोंको भेज दिया।

इधर सौधर्म-स्वर्गमें वह देव विचार करने लगा—मैंने यह देवपर्याय पुण्यसे प्राप्त की है। पुण्यके विना ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती। आचार्य कहते हैं—मिष्ट भोजन, सुखपूर्वक शयन, अथवा सुगंधित फूलोंके हार, सुन्दर वस्त्र, स्त्री, आभूषण, हाथी, घोड़े, गाड़ी और ऊँचे ऊँचे मकान यह सब सामग्री विना प्रयत्न ही मिल जाती है, जब कि पूर्वमें किये हुए पुण्यका उदय होता है। इसके बाद अवधिज्ञानसे देवने सब वृत्तान्त जान कर विचारा—जिनदत्त सेठ मेरा धर्मोपदशक है। उसने मरते समय मुझे धर्मका उपदेश दिया था। उसके उपकारको मैं कभी न भूलूँगा। नहीं तो मेरे समान कोई पापी न होगा। क्योंकि जब एक अक्षरको पढ़ानेवालेको भूल जाना—उसके उपकारको न मानना पाप है, तो फिर जिसने धर्मका उपदेश दिया है, उसके उपकारको भूलना तो महा पापसे भी बढ़कर है। यह विचार कर वह देव अपने धर्मोपदेशक गुरु जिनदत्त सेठके उपसर्गको निवारण करनेके लिए डंडा लेकर सेठके दरवाज़े

जो दुष्ट हो, उसीको तू मार डाल । यह कह कर उसने उसे भेज दिया। योगीकी बात सुनकर वैताली-विद्या वहाँसे चली और अपने घरमें अकेली सोती हुई कनकश्रीको मार-कर और लोहू-लुहान तलवार लिये मरघटमें योगीके पास आई । योगीने उसे विदा किया। विद्या अपने स्थानको चली गई और योगी भी अपने स्थानको चला गया।

सवेरा हुआ। बन्धुश्री प्रसन्न होती हुई अपनी लड़कीके घर पर आई और खाट पर लड़कीका कटा सिर देखकर चिल्लाती हुई राजाके पास दौड़ी जाकर उसने राजासे कहा—महाराज, जिनदत्ताने सपत्नीके द्वेषसे मेरी लड़कीको मारडाला। इस बात-को सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया । क्रोधमें आकर उसने वृषभदास सेठ और जिनदत्ताको पकड़नेके लिए तथा घरकी कोई वस्तु इधर उधर न होने पावे, इस बातकी रखवालीके लिए सिपाहियोंको भेजा। वे उन दोनोंको पकड़नेके लिए आये तो, लेकिन नगरदेवताने उनको जहाँका तहाँ कील दिया। यह बात सेठ और जिनदत्ताने सुनी तो उन दोनोंने विचारा—पूर्व जन्ममें जिसने जो कर्म उपार्जन किये हैं वे विना भोगे मेटे नहीं जा सकते। जिस स्थानमें, जिस दिन, जिस समय, जिस मुहूर्त-में जो होना होता है वह हो ही कर रहता है। इसमें फेर नहीं पड़ता। ऐसा विचार कर दोनोंने निश्चय किया कि जब तक यह उपसर्ग दूर न होगा तबतक हम जिनालयहीमें रहेंगे।

इसी बीचमें नगरदेवताने उस कापालिकको प्रेरणा की। कि-तू नगरमें जाकर सच सच बात कह। तब वह नगरके लोगोंसे कहने लगा जिनदत्ताका कोई अपराध नहीं है। बन्धुश्रीके कहनेसे मेरी वेतालीविद्याने कनकश्रीको मारा है।

इधर नगरदेवताने वेतालीविद्याको भी खूब ताड़ना दी। तब उसने बुढ़ियाका रूप बनाकर कहना आरंभ किया—जिनदत्ता निर्दोष है, कनकश्री ही पापिनी थी; इसलिए मैंने उसे मार डाला। यह सुनकर नगरके लोग कहने लगे—अहा, यह जिनदत्ता बड़ी ही साध्वी और निर्दोष स्त्री है। इसी समय देवोंने उसपर पंचाश्चर्य किये। यह सब देखकर राजाने कहा—बन्धुश्री दुष्ट है, इसे गधे पर चढ़ाकर नगरसे निकाल बाहिर करो! बन्धुश्रीने तब गिड़गिड़ा कर कहा—महाराज, मैंने यह सब अज्ञानसे किया है। मुझे इसका प्रायश्चित दिलवा दीजिए।

राजाने कहा—इस दोषका मैंने कहीं प्रायश्चित ही नहीं सुना। नीतिकारने कहा है—मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्या करनेवाले तथा चुगलखोर इन चारोंका प्रायश्चित नहीं होता। यह कहकर राजाने उसे गधे पर बैठाकर नगरसे निकलवा दिया। बन्धुश्री तब विचारने लगी—आश्चर्य है, किये हुए पुण्य-पापका फल यहीं पर और बहुत जल्दी मिल जाता है। आचार्योंने भी कहा है—तीव्र पुण्य अथवा पापका फल तीन वर्षमें, या तीन महीनेमें, या तीन पक्षमें अथवा तीन दिनमें मनुष्यको शीघ्र मिल जाता है।

इसके बाद राजाने मनमें विचारा-जिनधर्मको छोड़ कर दूसरे धर्मोंमें इतना चमत्कार नहीं है-ऐसी महिमा नहीं है-ऐसा प्रभाव नहीं है। ऐसा निश्चय करके वह जिनमंदिरमें गया और वहाँ समाधिगुप्ति मुनिको तथा वृषभदास और जिनदत्ताको नमस्कार कर बैठ गया। मुनिराजसे उसने प्रार्थना की-प्रभो, धर्मके प्रभावसे वृषभदास और जिनदत्ताका उपसर्ग आज दूर हुआ। मुनिराज बोले-राजन्, धर्मके प्रभावसे सब मनोरथोंकी सिद्धि होती है। संसारमें धर्मके सिवा सब अनित्य है। इसलिए धर्म साधन सदा करते रहना चाहिए। देखिए, धन तो पैरोंकी धूलके समान है, जवानी पर्वतमें बहनेवाली नदीके वेग समान है, मनुष्यत्व जलबिन्दुके समान चंचल है, और यह जीवन फेनके समान क्षण विनाशीक है। ऐसी-दशामें जो मनुष्य स्थिरमन होकर धर्म नहीं करते वे बुढ़ापेमें केवल पश्चात्ताप ही करते हैं और शोक रूपी अग्निसे जला करते हैं। राजाने पूछा-प्रभो, वह धर्म किस प्रकार है? मुनि महाराजने कहा-यदि तुम सच्चा सुख चाहते हो, तो प्राणियोंकी हिंसा मत करो, पराई स्त्रीका संग छोड़ो, परिग्रहका परिमाण करो और रागादिक दोषोंको छोड़कर जैनधर्ममें प्रीति करो-उसमें दृढ़ श्रद्धान करो। इस धर्मोपदेशको सुनकर संग्रामशूरने अपने पुत्र सिंहशूरको राज्य सौंपकर मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण करली। उस समय वृषभदास सेठ और जिनदत्ताने तथा और और लोगोंने भी दीक्षा ग्रहण की। अन्तमें मुनि-

कर—उनका उपकार मानकर उन्हें अपना अमृततुल्य पानी पिलाते हैं। मतलब यह कि महापुरुष किये उपकारको कभी नहीं भूलते। राजाने फिर पूछा—अच्छा किसकी प्रेरणासे सेठने ऐसा किया था? देव बोला—महापुरुषोंका परोपकार करनेका स्वभाव ही होता है। उन्हें प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं रहती। सूर्यको अन्धकार मिटानेकी आज्ञा कौन देता है? वृक्षोंके हाथ किसने जोड़े थे—कि तुम रास्तेमें लग जाओ, लोग तुम्हारी छायामें खड़े हुआ करेंगे। मेघोंसे कोई प्रार्थना नहीं करता कि तुम पानी बरसाओ। मतलब यह कि सज्जन पुरुष-स्वभावहीसे— बिना किसीकी प्रेरणाके, परोपकारके लिए कमर कसे रहते हैं। यह सुनकर राजाने कहा—सब धर्मोंमें जैनधर्म ही बड़ा धर्म है। इसकी प्राप्ति बड़े भारी पुण्यसे होती है। सेठ बोले—महाराज, आपने बहुत ठीक कहा। थोड़े पुण्यसे जैनधर्मकी प्राप्ति नहीं होती। प्रभावशाली जैनधर्म, सज्जनोंकी संगति, विद्वानोंका सम्पर्क, बोलनेकी चतुराई, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें प्रवीणता, जिनेन्द्र भगवानके चरण कमलोंमें भक्ति, सच्चे गुरुओंकी सेवा, शुद्ध चारित्र और निर्मल बुद्धि, इन बातोंकी प्राप्ति थोड़े पुण्यवानोंको नहीं होती। जिनदत्तकी बातोंसे प्रसन्न होकर देवने पंचाश्चर्य किये, जिनदत्त सेठकी पूजा की, और प्रशंसा कर वह बोला—कि मैं चोर था, पर आपके प्रभावसे देव हो गया। आपने बिना ही कारण मेरा उपकार किया। आपका मैं अत्यन्त कृतज्ञ रहूँगा। यह

कारोंने यह ठीक कहा है–अविवेकी मनुष्य गुणको ग्रहण न कर दोषोंको ग्रहण करते हैं। स्तनों पर लगी हुई जोंक दूधको न पीकर खूनको पीती है। यह उसका स्वभाव ही है।

३–चन्दनश्रीकी कथा।

इसके बाद अर्हद्दास सेठने अपनी दूसरी स्त्री चंदनश्रीसे कहा–प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वके प्राप्तिका कारण बतालाओ। चन्दनश्री तब यों कहने लगी—

कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नामका एक नगर है। वहाँके राजाका नाम भूभाग था। उसकी रानीका नाम भोगावती था। गुणपाल नगरसेठ था। यह सेठ बड़ा धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि था। इसकी स्त्रीका नाम गुणवती था। इसी नगरमें सोमदत्त नामका एक ब्राह्मण रहता था। पर वह बड़ा ही दरिद्री था। इसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। यह बड़ी सती थी। इसके एक लड़की थी। उसका नाम सोमा था। एक दिन सोमिलाको बड़े जोरका बुखार आया और वह उसी बुखारमें मर भी गई। इसके मरनेसे ब्राह्मणको बहुत दुःख हुआ। एक दिन एक मुनिसे ब्राह्मणका साक्षात्कार

हो गया। मुनिने इसकी दशा देखकर इससे कहा—प्रिय, तू क्यों
इतना दुखी हो रहा है? ब्राह्मणने अपनी सारी दुःख कहानी
मुनिराजसे कही। मुनि कहने लगे—भाई, जो पैदा होता है
वह जरूर मरता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी यह पापी
काल किसीको नहीं छोड़ता। सबको अपना ग्रास बना लेता
है। इस लोक और परलोकमें केवल एक धर्म ही हितकारी
है और कोई नहीं। इस प्रकार मुनिके धर्मोपदेशसे ब्राह्मण
शान्त हुआ। उसने श्रावकके व्रत लिये। अबसे यथाशक्ति वह
दान, पूजादि पुण्य-कर्म करने लगा। आचार्य कहते हैं—थोड़ेसे
थोड़ा भी दान देना अच्छा है। यह इच्छा करना ठीक नहीं
कि जब हमारे पास बहुतसा इकट्ठा धन हो तब ही हम कुछ
करें। क्योंकि इच्छाके अनुसार धन किसको कब मिला है?
मनुष्यकी इच्छाओंकी पूर्ति तो कभी हो ही नहीं सकती। इसीसे
सोमदत्त दरिद्री होकर भी प्रतिदिन थोड़ा बहुत दान देता
रहता था। एक दिन नगरसेठ गुणपाल उसे दरिद्र और गरीब
श्रावक समझकर अपने घर लाया और उसने उसका अच्छी
तरह आदर-सत्कार किया। अबसे गुणपालने उसके निर्वाहका
सब तरह उचित प्रबन्ध कर दिया। ग्रन्थकार कहते हैं—महा-
पुरुषोंके संसर्गसे कौन मनुष्य गुणी और पूज्य नहीं होता?
मुनिके उपदेशसे ब्राह्मणको धर्म लाभ हुआ। वह गुणवान
बना। सेठने उसके गुणोंकी परीक्षा कर उसे आश्रय दिया।
सच है—गुणी पुरुषोंको ही गुणोंकी परीक्षा होती है। मूर्खोंके

सामने तो गुण भी दोष हो जाते हैं। देखो न, नदियोंका पानी कैसा मीठा होता है, पर समुद्रमें मिलनेसे वही खारा हो जाता है–पीने योग्य नहीं रहता। महा पुरुषोंकी संगतिसे सब कोई ऊँचा पद लाभ कर सकता है। जब गलियोंका पानी गंगाजीमें मिल जाता है तो देवता लोग भी उसे अपने माथे पर चढ़ाने लगते हैं।

एक दिन सोमदत्तने अपनी मृत्युका समय निकट जान कर गुणपालको पास बुलाकर कहा–आपकी सहायतासे मैंने कोई दुःख नहीं जाना। अब मेरा मरण समय आगया है, इसलिए मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि मेरी इस लड़कीको श्रावक व्रतधारी ब्राह्मणको छोड़कर और किसीको न दीजिएगा। यह कह कर सोमाको उसने गुणपालके हवाले कर दिया और आप समाधिमरणसे प्राणोंको त्याग कर स्वर्ग गया। ग्रन्थकार कहते हैं–विद्या, धन, तप, शूरता, उच्च कुल, नीरोगता, राज्य और स्वर्ग तथा मोक्ष, यह सब धर्महीसे प्राप्त होते हैं।

सोमदत्तके मरे बाद गुणपाल सेठ सोमाको पुत्रीकी तरह पालने लगा। उसी नगरमें रुद्रदत्त नामका एक धूर्त ब्राह्मण रहता था। वह रोज जूआ खेला करता था। एक दिन किसी कामसे सोमा रास्तेमें जा रही थी। जुआरी रुद्रदत्तकी उस पर नजर जा पड़ी। रुद्रदत्तने लोगोंसे पूछा–यह किसकी लड़की है? उनमेंसे किसीने कहा–यह सोमदत्त

ब्राह्मणकी लड़की है। इसने पहले समय इसे गुणपाल सेठके हवाले किया है। तबहीसे गुणपाल इसे पुत्रीके समान पालता है। रुद्रदत्त तब कहने लगा—इसके साथ तो मैं विवाह करूँगा। उन लोगोंने कहा—तू पागल है। मूर्ख है जो बे-सिर पैरकी बातें कर रहा है।

बड़े बड़े दीक्षित और चतुर्वेदी ब्राह्मण भी इसके लिए मंगनी कर-करके लौट गये, उनके साथ तो सेठने सोमाका विवाह किया ही नहीं और तुझसे जुआरी—व्यसनीके साथ वह सोमाको ब्याह देगा? असंभव है। गुणपाल जैनीको छोड़कर सोमाका विवाह और किसीसे न करेगा। उन लोगोंकी बातें सुनकर रुद्रदत्तने बड़े घमंडसे कहा—मेरी बुद्धिका चमत्कार तो जरा आप लोग देखते रहिए कि मैं क्या क्या करता हूँ। आप विश्वास करें कि मैं ही इसके साथ विवाह करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके रुद्रदत्त परदेश चला गया। वहाँ पर कपटसे किसी मुनिके पास वह ब्रह्मचारी बन गया और ब्रह्मचारीके सब क्रिया-कर्म सीख कर उसी नगरमें गुणपाल सेठके जिनालयमें आकर ठहर गया। इस नये ब्रह्मचारीका आगमन सुनकर गुणपाल सेठ मंदिरमें आया और इच्छाकार करके उसके पास बैठ गया। ब्रह्मचारीने "दर्शनविशुद्धिरस्तु" ऐसा कह कर आशीर्वाद दिया। इसके बाद सेठने कहा—आप किनके शिष्य हैं? यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ? ब्रह्मचारीने कहा—आठ आठ उपवास

करनेवाले जिनचन्द्र भट्टारकका मैं शिष्य हूँ। पूर्व देशमें परिभ्रमण करके, वहाँ भगवान्के पाँचों कल्याणोंकी भूमियोंकी वन्दना कर अब शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ भगवान्के जन्मस्थानके दर्शन करने आया हूँ। यह सुनकर सेठने कहा–वह नर धन्य है जिसके दिन धर्मध्यानमें बीतते हैं। इसके बाद सेठने उससे पूछा–आपकी जन्मभूमि कहाँ है? ब्रह्मचारीने कहा–इसी नगरमें सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम सोमिला था। मैं उन्हींका इकलौता लड़का हूँ। अपने माता-पिताकी मृत्युसे मुझे बहुत दुःख हुआ। उसी दुःखके मारे मैं तीर्थयात्राको निकल गया। काशीमें जिनचन्द्र भट्टारकने मुझे धर्मोपदेश दिया। उनके उपदेशमें मैं ब्रह्मचारी हो गया।

सेठजी, गोत्र और देशसे क्या प्रयोजन? यह सब तो विनाशीक हैं। मुझे तो एक धर्म ही शरण है, जिससे सब सिद्धि होती है। धर्मकी महिमा तो देखिए, कि जिसके प्रभावसे धन चाहनेवालोंको धन-प्राप्ति, काम-पुरुषार्थके चाहनेवालोंको काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति, सौभाग्यके अभिलाषियोंको सौभाग्य-प्राप्ति, पुत्र वांछकोंको पुत्र-प्राप्ति, तथा राज्य चाहनेवालोंको राज्य-प्राप्ति होती है। अर्थात् धर्मात्मा पुरुष जो कुछ भी चाहे उसे उसकी प्राप्ति अवश्य होती है। स्वर्ग और मोक्ष भी जब धर्म-प्रभावसे मिल सकता है तब और वस्तुओंकी तो बात ही क्या है। इस प्रकार ब्रह्मचारीने धर्मकी बड़ी महिमा गाई। उसकी

इन बातोंसे सेठने उसे धर्मात्मा समझ पूछा—आपने जन्म-भरके लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया है या कुछ समयके लिए? ब्रह्मचारीने कहा—यद्यपि मैंने ब्रह्मचर्य-व्रत कुछ ही समय-तकके लिए लिया है, तथापि मेरी रुचि स्त्रियोंमें नहीं है। क्योंकि स्त्रियाँ भयंकर विषके समान होती हैं।

देखिए, महादेवके गलेमें कालकूट विष भरा है, पर महादेव उससे विचलित नहीं हुए; लेकिन स्त्रीसे उन्हें भी विचलित हो जाना पड़ा। इसीलिए कहते हैं—स्त्रियाँ विषसे भी बढ़कर विष हैं। यह सुनकर सेठने कहा—मेरे घरमें एक ब्राह्मणकी लड़की है। आप उसके साथ विवाह करें तो अच्छा हो। आप श्रावक हैं, इसलिए मैं आपके साथ उसको ब्याह दूँगा। सेठकी बात सुनकर ब्रह्मचारी बोला—विवाह करनेसे मनुष्यको संसारमें फँसना पड़ता है, इसलिए मैं विवाह नहीं करता—मुझे ब्याहसे मतलब नहीं। एक और भी बात है, यदि मैं विवाह करलूँ तो जो कुछ मैंने लिखा-पढ़ा है वह सब स्त्रीके सम्पर्कसे चला जायगा। क्योंकि स्त्रीके सेवनसे सिद्ध अंजन, मंत्र, तंत्र, कला, कौशल आदि सब गुण नष्ट हो जाते हैं।

निदान सेठने बड़े आग्रहसे ब्रह्मचारीका सोमाके साथ विवाह कर दिया। विवाहके बाद दूसरे दिन ही रुद्रदत्त विवाह-कंकन पहिने जूआखानेमें पहुँचा और अपने साथी जुआरियोंसे कहने लगा—मैंने जो तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा की थी आज वह पूरी हो गई। मैंने सोमाके साथ विवाह कर

किया। यह सुनकर साथियोंने उसे बड़ी शाबासी दी। रुद्र-दत्त सोमाके साथ व्याह करके भी अपनी पहली स्त्री काम-लताके पास, जो एक वैश्या थी, जाने-आने लगा। काम-लता वसुमित्रा कुट्टिनीकी लड़की थी। रुद्रदत्तका वृतान्त सु-नकर सोमाने दुखित होकर कहा—यह मेरे कर्मोंका फल है। जो कर्म मैंने उपार्जन किये हैं वे विना फल दिये नहीं छूट सकते। गुणपाल उसे दुखी देखकर बोला—पुत्री, अब बीती बात पर दुःख करना व्यर्थ है। यह कलियुग है, इसमें जो न हो, सो थोड़ा है। देख, चन्द्रमामें कलंक, कमलनालमें काँटे, समुद्रका पानी खारा, पंडितोंमें निर्धनता, इष्टजनका वियोग, सुन्दरतामें ऐब, धनिकोंमें कृपणता, और रत्नोंमें दोष, इ-त्यादि बातोंका होना यह कालका स्वभाव ही है। शुभ कार्योंमें बड़े बड़े पुरुषोंको विघ्न-बाधाएँ आ जाती हैं; लेकिन जब दुष्ट लोग अन्यायमें प्रवृत्त होते हैं तब न जाने वे विघ्न-बाधाएँ कहाँ चली जाती हैं! यह सुनकर सोमा बोली—पिताजी, मेरे मनमें इस बातका जरा भी दुःख नहीं है कि यह विपत्ति मुझ पर क्यों आई। जुआरियोंका तो ऐसा स्वभाव ही होता है। नीतिकारोंने भी ऐसा ही कहा है—चोरमें सत्य नहीं होता, शूद्रमें पवित्रता नहीं होती, मदिरा पीनेवालोंमें हृदयकी पवि-त्रता नहीं होती, पर जुआरियोंमें ये तीनों बातें नहीं होतीं।

दुष्ट मनुष्योंमें यह कुलीन है, यह गुणवान है, ऐसा समझ कर विश्वास नहीं करना चाहिए। मलयगिरिके चन्दनकी

ही क्यों न हो, पर अग्नि तो जलावेगी ही। यह सुनकर सेठने कहा-पुत्री, मेरी अज्ञानतासे जो हो गया उसे तुम्हें सहलेना चाहिए। इस तरह समझा कर सेठने सोमाको बहुतसा धन देकर कहा—तुझे अबसे खूब दान-पूजादिक पुण्य-कर्म करना चाहिए, जिससे उत्तम गतिकी प्राप्ति हो। दान देनेसे मनुष्य गौरवको प्राप्त होता है, धनके संग्रहसे नहीं। देखो, मेघ ऊंचे है और समुद्र नीचे है, पर समुद्र संग्रही है और मेघ दानी है, इसलिए समुद्रसे मेघकी प्रतिष्ठा अधिक है। धनका फल दान है, शास्त्रका फल शान्ति है, हाथोंका फल देवोंकी पूजा करना है, क्रियाका फल धर्म और दूसरोंके दुःखोंको मिटाना है, जीवनका फल सुख है, वाणीका फल सत्य है, संसारका फल सुख-परम्पराकी वृद्धि है और प्रभाव तथा भव्योंकी बुद्धिका फल संसारमें शान्तिलाभ करना है। इस प्रकार सेठने सोमाको खूब समझा कर बहुत सन्तोष दिया। सोमाने उस धनसे एक विशाल जिनमंदिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठा कराई। प्रतिष्ठाके बाद चौथे दिन उसने मुनि और आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओंका यथाशक्ति आदर-सत्कार किया। इसी अवसर पर शहरके और और लोग तथा वसुमित्रा, कामलता, रुद्रदत्त आदिको भी निमन्त्रण दिया गया। यथाशक्ति उनका आदर-सत्कार किया गया। यह सच है कि सज्जन मनुष्य निर्गुणियों पर भी दया ही करते हैं। चन्द्रमा चांडालके घर परसे अपनी चांदनीको नहीं हटाता। तब वसुमित्रा

सोमाके घर आई और उसने सोमाका रूप देखा, तो उसका सिर घूमने लगा। वह मनमें कहने लगी—सोमा इतनी सुन्दरी है। यदि रुद्रदत्त इस पर मोहित हो गया तब तो हमारा जीवन निर्वाह ही कठिन हो जायगा। इसलिए इसे किसी तरह मार डालना ही उचित है। ऐसा निश्चय कर उस कुटिनीने एक घड़ेमें नीचे तो एक भयंकर काले साँपको रक्खा और ऊपरसे उसमें फूल भरकर उसे सोमाके हाथमें दे कहा—पुत्री, इन फूलोंसे तू देवपूजा करना। सोमाने फूलोंको लेनेके लिए घड़ेमें हाथ डाला, पर क्या आश्चर्य है कि उसके पुण्यप्रभावसे साँपकी जगह फूलोंकी माला बन गई। यह देख कुटिनीको संदेह हुआ कि मैंने न जाने घड़ेमें साँप रक्खा या नहीं। उसे इसका बड़ा आश्चर्य हुआ। सब संघको जिमाकर सोमाने वसुमित्रा, कामलता और रुद्रदत्तको भी बड़े आदरसे जिमाया और उन्हें वस्त्राभूषण दिये। अन्तमें जाते समय उसने कामलताको आशीर्वाद देकर वह माला उसके गलेमें डाल दी। देखते देखते उस मालाका सर्प होकर उसने कामलताको डस लिया। वह मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ी। यह देख कुटिनीने हल्ला मचाया और साँपको घड़ेमें रखकर वह राजाके पास दौड़ी हुई पहुँची। राजासे उसने कहा—महाराज, गुणपालकी लड़की सोमाने मेरी लड़की कामलताको मारडाला। यह सुनकर राजाको बड़ा क्रोध आया। सोमा बुलवाई गई। वह आई। राजाने उससे पूछा-विना कारण तूने कामलताको क्यों मारडाला? सोमाने कहा-

इसी बीचमें नगरदेवताने उस कापालिकसे प्रेरणा की कि तू नगरमें जाकर सच सच बात कह। तब वह नगरके लोगोंसे कहने लगा- जिनदत्ताका कोई अपराध नहीं है। बन्धुश्रीके कहनेसे मेरी वेतालीविद्याने कनकश्रीको मारा है।

इधर नगरदेवताने वेतालीविद्याको भी खूब ताड़ना की। तब उसने बुढ़ियाका रूप बनाकर कहना आरंभ किया— दिनदत्ता निर्दोष है, कनकश्री ही पापिनी थी; इसलिए मैंने उसे मार डाला। यह सुनकर नगरके लोग कहने लगे—अहा, यह जिनदत्ता बड़ी ही साध्वी और निर्दोष स्त्री है। इसी समय देवोंने उसपर पंचाश्चर्य किये। यह सब देखकर राजाने कहा—बन्धुश्री दुष्ट है, उसे गधे पर चढ़ाकर नगरसे निकाल बाहिर करो। बन्धुश्रीने तब गिड़गिड़ा कर कहा—महाराज, मैंने यह सब अज्ञानसे किया है। मुझे इसका प्रायश्चित्त दिलवा दीजिए।

राजाने कहा—इस दोषका मैंने कहीं प्रायश्चित्त ही नहीं सुना। नीतिकारने कहा है—मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्या करनेवाले तथा चुगलखोर इन चारोंका प्रायश्चित्त नहीं होता। यह कहकर राजाने उसे गधे पर बैठाकर नगरसे निकलवा दिया। बन्धुश्री तब विचारने लगी—आश्चर्य है, किये हुए पुण्य-पापका फल यहीं पर और बहुत जल्दी मिल जाता है। आचार्योंने भी कहा है—तीव्र पुण्य अथवा पापका फल तीन वर्षमें, या तीन महीनेमें, या तीन पक्षमें अथवा तीन दिनमें मनुष्यको शीघ्र मिल जाता है।

राजाने कामलताको अभय दान देकर उसकी माता कुटिनीसे पूछा—यह क्या बात है? मेरे सामने तूने झूठ क्यों कहा? कुटिनी बोली—महाराज, यह सब मेरा ही चरित्र है। मुझसे अपराध हो गया। मुझे क्षमा कीजिए। राजाने उसे भी क्षमा कर दिया।

इधर धर्मका प्रभाव देख कर लोगोंने सोमाकी पूजा की, देवोंने पंचाश्चर्य किये। लोग कहने लगे—सच है धर्मके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है।

इधर महाराज भूभाग और गुणपाल सेठने तथा और कई लोगोंने जिन चन्द्रभट्टारकसे दीक्षा ग्रहण की। किसी किसीने श्रावकके व्रत लिये तथा किसीने अपने परिणामोंको ही सुधारा। और महारानी भोगावती, गुणपालकी स्त्री गुणवती, सोमा तथा और कितनी स्त्रियोंने भी श्रीमती आर्यिकाके पास जाकर दीक्षा ग्रहण की। रुद्रदत्त वसुमित्रा और कामलता आदिने श्रावकोंके व्रत लिये।

यह कथा सुनाकर चन्दनश्रीने कहा—नाथ, मैंने यह सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा है, इस कारण मुझे दृढ़ सम्यदर्शनकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—जो तुमने देखा उसका मैं श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उस पर रुचि-प्रेम करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। लेकिन उन सबमें छोटी कुंदलता यही बोली—यह सब झूठ है। राजा, मंत्री और चोर अपने अपने मनमें विचारने लगे—कुंदलता पापिनी

ने कहा—संसारके सब पदार्थोंमें भय है, एक वैराग्य ही अभय है। तुम लोगोंने दीक्षा लेकर बड़ा ही अच्छा किया। देखो, भोगोंमें रोगका भय है, सुखमें उसके विनाश होनेका भय है, धन रहने पर राजा और चोरका भय है, अगर मनुष्य नौकर होकर रहे तो उसे मालिकका डर रहता है, विजय हो जाने पर भी शत्रुका भय है, कुलमें दुष्टा—व्यभिचारिणी स्त्रीके होनेका भय है और किसी तरहसे मान-मर्यादा बढ़ जाय तो उसके घटनेका डर है, गुणोंमें दुष्टोंका भय और देहमें यमराजका भय है। मतलब यह कि भय सबमें है, पर एक वैराग्य ही ऐसा है, जो भयसे सर्वथा परे है।

इस कथाको सुनकर अर्हद्दासकी स्त्री मित्रश्रीने कहा—नाथ, मैंने यह सब प्रत्यक्ष देखा है। इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये तूने जो देखा है, उस पर मैं विश्वास करता हूँ, उसको चाहता हूँ और उसमें रुचि करता हूँ। सेठकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर सेठकी छोटी स्त्री कुन्दलताने कहा—यह सब झूठ है। मैं इस पर श्रद्धान नहीं कर सकती। राजाने, मंत्रीने और बड़के वृक्ष पर छुपे हुए चोरने कुंदलताकी बात सुनी। राजाने मनमें विचारा—यह कैसी पापिनी है जो सत्यको भी असत्य कह रही है। सबेरे ही इसे गधे पर चढ़ाकर निकाल शहर बाहर करूँगा। चोरने अपने मनमें विचारा—दुर्जन गुणोंको छोड़कर दोषोंको ही ग्रहण करता है। नीति-

जो वृक्ष सूख गये थे, उनमें फल-फूल-पत्ते आगये। वे हरे-भरे हो गये। डालियोंमें नये नये अंकुर फूटे उठे। जिन वावड़ियोंमें पानी और कमल सूख गये थे, उनमें पानी भर गया, कमल फूल उठे। हंस और मोर खेलने लगे। कोयलें मधुर मधुर गाने लगी। जुही, चमेली, पारिजात, चंपा, मालती, कमलिनी आदि विकसित हो गई। उनकी सुगंधके मारे भौंरे उन पर आ-आकर गुन गुन करने लगे। पक्षीगण मधुर मनोहारी गान करने लगे।

इसी उपवनमें मुनिराज विराजमान थे। मुनियोंमें जो गुण होने चाहिएँ, जैसे—देहमें निर्ममता, गुरुमें विनय, निरन्तर शास्त्रोंका अभ्यास, निर्दोष चारित्र, परमशान्ति, संसारसे विरक्ति और अन्तरंग परिग्रह–मिथात्व, वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और वाह्यपरिग्रह—जमीन, घर, धन, धान्य, नौकर, चौपाये, गाड़ी, शय्या, आसन, वर्तन वगैरह—का त्याग, धर्मसम्बन्धी ज्ञान और परोपकारिता, वे सब इनमें विद्यमान थे। इनका मासिक योग जब पूरा हुआ तब ये आहारके लिए कौशाम्बीमें आये। यद्यपि सोमशर्मा कुपात्रोंको दान देता था, पर उसमें दाताके–श्रद्धा, शक्ति, अलोभ, दया, भक्ति, क्षमा और ज्ञान, ये सात गुण थे। तथा पड़गाहना, ऊँचे स्थान पर बैठाना, पादोदक लेना, पूजा करना, प्रणाम करना, मन-वचन-कायकी शुद्धि और शुद्ध आहार देना, ये नवधा भक्ति

हो गया। मुनिने इसकी दशा देखकर इससे कहा—प्रिय, तू क्यों इतना दुखी हो रहा है? ब्राह्मणने अपनी सारी दुःख कहानी मुनिराजसे कही। मुनि कहने लगे—भाई, जो पैदा होता है वह जरूर मरता है। बहुत प्रयत्न करने पर भी यह पापी काल किसीको नहीं छोड़ता। सबको अपना ग्रास बना लेता है। इस लोक और परलोकमें केवल एक धर्म ही हितकारी है और कोई नहीं। इस प्रकार मुनिके धर्मोपदेशसे ब्राह्मण शान्त हुआ। उसने श्रावकके व्रत लिये। अबसे यथाशक्ति वह दान, पूजादि पुण्य-कर्म करने लगा। आचार्य कहते हैं—थोड़ेसे थोड़ा भी दान देना अच्छा है। यह इच्छा करना ठीक नहीं कि जब हमारे पास बहुतसा इच्छित धन हो, तब ही हम कुछ करें। क्योंकि इच्छाके अनुसार कब किसको क्या मिला है? मनुष्यकी इच्छाओंकी पूर्ति तो कभी हो ही नहीं सकती। इसीसे सोमदत्त दरिद्री होकर भी प्रतिदिन थोड़ा बहुत दान देता रहता था। एक दिन नगरसेठ गुणपाल उसे दरिद्र और गरीब श्रावक समझकर अपने घर लाया और उसने उसका अच्छी तरह आदर-सत्कार किया। अबसे गुणपालने उसके निर्वाहका सब तरह उचित प्रबन्ध कर दिया। ग्रन्थकार कहते हैं—महापुरुषोंके संसर्गसे कौन मनुष्य गुणी और पूज्य नहीं होता? मुनिके उपदेशसे ब्राह्मणको धर्म लाभ हुआ। वह गुणवान बना। सेठने उसके गुणोंकी परीक्षा कर उसे आश्रय दिया। सच है—गुणी पुरुषोंको ही गुणोंकी परीक्षा होती है। मूर्खोंके

लोग कुपात्र हैं। दान देने योग्य नहीं। उनके विचार मलिन रहते हैं। वे आर्तध्यानी होते हैं। इसलिए वे दानके पात्र नहीं; किन्तु दानका पात्र वह है, जो स्वयं निर्दोष मार्गमें चलता हो और निरपेक्ष भावसे दूसरोंको चलाता हो, तथा जो स्वयं संसारसे पार होना जानता हो और दूसरों-को भी पार कर सकता हो। ऐसे ही गुरुओंकी सेवा करनी चाहिए और ऐसे ही सत्पात्रोंको दान देना चाहिएं। तथा बन्ध-मोक्षका स्वरूप बतलानेवाले सत्य ज्ञानकी और राग-द्वेष रहित सच्चे देवोंकी सेवा करनी चाहिए। ऐसा करनेवाला ही स्वर्ग और मोक्षका पात्र है। दान योग्य तीन प्रकारके पात्र हैं। वे उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्य-पात्र। उनमें उत्तमपात्र तो मुनि हैं, मध्यमपात्र अणुव्रती श्रावक और जघन्यपात्र अविरत-सम्यग्दृष्टि हैं। और व्रत संयुक्त होकर जो सम्यक्त्व रहित हैं, वे कुपात्र हैं, और जो इन दोनोंसे रहित हैं वे साक्षात् नरकके पात्र हैं। इन तीनों पात्रोंको अभयदान देनेसे दाताको कहीं भय नहीं रहता। आहारदान देनेसे भोगोंकी प्राप्ति होती है, औषधदानसे नीरोगता होती है तथा शास्त्रदानका दाता श्रुतकेवली होता है। लेकिन जो कुपा-त्रोंको दान देता है वह अपना और उस कुपात्रका भी नाश करता है। जैसा कि कहा है—राखमें होम करनेकी तरह

कुपात्रको दान देना व्यर्थ है। जैसे साँपको दूध पिलानेसे वह विष बन जाता है, वैसे कुपात्रको दान देना दाताके लिए विषके समान है। जैसे ऊसर जमीनमें बोया हुआ बीज निष्फल है, उसी तरह कुपात्रको दान देना भी निष्फल है। एक बावड़ीका पानी गन्नेमें अगर पहुँच जाता है तो वह मीठा हो जाता है और यदि वही पानी नीममें पहुँच जाय तो कडुवा हो जाता है। यही दशा पात्रदान और कुपात्रदानकी है। मंत्रीने मुनिके उपदेशको बड़े ध्यानसे सुना और फिर पूछा—मुनिराज, आपको दान देनेसे मैंने जैसा फल पाया है और लोगोंने भी मुनियोंको दान देकर ऐसा फल पाया है या नहीं ? मुनिराजने कहा–दक्षिणदेशमें वेनातट नामका नगर है। उसमें सोमप्रभ राजा था। सोमप्रभा उसकी रानी थी। यह राजा ब्राह्मणोंका बड़ा भक्त था। ब्राह्मणोंके सिवाय और कोई जगत्का तारक हो ही नहीं सकता, यह उसका सिद्धान्त था। उसका यह भी निश्चय था कि गौ, ब्राह्मण, वेद, सती, सत्यवादी, दान और शील इन सातोंहीसे जगत्की शोभा है।

एक बार राजाने अपने मनमें विचारा—मैंने धन तो बहुतसा उपार्जन किया, पर अब इसके द्वारा कुछ दान-पुण्य भी कर लेना चाहिए। अन्यथा इसका नाश तो होगा ही। क्योंकि दान, भोग और नाश धनकी ये तीन ही गति

हैं। जो न देता है, न भोगता है उसके धनकी तीसरी गति (नाश) नियमसे होती है। ऐसा विचार कर राजाने बहु-सुवर्ण नामका यज्ञ कराया। यज्ञकी आदिमें, बीचमें और अन्तमें ब्राह्मणोंको उसने खूब सुवर्णदान दिया। यज्ञशालाके पास ही एक विश्वभूति नामके ब्राह्मणका घर था। विश्वभूति भोगोपभोग वस्तुओंमें यम, नियम किया करता था और बड़ा निस्पृह था। इसकी स्त्रीका नाम सती थी। वह पतिव्रता थी।

एक दिन विश्वभूति एक खेतमेंसे कुछ जौके दाने बीन लाया। उन्हें भाड़में भुँनाकर पानीके साथ उनके उसने चार लड्डू बनाये। एकसे उसने होम किया, दूसरा अपने खानेको रक्खा, तीसरा स्त्रीको खानेके लिए दिया और चौथा लड्डू अतिथिदानके लिए रख छोड़ा। विश्वभूति प्रतिदिन ऐसा ही करने लगा। विश्वभूतिका यह नियमा था—कुछ न कुछ दान अवश्य करना चाहिए। क्योंकि मन चाहा कभी किसीको नहीं मिलता। इसलिए इस बातकी आकांक्षा करना ठीक नहीं कि जब मेरे पास बहुत धन होगा तभी मैं दान दूँगा। एक दिन विश्वभूतिके घर पर पिहिताश्रव मुनि आहार करनेके लिए आये। बड़े आनन्दसे विश्व-

---

(१) जो एकबार भोगा जाता है उसे भोग कहते हैं, जैसे भोजनादिक।
(२) जो बार बार भोगा जाता है वह उपभोग है, जैसे वस्त्रादिक।
(३) मरणपर्यन्त नियम करनेको 'यम' कहते हैं।
(४) किसी निश्चित समयके लिए नियम किया जाय वह 'नियम' है।

भूतिने मुनिको पड़गाया और अतिथिके निमित्त जो लड्डू वह रखता, उसे उसने मुनिको आहारके लिए दिया। मुनिने उस लड्डूको खा लिया। विश्वभूतिने तब अपने हिस्सेके लड्डूको भी दे दिया। मुनिने उसे भी खा लिया। तब उसने अपनी स्त्रीके मुँहकी तरफ देखा। उसकी स्त्रीने जल्दीसे अपना लड्डू भी लाकर दे दिया। मुनिने उसे खाकर आहार समाप्त किया। जब उसकी स्त्रीने अपना लड्डू लाकर दिया तो विश्वभूतिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह कहने लगा कि आज्ञाकारी पुत्र, सबको प्रसन्न करनेवाली विद्या, नीरोग शरीर, सज्जनोंकी संगति और प्यारी तथा आज्ञाकारिणी स्त्री ये पाँच चीजें दुःखको जड़मूलसे नाश करनेवाली हैं। इस निरन्तराय और शुद्ध आहार दानके फलसे देवोंने रत्नों और फूलोंकी वृष्टि की, सुगन्धित पवन चलाई, दुन्दुभी बजाए और जय-जयकार किया।

यह देखकर मिथ्यादृष्टि ब्राह्मण कहने लगे—महाराज, आपके बहु-सुवर्णयज्ञका यह फल है। यह सुनकर राजाको बड़ा संतोष हुआ। पर जब वे ब्राह्मण उन रत्नोंको उठाने लगे तो वे रत्न अंगारे हो गये। तब उस समय किसीने राजासे कहा—महाराज, यह आपके यज्ञका फल नहीं, किन्तु विश्वभूतिने जो मुनिको आहार दान किया, उसका फल है। इसे मुनिदानका फल समझ कर राजा मनमें विचारने लगा—सच है जो शुभ भावना संयुक्त हैं वे ही दानके पात्र

हैं। आर्त-रौद्र ध्यानी गृहस्थोंको दान देना व्यर्थ है। उनकी भावनाओंमें पवित्रता बहुत थोड़ी होती है। जैसा कि एक जगह लिखा है—

गृहस्थ लोग न तो निर्दोष शील ही पाल सकते हैं और न तप ही तप सकते हैं, किन्तु वे हर समय आर्तध्यानमें लगे रहते हैं। इससे उनमें शुद्ध भावनाएँ उत्पन्न न हो पातीं। इस बातको मैंने अच्छी तरहसे जान लिया कि दानके विना संसार रूपी कूएसे हम गृहस्थ लोगोंका उद्धार नहीं हो सकता। हमारे लिए दान ही एक सुदृढ़ अवलम्बन है। इसलिए मुनियोंको दान देना चाहिए। क्योंकि मुनि ही मुक्तिके कारण हैं, आर्त-ध्यानी गृहस्थ नहीं। हाँ वे गृहस्थ मान्य हैं—उनका धर्म सबको प्रिय है, जो मुक्तिके कारण और संसारको प्रकाशित करनेवाले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रयके धारक हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि उन्हें भी इस रत्नत्रयकी प्राप्ति उसी दानसे होती है जो बड़ी भक्तिसे दिया जाता है।

इसके बाद सोमप्रभने हाथ जोड़कर विश्वभूतिसे कहा—मुनिको दान देनेसे आपको जो फल हुआ, उसका आधा मुझे भी देनेकी कृपा कीजिए और मेरे सुवर्णयज्ञका आधा फल आप ले लीजिए। उत्तरमें विश्वभूतिने कहा—समझदार पुरुष दरिद्र भी होगा तब भी वह नीतिको छोड़कर अन्याय न करेगा। मैं भी यद्यपि दरिद्र हूँ तौ भी स्वर्ग और मोक्षके

देनेवाले आहार, औषधि, अभय और शास्त्र इन चार दानोंको या इनके फलोंको धन लेकर न बेचूँगा । यह कोरा जवाब पाकर राजा पिहिताश्रव मुनिके पास गया और उनसे बोला—भगवन्, गृहस्थ लोग चार प्रकारका दान किस लिए दिया करते हैं ? मुनि बोले—राजन्, आहार दान देनेसे देहकी स्थिति बनी रहती है । इसलिए आहार दान दिया जाता है । यह दान सब दानोंमें मुख्य है । जिसने आहार-दान दिया, समझिए उसने सब दान दिये । लाखों घोड़ोंका दान, गौओंका दान, भूमिका दान, सोने और चांदीके वर्तनोंका दान, सम्पूर्ण पृथिवीका दान और देवांगनाओंके समान करोड़ों कन्याओंका दान भी अन्नदानकी बराबरी नहीं कर सकता । औषधिदानसे रोगका विनाश होता है । रोग नाश हो जानेसे ही जप, तप, संयम आदि किये जा सकते हैं । इससे कर्मोंका क्षय होकर मोक्षकी प्राप्ति होती है । इस कारण मुनि तथा और और रोगियोंके लिए औषधि-दान देना चाहिए । आचार्योंने कहा है—रोगीको औषधि देना चाहिए, नहीं तो शरीर नष्ट हो जायगा और शरीर नष्ट होजाने-पर ज्ञान नहीं रहेगा और ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं हो सकती । रेवती श्राविकाने महावीर भगवानको औषधिदान दिया था, उसके फलसे उसने तीर्थंकरगोत्र नामकर्मका बन्ध किया । इसलिए औषधिदान भी देना योग्य है ।

तीसरा अभय-दान है। जो एक जीवकी रक्षा करता है, वह भी जब सदाके लिए निर्भय हो जाता है तब सब जीवोंकी रक्षा करनेवालेकी तो बात ही क्या है। इस लिए अभयदान सब प्राणियोंको देना चाहिए। अभयदानका देनेवाला दूसरे जन्ममें निर्भय होता है। सुमेरु पर्वतके बराबर सुवर्णदानसे, सम्पूर्ण पृथिवीके दानसे और गौ-दानसे जितना फल होता है उतना फल एक जीवकी रक्षा करनेसे होता है। इस विषयमें यमपाश चांडाल और भवदेव मल्लाहकी कथा प्रसिद्ध है। इसके सिवा अभयदानको—जीवदयाको छोड़कर जो कुपात्रोंको दान देता है उसका दान करना व्यर्थ है। कुपात्रको दान देना मानों साँपको दूध पिलाना है।

चौथा शास्त्र-दान है। इससे कर्मोंका क्षय होता है। अपने आप लिखकर वा लेखकोंसे लिखवा कर साधुओंको अथवा और पढ़नेवालोंको जो शास्त्रोंका देना तथा बाँचकर दूसरोंको सुनाना, इसको शास्त्रदान कहते हैं। शास्त्रदानका दाता दूसरे जन्ममें सम्पूर्ण शास्त्रोंका वेत्ता होता है और मोक्षके सुखको प्राप्त करता है। इस प्रकार मुनिराजसे महाराज सोमप्रभने सब दानोंका स्वरूप और फल सुनकर कहा—मुनिराज, मुझे भी जैन-व्रत दे दीजिए। मुनिराजने तब राजाको श्रावकोंके व्रत दिये। राजाने जैन होकर दानके सम्बन्धमें और भी कई जानने योग्य बातें मुनिराजसे पूछीं

कि प्रभो, दान कैसा देना चाहिए और किस किसको देना चाहिए ? मुनिराजने तब इस विषयको और भी स्पष्ट करके राजाको समझाया । उन्होंने कहा—न तो बालकको अर्थात् अज्ञान अवस्थामें, न भयसे तथा न प्रत्युपकारकी इच्छासे दान देना चाहिए और न नाचनेवाले, गानेवाले तथा हँसी-दिल्लगी करनेवाले भाँड़ आदिकोंको देना चाहिए; किन्तु गृहस्थोंको उचित है कि वे विधिपूर्वक यथा-द्रव्य, यथा-क्षेत्र, यथा-काल और यथा-शास्त्र योग्य पात्रोंको दान दें । तथा मुनियोंको ऐसा अन्नदान न देना चाहिए जो देखनेमें अच्छा न हो, विरस हो, सड़-घुन गया हो, चलित रस हो, रोग उत्पन्न करनेवाला हो, झूठा हो, नीच लोगोंके योग्य हो, दूसरेके लिए रक्खा हो, निन्दित हो, दुष्टोंका छुआ हो, त्याज्य हो, यक्ष क्षेत्रपालादिके निमित्त रक्खा हो, दूसरे गाँवसे लाया गया हो, मंत्र प्रयोगसे बुलाया गया हो, भेटमें आया हो, देने योग्य न हो, बाजारसे खरीदा गया हो, प्रकृतिसे विरुद्ध हो और ऋतुके अनुकूल न हो । और राजन्, इसके सिवा जो मुनि नये दीक्षित हो, अजान हो, या जो तपसे क्षीण शरीर हो गये हों, या कोई बड़े भारी रोगसे वे पीड़ित हों, जिससे वे तप न कर सकते हों, तो उनका उपचार करना चाहिए—उनकी टहल-चाकरी करनी चाहिए । जिससे वे तप करने योग्य हो जायँ । इसके सिवा करुणादान सब जीवोंको देना चाहिए—सब पर दया करनी चाहिए । यह

उपदेश सुनकर राजा और भी पक्का श्रावक हो गया। ग्रन्थकार कहते हैं कि हजार मिथ्यादृष्टियोंसे एक जैनी अच्छा है, हजार जैनियोंसे एक श्रावक अच्छा है, हजार श्रावकोंसे एक अणुव्रती अच्छा है, हजार अणुव्रतियोंसे एक महाव्रती अच्छा है, हजार महाव्रतियोंसे एक जैनशास्त्रका ज्ञाता अच्छा है, हजार जैनशास्त्रोंके ज्ञाताओंसे एक तत्त्ववेत्ता अच्छा है, और हजार तत्त्ववेत्ताओंसे एक दयालु अच्छा है; क्योंकि दयालुके समान अच्छा न कोई हुआ और न होगा। परन्तु जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, विनयी, कषायरहित और शान्तचित्त, सम्यग्दृष्टि जीव इन सबसे अच्छा है।

इस प्रकार श्रावक होकर सोमप्रभ राजाने कुछ समय गृहस्थाश्रममें ही विताया। वादमें वह उग्र तप करके अनन्त सुखके धाम मोक्षको चला गया।

सुवर्णयज्ञकी सब कथा सुनकर सोमशर्माने मुनिसे कहा— मुनिराज, अब तो मैं आपके चरणोंकी शरणमें हूँ। मुझे जिन-धर्मका प्रसाद दीजिए—मुझे सच्चा जैनी बनाइए। यह सुन-कर मुनिने उसे दर्शनपूर्वक श्रावकके व्रत दिये। व्रतोंको स्वीकार कर वह बोला—मुनिराज, आजसे मैं कभी लोहेका हथियार न चलाऊँगा। यह नियम लेकर, सोमशर्मा अबसे काठकी तलवार बनवाकर और उसे एक सुन्दर म्यानमें रखकर राज-दरबारमें जाने-आने लगा। इसी तरह उसे रहते बहुत समय बीत गया। एक दिन किसी दुष्टने राजासे

उसकी चुगली की कि महाराज, सोमशर्मा मंत्री तो अपने पास काठकी तलवार रखा करता है। भला, लोहेकी तलवारके बिना संग्राममें वह सुभटोंको कैसे मारेगा? सच तो यह है–मंत्री आपका सच्चा सेवक नहीं। ग्रन्थकार कहते हैं–दुष्टोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे अपने प्राणों तकको गँवाकर दूसरेके सुखमें विघ्न करते हैं। मक्खी ग्रासमें पड़कर अपने प्राणोंको खो देती है और खानेवालेको वमन करा देती है। अजितंजय इस दुष्टकी बातको मनमें रखकर कुछ समयके लिए चुप रहा। एक दिन उसने तलवारका प्रसंग छेड़कर राजकुमारोंको अपनी तलवार म्यानसे निकाल कर दिखलाई। राजकुमारोंने उसकी तलवारकी प्रशंसा की। राजाने तब उनकी भी तलवारें निकलवा कर देखी। उसने मंत्रीसे भी कहा कि तुम भी अपनी तलवार मुझे दिखालाओ। मैं देखूँ कि वह कैसी है? मंत्रीने राजाकी चेष्टासे उसका अभिप्राय जानकर मनमें विचारा कि यह किसी दुष्टकी करतूत जान पड़ती है। किसीने काठकी तलवारकी बात राजासे कहदी। नहीं तो राजा मेरी तलवारकी परीक्षा क्यों करता? अस्तु, मंत्रीने देव और गुरुका स्मरण कर मन ही मन कहा–यदि मेरे मनमें देव-गुरुका पक्का श्रद्धान है तो यह काठकी तलवार लोहमयी हो जाय! इस विचारके साथ ही मंत्रीने उस तलवारको म्यान सहित राजाके हाथमें दे दिया। राजाने ज्यों ही म्यानसे उसे निकाला, क्या आश्चर्य है कि वह सूर्यके

समान चमकते हुऐ लोहेकी निकली। तब राजाने उस चुगलखोरकी ओर देखा और कहा—क्योंरे दुष्ट! मेरे सामने भी इतनी भारी झूठ? राजाको तब बड़ा क्रोध आया। वह कहने लगा—दुष्टोंका यह स्वभाव ही होता है जो वे दूसरोंके अवगुणोंको ही कहा करते हैं, चाहे दूसरोंमें अवगुण हों या न हों।

राजाको क्रोधित देखकर मंत्रीने कहा—महाराज, राजाको समझदार लोग सब देवोंका अंश मानते हैं। इसलिए राजाको देवकी तरह मानकर उसके सामने झूठ कभी न बोलना चाहिए। यह सत्य है, पर इस चुगलखोरने जो आपसे कहा है, इसका कारण है। इसलिए इस पर आप क्रोध न करें। जो कुछ भी इसने कहा है वह सब सत्य है। यह सुनकर राजा बोला—यह कैसा सत्पुरुष है जो कि अपनी बुराई करनेवाले पर भी दया दिखलाता है। धिक्कार है इस चुगलखोरको जो ऐसे उपकारीकी भी बुराई करता है। राजाने फिर मंत्रीसे पूछा—यदि सचमुच तुम्हारी तलवार काठकी थी तो वह लोहकी कैसे हो गई? मंत्रीने तब अपना सब वृत्तान्त सुनाकर कहा—महाराज, लोहेके हथियार न रखनेका मेरा नियम है। पर देव-गुरु-धर्मका जो मुझे दृढ़ श्रद्धान था, उसके पुण्य-प्रभावसे यह काठकी तलवार भी लोहेकी हो गई। इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। यह सुनकर सब लोगोंने मंत्रीकी बड़ी प्रशंसा की और पूजी की।

देवोंने भी पंचाश्चर्य वर्षाकर मंत्रीको पूजा। राजा इस वृत्तान्तको सुनकर और जिनधर्मके माहात्म्यको देखकर लोगोंसे कहने लगा—

जिनधर्मको छोड़कर और कोई धर्म दुर्गतिसे नहीं बचा सकता और न इस संसारमें कुछ सुख ही है। तब क्यों न आत्महित किया जाये। यह विचार कर और संसार-विषय-भोगोंसे विरक्त होकर उसने अपने शत्रुंजय पुत्रको राज्य दे दीक्षा लेली। मंत्री अपना पद देवशर्मा पुत्रको देकर साधु हो-गया। इस समय और भी कई लोगोंने समाधिगुप्त मुनिके पास दीक्षा ग्रहण की। किसी किसीने केवल श्रावकोंके ही व्रत लिये। सोमप्रभकी रानी सुप्रभा, मंत्रीकी स्त्री सोमा तथा और कई स्त्रियोंने इस अवसर पर अभयमती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की। कुछ स्त्रियोंने श्रावकके व्रत लिये।

यह कथा कहकर विष्णुश्रीने कहा—नाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है। यह सुनकर अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तूने देखा है, उसका मैं भी श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुंदलता बोली—यह सब झूठ है। इसलिए न मैं इसका श्रद्धान करती, न इसे मैं चाहती और न इसमें मेरी रुचि ही है। राजा, मंत्री और चोरने विष्णुश्रीकी सब बातें सुन-कर मनमें विचारा—विष्णुश्रीकी प्रत्यक्ष देखी बातको भी यह

झूठ वतलाती है। यह बड़ी पापिनी है। इसे सवेरे ही गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकाल दूँगा। चोरने सोचा—यह सच है कि ऊँची जातिका होकर भी दुष्ट अपने स्वभावको नहीं छोड़ता। देखिए, अग्नि यदि चन्दनकी लकड़ीकी भी हो तब भी वह जलावेगी तो जरूर ही। उसी तरह ऊँचे कुलमें उत्पन्न होकर भी खल खल ही रहेगा—वह अपने स्वभावको न छोड़ेगा।

५—नागश्रीकी कथा।

विष्णुश्रीकी कथा सुनकर अर्हद्दासने नागश्रीसे कहा—प्रिये, अव तुम अपने सम्यक्त्वप्राप्तिका कारण वतलाओ। नागश्रीने तव यों कहना शुरू किया—वनारसमें जितारि नामका एक चंद्रवंशी राजा था। कनकचित्रा उसकी रानी थी। इसके एक लड़की थी। उसका नाम मुंडिका था। मुंडिकाको मिट्टी खानेकी बुरी आदत पड़ गई थी। इसलिए वह सदा रोगसे पीड़ित रहती थी।

राजमंत्रीका नाम सुदर्शन था। सुदर्शना मंत्रीकी स्त्री थी। एक समय वृषभश्री आर्यिकाने मुंडिकाको उपदेश देकर जैनी वना लिया। ग्रन्थकार कहते हैं कि परोपकार करना सत्पुरु-

षोंका स्वभाव ही होता है। मुंडिकाने जो व्रतोंका निर्दोष पालना किया, उसके प्रभावसे उसका सब रोग चला गया। तब आर्यिकाने उससे कहा—पुत्री, जो निर्दोष व्रतोंका पालन करते हैं वे स्वर्गादिकके भी जब पात्र होते हैं तब और साधारण रोगादिकके दूर होनेकी तो बात ही कौनसी हैं। मुंडिका जब ब्याह योग्य हुई तब जितारिने उसका स्वयंवर रचा। देश-देशान्तरोंके राजकुमार मुंडिकाको दिखाये गये, पर राजकुमारीको उनमें कोई पसन्द न आया—उसने किसीको नहीं वरा। वह अपने स्थानको चली गई।

तुंड देशमें चक्रकोट नामका नगर है। उसमें भगदत्त-नामका राजा था। यह बड़ा दानी था, रूप-लावण्यादि गुणोंसे युक्त था तथा बड़ा वैभवशाली था; पर था छोटी जातिका। इसकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था। राजमंत्री सुबुद्धि था। गुणवती मंत्रीकी स्त्री थी। एक बार भगदत्तने जितारिसे राजकुमारी मुंडिकाके लिए मँगनी की। जितारिने उत्तरमें कहा—भगदत्त, मैंने अपनी प्रिय कुमारीको अच्छे अच्छे राजकुमारोंके साथ तो ब्याहा नहीं और तू ओछी जातिमें पैदा हुआ, भला तब मैं तुझे अपनी पुत्रीको कैसे दूँगा? भगदत्त बोला—राजन, असलमें तो मनुष्योंमें गुण होने चाहिएँ। जाति कैसी ही हो, उससे कुछ लाभ नहीं। जितारिने तब कहा—अच्छा तुम्हारी यही इच्छा है, तो मैं युद्धमें तुम्हें सब कुछ मनोवाँछित दूँगा। जिता-

रिका यह उत्तर सुनकर भगदत्तको बड़ा क्रोध आया। वह जितारिपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगा। सुबुद्धि मंत्रीने उस समय भगदत्तसे कहा—महाराज, सब सामग्री इकट्टी करके युद्धके लिए जाना अच्छा है। नहीं तो पराजित होना पड़ता है। इसके सिवा जिस पर चढ़ाई करना है उसके बलको भी देखना चाहिए। बिना इन बातों पर पूरा विचार किये युद्ध करनेवाले इस तरह मर जाते जैसे दीयेमें पतंग। बिना किरणोंके जैसे सूर्यकी शोभा नहीं उसी तरह सैन्यके बिना राजाकी भी शोभा नहीं। क्योंकि एक नहीं, किन्तु समुदाय बलवान होता है। देखिए, एक तृण कुछ नहीं कर सकता, पर उन्हींकी रस्सी बन जाने पर बड़े बड़े हाथी भी बाँध लिये जाते हैं।

राजाको चाहिए कि वह ऐसे नौकर-चाकरोंको अपने यहाँ रक्खे जो चतुर हों, कुलीन हों, शूरवीर हों, समर्थ हों और भक्ति रखनेवाले हों।

महाराज, आपके पास ऐसे सेवक हैं, सैन्य है और सब सामग्री है तब आपको अकेले चढ़ाई करना ठीक नहीं। यह सुन भगदत्तने कहा—मेरा हित समझ कर जो तुमने कहा वह सब ठीक है। तुम मेरे हितचिंतक हो, तब तुम्हारा कहना मुझे मानना ही चाहिए। तुम्हारी बात न माननेसे उल्टा मेरी हानि है। भगदत्तने तब चढ़ाई सब सेना वगैरहको साथ लेकर ही की।

इसी बीचमें लक्ष्मीमतीने भगदत्तसे कहा—नाथ, आप व्यर्थ हठ क्यों करते हैं? जहाँ दोनोंकी समानता होती है, वहीं विवाह, मित्रता आदि बातें होती हैं। जब जितारि और आपकी समानता नहीं है तब आपका उसके साथ सम्बन्ध भी नहीं हो सकता। इसलिए आपको युद्ध न करना चाहिए। यों ही बैठे-बिठाये कोई काम कर बैठनेसे सिवा मरणके और कुछ नहीं होता। भगदत्तने तब लक्ष्मीमतीसे कहा—तू मूर्ख है, इन बातोंको नहीं समझ सकती। यदि कोई साधारण मनुष्य होता तो मैं उसके कहने पर ध्यान भी न देता। पर उसे तो अपने राजा होनेका बड़ा घमंड है और उसी घमंड में आकर उसने मुझसे कहा है कि युद्धमें मैं तुम्हें तुम्हारा सब मनोवांछित दूँगा। अब यदि मैं उससे युद्ध न करूँ तो और साधारण राजाओंकी नजरसे भी गिर जाऊँगा। वे मुझे न मानेंगे और ऐसा होना मुझे मंजूर नहीं। क्योंकि संसारमें एक क्षणमात्र भी क्यों न जीना हो, पर वह जीना उन्हीं पुरुषोंका सफल है जो विज्ञान, शूरवीरता, ऐश्वर्य और उत्तम उत्तम गुणोंसे युक्त हैं और बड़े बड़े प्रतिष्ठित लोग जिनकी प्रशंसा करते हैं। यों तो जूठा खाकर कौआ भी जीता रहता है। पर ऐसे जीनेसे कोई लाभ नहीं। इस तरह लक्ष्मीमतीको समझा-बुझाकर बड़े दल-बलके साथ भगदत्तने जितारि पर

चढ़ाई की। लक्ष्मीमतीने तब अगत्या कहा—अच्छा जाइए, जो होना होगा वह तो होगा ही। भगदत्तको प्रयाण करते समय कई शुभ शकुन हुए। दही, दूर्वा, अक्षत-पात्र, कमल-पुष्प युक्त जलभरे घड़े और पुत्रवती स्त्रियाँ आदि सामने दिखाई पड़ीं।

उधर किसीने आकर जितारिसे कहा—महाराज, भगदत्त सेना लेकर आप पर चढ़ आया है। उसके लिए कोई उपाय कीजिए। यह सुन जितारिने उस मनुष्यसे कहा—संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है जो मेरे ऊपर चढ़ाई कर सके? सिंह पर हरिणने, राहु पर चंद्रमा और सूर्यने, बिलाव-पर चूहोंने, गरुड़ पर साँपने, कुत्ते पर बिल्लीने, यमराज पर प्राणियोंने और सेना पर कौओंने कभी चढ़ाई की हो, यह बात न कभी देखी गई और न सुनी गई। बात यह है कि जबतक सूर्यका उदय नहीं होता है तभीतक अंधकार रहता है। जितारि यह कह ही रहा था कि भगदत्तने छुपे हुए आकर बनारसको चारों ओरसे घेर लिया। जितारिने जब भगदत्तकी सेनाका कोलाहल सुना तब उसने भी अपनी सब सेना लेकर बड़े वेगसे भगदत्तका साम्हना किया। जितारिको प्रयाण करते समय कई अपशकुन हुए—जैसे अकाल वृष्टि, भूमिका काँपना, प्रचण्ड उल्काका गिरना आदि। ये अशुकन क्या हुए मानों मैत्री-भावसे राजाको युद्ध करनेके लिए मना करने लगे। इन अपशकुनोंको देखकर मंत्री ने कहा—महाराज, मेरी समझमें तो भगदत्तके साथ राजकु-

मारीको व्याह देकर सुखसे रहनाही अच्छा है। आप क्यों व्यर्थ झगडेमें पड़ते हैं। क्योंकि समझदार राजा ग्राम देकर देशकी रक्षा करते हैं, कुल द्वारा ग्रामकी रक्षा करते हैं और कुल तथा अपनी रक्षाके लिए समस्त पृथिवी तकको त्याग-देते हैं। जितारिने तब उत्तर दिया—तुम डरते क्यों हो? मेरी तलवारकी चोट सह लेनेके लिए कोई समर्थ नहीं हो सकता। वज्र-प्रहारको सिरमें कौन सह सकता है? हाथोंसे समुद्रको कौन तैरकर पार कर सकता है? आगकी शय्या पर सुखकी नींद कौन सो सकता है? हर एक ग्रासमें विषको खानेवाला कौन है? यह सुनकर मंत्रीने फिर कहा—महाराज, भगदत्तकी सेना बड़ी है, उसके पास युद्ध सामग्री भी बहुत है और उसके सैनिकगण भी बड़े साहसी हैं। इसलिए युद्ध करना उचित नहीं।

राजाने कहा—तुमने कहा वह ठीक है, पर सिद्धि और जय पराक्रमसेही मिलती है, केवल बहुत सामग्रीसे नहीं।

इसके बाद भगदत्तने जितारिके पास अपना दूत भेजा, जो अच्छा समझदार, बातको याद रखनेवाला, बोलनेमें चतुर, दूसरोंके अभिप्रायोंको जाननेवाला, धीर और सत्यवादी था। युद्धका यह नियम है कि पहले दूत भेजा जाता है और बादमें युद्ध किया जाता है। दूतसे शत्रु राजाकी सेनाकी सबलता और निर्बलताका पता लग जाता है। दूतने आकर जितारिसे कहा—महाराज, अपनी राजकुमारीका-मेरे राजाधिराज भगदत्तके साथ व्याह करके आप सुखसे

राज्य करें। अन्यथा आपके लिए अच्छा न होगा। आपका और आपके राज्यका सत्यानाश हो जायगा। क्योंकि अयोग्य कार्यका प्रारंभ करना, सज्जनोंसे विरोध करना, बलवानोंसे स्पर्द्धा करना और स्त्रियोंका विश्वास करना, ये चार बातें मृत्युकी द्वार हैं। इसलिए बलवानके साथ आपको युद्ध करना उचित नहीं। यह सुनकर जितारिने कहा–तू क्यों वक वक कर रहा है। युद्धमें मैं तेरे स्वामीका बल देखूँगा कि वह बेचारा मेरे सामने ठहर सकेगा क्या ? जो होना होगा वह होगा। मैं भगदत्तको अपनी राजकुमारी नहीं व्याह सकता। मेरा सर्वनाश भी क्यों न हो जाय, पर मैं अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकता। महापुरुष जिस बातकी प्रतिज्ञा कर लेते हैं वे उसे फिर कभी नहीं छोड़ते।

यह कहते कहते राजाको बड़ा क्रोध आया। उसने दूतको मार डालनेकी अपने नौकरोंको आज्ञा दे डाली। तब मंत्रीने उससे कहा–महाराज, दूतका मारना अयोग्य है। दूतके मारनेसे राजा और मंत्री दोनों नरकमें जाते हैं। इस प्रकार राजाको समझा-बुझाकर मंत्रीने दूतको वहाँसे निकलवा दिया।

दूतने आकर भगदत्तसे कहा–महाराज, जितारि अपने बाहुबलके सामने किसीको नहीं गिनता। यह सुन भगदत्त युद्धके लिए रणभूमिके सम्मुख हुआ। जितारि भी तब रणभूमिकी ओर बढ़ा। उसकी सेनाके भयसे दशों दिशाएँ चलायमान हो गईं, समुद्र उछलने लगा, पातालमें शेषनाग

चकितसा रह गया। पर्वत काँपने लगे, पृथिवी घूमने लगी, विषैले सर्प विष उगलने लगे, और एक बड़ी भारी हलचल-सी मच गई। दोनों तरफकी सेनाएँ भिड़ीं। मार-काट होने लगी। अन्तमें भगदत्तकी सेनाने जितारिकी सेनाको तितर-बितर कर दिया—उसे हरा दिया। यह देख मंत्रीने जितारिसे कहा—महाराज, देखिए अपनी सेनाके पैर उखड़ गये। अब युद्धक्षेत्रमें ठहरना ठीक नहीं है। कूचका नकारा बजवाइए। जितारिने तब मंत्रीसे कहा—तुम इतने डरते क्यों हो? अपनेको तो दोनों ही तरहसे लाभ है। यदि जीत गये तो विजय-लक्ष्मी मिलेगी और यदि युद्धमें मारे गये तो स्वर्गमें देवांगना मिलेगी। यह शरीर तो क्षण-विनाशीक है ही, तब रणमें या मरणमें चिंता किस बातकी? देखो, बृहस्पति जिसका गुरु था, वज्र हथियार था, देवोंकी जिसके पास सेना थी, स्वर्ग किला था, विष्णुकी जिस पर कृपा थी, ऐरावत जिसका हाथी था, इतना बल रहने पर भी इन्द्रको शत्रुसे हारना पड़ा। इसलिए अब तो भाग्य ही शरण है। पुरुषार्थसे कुछ लाभ नहीं। ऐसे पुरुषार्थको भी धिक्कार है। मंत्रीने उसका निश्चय सुन कहा—महाराज, आप कहते वह ठीक है, पर व्यर्थ मरने-हीसे क्या लाभ? मनुष्य यदि जीता रहे तो वह सैकडों लाभ उठा सकता है। इस समय जितारिको युद्धमें कुछ ढीला देखकर भगदत्तने उसका पीछा किया। जितारि भागने लगा। मंत्रीने तब भगदत्तको मनाकर कहा कि भागते हुएका पीछा

बलवानको न करना चाहिए। क्योंकि संभव है भागनेवाला अपने मरनेका निश्चय कर पीछा करनेवाले पर वार करदे और उससे कोई भारी अनर्थ हो जाय। यह सुनकर भगदत्त रह गया। इधर मुंडिकाको जब यह जान पड़ा कि मेरे पिता युद्धमें हार गये तब उसे यह भी सन्देह हुआ कि जिसके लिए यह सब युद्धकाण्ड हुआ, उस इच्छाको भगदत्त अब अवश्य पूरी करेगा–वह मुझसे बलात्कार अपना व्याह करेगा और मैं उसे पसन्द नहीं करती। तब मुझे अपने सतीत्व-धर्मकी रक्षाके लिए कोई उपाय करना नितान्त ही आवश्यक है। मुंडिकाने कई उपाय सोचे, पर उनमें उसे सफलता न जान पड़नेसे अगत्या वह जिनभगवान्‌का हृदयमें ध्यान कर और कुछ त्याग-व्रत ले पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करती हुई जाकर कुएमें गिर गई।

उसके सम्यक्त्वके प्रभावसे जल स्थल हो गया–कुएका पानी सूख गया। उसके ऊपर रत्नमयी एक सुन्दर महल बन गया। उसके बीचों बीच सजे हुए सिंहासन पर बैठी हुई मुंडिका सती सीताकी तरह मालूम पड़ने लगी। देवोंने तब पंचाश्चर्य किये।

इधर भगदत्त दरवाजा तोड़कर सेना सहित शहरमें घुस-गया और उसे लूटने लगा। शहरको लूट-लाटकर वह जितारिके महलकी ओर बढ़ा। पर नगरदेवताने उसे महलमें न घुसने देकर बाहर ही कील दिया।

इतनेहीमें भगदत्तके किसी परिचारकने आकर उसे मुंडिका-का वृत्तान्त कह सुनाया। जाकर भगदत्तने भी जब इस वृत्तान्तको अपनी आँखोंसे देखा तो उसका सब गर्व चूर चूर हो गया। वह तब बड़े विनयसे मुंडिकाके पैरोंमें पड़कर कहने लगा—बहिन, मैंने यह सब अज्ञानसे किया। मुझे क्षमा करो! इस प्रकार उससे क्षमा माँगकर उसने जितारिको अभय देकर बुलाया और उससे भी क्षमा माँगी। इस घट-नासे भगदत्तके चित्तमें बड़ा वैराग्य हुआ। वह कहने लगा—जिनधर्महीसे जीवोंका हित हो सकता है। संसार-समु-द्रमें कर्मरूपी वनको भस्म करनेको जिनधर्म ही अग्निके समान है। यही सब जीवोंको सहायक है। इस प्रकार विचारकर भग-दत्त और जितारिने अपने अपने पुत्रोंको राज्य देकर दीक्षा ग्रहण करली। इन्हींके साथ मुंडिकाने भी दीक्षा ग्रहण की। इनके सिवा और बहुतसे लोगोंको भी धर्म लाभ हुआ।

इस कथाको कहकर नागश्रीने अर्हद्दाससे कहा—नाथ, यह वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मेरी मति धर्ममें दृढ़ होकर मुझे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये, तुमने कहा वह सत्य है। मैं इसका श्रद्धान करता हूँ और इसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी अन्य अन्य स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुंदलताने पहलेकी तरह अब भी वही कहा कि यह सब झूठ है। मैं इस पर विश्वास नहीं करती। कुन्दलताके इस आग्रहको सुनकर राजा और मंत्रीने सोचा—

यह बड़ी दुष्टा है। इसे सवेरे ही गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकलवा देना ही उचित है। चोरने विचारा—दुर्जनोंका ऐसा स्वभाव ही होता है। विना किसीकी निन्दा किये उन्हें अच्छा ही नहीं लगता। कौआ अच्छी अच्छी चीजोंको खाता है, पर उसे विष्टाके विना तृप्ति ही नहीं होती।

६—पद्मलताकी कथा।

इसके बाद अर्हद्दासने पद्मलतासे कहा—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वकी प्राप्तिका कारण बतलाओ। पद्मलता तब हाथ जोड़कर यों कहने लगी—

अंगदेशमें चंपापुर नामका नगर है। उसमें धाड़िवाहन नामका राजा था। इसकी रानीका नाम पद्मावती था। उसी नगरमें वृषभदास नामका एक सेठ रहता था। वह सम्यग्दृष्टि था और सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त था। इसकी भी स्त्रीका नाम पद्मावती था। इसके पद्मश्री नामकी एक लड़की थी। वह बड़ी रूपवती थी। इसी नगरमें बुद्धदास नामका एक और सेठ रहता था। यह बौद्धधर्मका अनुयायी और प्रसिद्ध दानी था। इसकी स्त्रीका नाम बुद्धदासी था और लड़केका बुद्धसिंह। एक दिन बुद्धसिंह अपने मित्र कामदेवके साथ कौतूहल-वश जिनमंदिरमें चला

गया। वहाँ पद्मश्री जिनेन्द्र भगवान्की पूजा कर रही थी। पद्मश्रीने इस समय यौवनावस्थामें पदार्पण किया ही था। इसलिए वह परम सुन्दरी थी। उसकी वाणी बड़ी मीठी और सरस थी। उसके स्तन उन्नत थे। होंठ पके कुँदुरुके समान थे और मुख चन्द्रमाके समान था। उसकी अनोखी सुन्दरताको देखकर नीच बुद्धसिंह कामान्ध हो गया। जैसे तैसे वह घर पर आकर खाट पर पड़ गया। पुत्रको चिंतित देखकर उसकी माताने उससे पूछा–बेटा, आज तुझे खाना-पीना क्यों नहीं रुचता? तुझे क्या कोई बड़ी भारी चिन्ता है? लाज छोड़कर सब कारण बतला। बुद्धसिंह बोला–मा, यदि वृषभदास सेठकी लड़की पद्मश्रीके साथ मेरा विवाह हो, तो कहीं मैं जी सकता हूँ। अन्यथा मरनेके सिवा मेरे भाग्यमें और कुछ नहीं बदा है। माने लड़केका यह हाल सुनकर अपने पतिसे जाकर कहा। बुद्धदासने आकर तब बुद्धसिंहसे कहा–देखो, वृषभदास जैनी है, मदिरा और मांस खानेवाले हम लोगोंको वह चांडालकी तरह देखता है तब तेरे साथ वह अपनी कन्याको कैसे व्याह देगा? इसलिए जिस वस्तुको पा सको उसीके लिए हठ करना अच्छा होता है। और दूसरी बात यह है कि जिनका आचार-विचार एकसा हो, समान कुल हो, समान गुण हों, उन्हींसे मित्रता, विवाह आदि सम्बन्ध होते हैं। यह सुनकर बुद्धसिंहने कहा–पिताजी, ज्यादा बातोंसे क्या मतलब? मैं उसके विना किसी तरह नहीं जी सकता। बुद्धदासने कहा–सच है, कामका

बड़ा ही विषम प्रभाव है–उसके सामने किसीकी नहीं चलती।
जो काम रूपी आगसे जल रहा है, उस पर अमृत भी क्यों न सींचा जाय उसकी वह आग कभी न बुझेगी। नीतिकारने बहुत ठीक लिखा है कि–

तभीतक प्रतिष्ठा–मान-मर्यादा बनी रहती है, तभीतक मनमें चपलता नहीं आ पाती–मन शान्त बना रहता है और तभीतक संसारके तत्वोंका ज्ञान करानेवाले दीपक रूप सिद्धान्तशास्त्रकी नई नई बातें मनमें सूझा करती हैं–प्रतिभाका विकाश होता रहता है, जबतक कि समुद्रकी लहराती हुई लहरोंके समान चंचल मानिनी स्त्रियोंके कटाक्षोंकी–हाव-भाव-विलासोंकी मारसे जर्जरित होकर हृदय लम्बी लम्बी निसासें न डालने लगे।

बुद्धसिंहकी भी यही दशा है। असलमें यह मूर्ख है। इसको वशमें करना कठिन है। और सब साध्य है, पर मूर्खका वश करना बड़ा ही असाध्य है। मगरके मुँहमें हाथ देकर नुकीली डाढ़ोंके तले दबा हुआ मणि निकला जा सकता है, अनन्त तरंगोंसे लहराता हुआ समुद्र तैरा जा सकता है, क्रोधित साँप फूलकी तरह सिर पर रक्खा जा सकता है, पर हठी और मूर्खका चित्त वशमें नहीं किया जा सकता। जिसकी जो आदत पड़ जाती है, फिर सैकड़ों तरहकी शिक्षाओंसे भी वह नहीं छूटती। अस्तु, बुद्धदासने बुद्धसिंहसे कहा–अच्छा थोड़ा धैर्य रक्खो। मैं इस कामके लिए शनैः शनैः यत्न करता हूँ। देखो, पानी डालनेसे धीरे धीरे जमीन तर हो जाती है, विनयसे

धीरे धीरे कार्यसिद्धि हो सकती है, कपटसे धीरे धीरे शत्रु भी मारा जा सकता है और पुण्य-कर्म करते रहनेसे धीरे धीरे मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। ऐसा विचार कर मायाचारीसे ये दोनों ही पिता-पुत्र जैनी हो गये। इन्हें जैनी हुए देखकर वृषभदास बड़ा प्रसन्न हुआ। वह बोला—ये दोनों धन्य हैं जो मिथ्यात्वको छोड़कर सुमार्गमें लग गये। इसी सम्बन्धसे धीरे धीरे वृषभदास और बुद्धदासकी मित्रता भी हो गई। एक दिन वृषभदासने बुद्धदासको निमन्त्रण देकर भोजनके लिए अपने घर बुलाया। ग्रन्थकार कहते हैं—देना और लेना, गुप्त बात कहना और सुनना, तथा खाना और खिलाना, ये छह मित्रताके लक्षण हैं। बुद्धदास भोजन करनेके लिए बैठा तो, पर उसने भोजन किया नहीं। यह देख वृषभदासने उससे पूछा—आप भोजन क्यों नहीं करते हैं? बुद्धदासने कहा—यदि आप अपनी लड़कीका विवाह मेरे लड़केके साथ कर-दें तो मैं आपके यहाँ भोजन कर सकता हूँ। वैसे—विना किसी प्रकारके गाढ़े सम्बन्धके मैं नहीं जीम सकता। वृषभदासने कहा—बस, इसी छोटीसी बातके लिए इतना आग्रह? इसकी आप क्यों चिंता करते हैं। मैं तो आज अपनेको बड़ा भाग्य-वान् गिनता हूँ, जो आप मेरे घर तो आये। क्योंकि वे नर बड़े ही पुण्य-कर्मा हैं जिनके घर पर मित्र जन आते हैं। आप भोजन तो कीजिए। मैं अवश्य आपका कहना करूँगा। बुद्धदासने तब भोजन किया। कुछ दिनों बाद शुभ मुहूर्तमें

बुद्धसिंहका पद्मश्रीके साथ सचमुच ही विवाह हो गया। बुद्ध-सिंह पद्मश्रीको लेकर घर आगया। घर पर आते ही पिता और पुत्र दोनोंने फिरसे बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया। यह देखकर वृषभदासको बड़ा खेद हुआ। उसने विचारा–गुप्त प्रपंचोंको कोई नहीं जान सकता। विष्णुका रूप बनाकर एक कोरीने राजाकन्याके साथ वर्षोंतक सुख भोगा। सच है–छुपे छलका ब्रह्मा भी पार नहीं पा सकता। जो दुष्ट धनादिककी लालसासे अविश्वासकी घर मायाको करता है, वह उससे होनेवाले बड़े बड़े अनर्थोंको नहीं देखता। बिल्ली दूध तो पीती है, पर ऊपरसे पड़नेवाली लाठियोंकी मारको नहीं देखती। जो हो, उन्हें ऐसा करना उचित नहीं था। क्योंकि गुरु-साक्षीसे लिए व्रतका प्राणान्त हो जाने पर भी भंग न करना चाहिए। स्वीकृत व्रतके भंग करनेसे बड़ा दुःख होता है। कारण व्रत बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है और प्राण तो जन्म जन्ममें बने बनाये हैं। बुद्धदास पहले बौद्ध-धर्मी था, उससे जैनी हुआ और फिर बौद्ध हो गया। यह उसने अच्छा नहीं किया। यह विचार कर बेचारा वृषभदास चुप रह गया।

एक दिन बुद्धदासके गुरु पद्मसंघने पद्मश्रीसे कहा–पुत्री, सब धर्मोंमें एक बौद्धधर्म ही श्रेष्ठ धर्म है। इसलिए तू भी इसे स्वीकार कर। यह सुनकर पद्मश्री बोली–गुरुजी, बौद्धधर्म नहीं, किन्तु जैनधर्म ही सब धर्मोंमें उत्तम है। अतः मैं इसे

छोड़कर नीच मार्गका अवलम्बन नहीं ले सकती—मेरा हृदय इसे नहीं चाहता ।

मृगमांसको खानेवाले सिंहको जब भूख लगती है तब वह घास नहीं खाने लगता। इसी तरह कुलीन पुरुष आपत्ति आनेपर भी नीच कामोंको नहीं करते। आजतक महादेव अपने गलेमें कालकूट विष रक्खे हुए हैं, कछुआ—कूर्मावतार आज भी पृथिवीको अपनी पीठ पर उठाये हैं। और समुद्र वड़वा-नलको निरन्तर अपने उदरमें रखे रहता है, यह सब क्यों ? इसी लिए न ? कि बड़े पुरुषोंने जिस वातको एक वार स्वीकार कर लिया, फिर वे उसे कभी नहीं छोड़ते। इसी तरह ग्रहण किये हुए व्रत-नियमको छोड़ना उचित नहीं और जो छोड़ वैठता है वह अभागा धन-धान्यादिसे रहित, कायर और सदा दुःखी रहता है। मनुष्यको सर्वदा अपना हित करना चाहिए। लोग तो तरह तरहसे वका ही करते हैं। पर वे कर कुछ नहीं सकते। संसारमें ऐसा कोई उपाय ही नहीं है, जिससे सब प्रसन्न रहें । एक आदमी सबको प्रसन्न रख भी नहीं सकता । इसलिए मैं जैनधर्म-को छोड़कर बौद्धधर्मको स्वीकार नहीं कर सकती। यह सुनकर बुद्धगुरु पद्मसंघ अपने मठमें चला गया ।

कुछ दिनों बाद पद्मश्रीके पिता वृषभदासका स्वर्गवास हो गया । पिताकी मृत्युसे पद्मश्रीको बड़ा दुःख हुआ । पर कालके आगे सब अवश हैं। प्रसंग पा एक दिन बुद्धदासने पद्म-

श्रीसे कहा–वहू, मेरे गुरुने तुम्हारे पिताके पुनर्जन्मकी वावत कहा है—वे मरकर वनमें मृग हुए हैं। उन्होंने जैसा कहा वह सत्य होना ही चाहिए। क्योंकि वे भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब बातोंको जान लेते हैं। पद्मश्रीको अपने पिताकी इस प्रकार बुराई सुनकर मनमें बड़ा क्रोध आया। तब इसका बदला चुकानेके लिए उसने एक चाल चली। उसने बुद्धदाससे कहा–यदि सचमुच आपके गुरु ऐसे त्रिकालके ज्ञाता हैं, तो मैं अवश्य बौद्धधर्म स्वीकार करूँगी। इस बातको कुछ दिन बीतने पर एक दिन पद्मश्रीने कुछ बौद्ध साधुओंको भोजनके लिए निमंत्रण दिया। साधु लोग बड़ी प्रसन्नतासे भोजन करने आये। पद्मश्रीने भी बड़े आदरसे उन्हें बैठाया, उनकी पूजा की। घर बाहर उनके जूते रक्खे थे। पद्मश्रीने उनमेंसे उनके बायें पैरका एक एक जूता मँगवाकर उनका खूब बारीक चूर बनाया और उसके पकवान बनाकर उन साधुओंको खिला दिये। साधुओंने उस भोजनकी बड़ी प्रशंसा की। भोजनान्तमें पद्मश्रीने उन साधुओंको चंदन लगाया, पान खिलाये और कहा–महात्माओ, मैं सवेरे ही बौद्धधर्मको स्वीकार करूँगी। सब साधुओंने तब एक स्वरसे कहा बहुत ठीक है। इसके बाद जब वे लोग जाने लगे तो उन्होंने देखा कि उनके बायें पैरका एक एक जूता गायब है। इस आश्चर्यको देखकर उन्होंने कहा–ऐसी खुली जगहसे हमारे जूते कौन ले गया? इस

कोलाहलको सुनकर पद्मश्रीने वहाँ आकर उन साधुओंसे कहा–भला, आप लोग तो ज्ञानी हैं, त्रिकाल-ज्ञाता हैं तब अपने ज्ञान द्वारा क्यों नहीं पता लगा लेते ? साधुओंने कहा–अरी, हम ऐसे ज्ञानी नहीं हैं। पद्मश्रीने तब फिर कहा–आप लोग तो गजब करते हैं ! अरे, जब अपने पेटमें रखे हुए जूतोंको ही आप नहीं जान सकते, तब आपने यह कैसे जान लिया कि मेरे पिता मरकर वनमें मृग हुए हैं ? साधुओंने कहा–तो क्या वे जूते हम लोगोंके पेटमें हैं ? पद्मश्री बोली–बेशक, इसमें भी कोई संदेह है ? तब पद्मश्रीने सबको कै कराकर उन जूतोंके छोटे छोटे टुकड़ोंको दिखा दिया। यह देखकर त्रिकालज्ञानी साधु बड़े शर्मिन्दा हुए। उन्होंने गुस्सा होकर बुद्धदाससे कहा–पापी बुद्धदास, तेरे उपदेशसे ही तेरी बहू पद्मश्रीने न करने योग्य काम भी कर डाला। अपने गुरुओंका ऐसा अपमान देखकर बुद्धदासने सब गहना, कपड़ा-लत्ता और धन-माल छीन-कर लड़के और बहूको घरसे निकाल दिया। इस समय बुद्धसिंहसे पद्मश्रीने कहा–नाथ, चलिए मेरी मांके पास किसी तरहकी कमी नहीं है। यह सुन बुद्धसिंह बोला–प्रिये, भिक्षा माँग खाऊँगा, पर ऐसी दशामें किसी सम्बन्धीके यहाँ न जाऊँगा। नीतिकारने कहा है–सिंह और व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें रहना, पेड़ोंके फूल-पत्ते खाकर गुजारा करना, घासकी शय्या पर सोना और वृक्षोंकी छाल पहर-ओढ़कर जंगलहीमें रहना तो कहीं अच्छा

है, पर बन्धुओंके बीच धनहीन होकर रहना अच्छा नहीं। ऐसा विचार कर पद्मश्रीको साथ ले बुद्धसिंह परदेशको चल दिया। शहर बाहर होते ही इन्हें दो व्यापारी मिले। वे दोनों पद्मश्रीका रूप देखकर उस पर लुभा गये। दोनोंने उसके ले-उड़नेकी ठानी। पर साथ ही उन्होंने मनमें विचारा कि हम दोनोंको तो यह किसी तरह मिल नहीं सकती। इसलिए एकको मार डालना अच्छा है। दूसरेने भी ऐसा ही विचारा। निदान दोनोंने विष मिलाकर भोजन बनाया और एकने एकको खिलाया। वे दोनों उस विष मिले भोजनको खाकर अचेत हो गये। उन दोनोंका थोड़ासा भोजन बच गया था। उसे पद्मश्रीके मना करने पर भी बुद्धसिंहने खा लिया। वह भी उसी समय अचेत हो गया। पद्मश्री अपने पतिकी यह दशा देखकर बड़ी व्याकुल हुई। रो-रोकर बड़ी मुश्किलसे उसने सारी रात बिताई। सवेरे ही किसीने जाकर बुद्धदाससे कह दिया कि तुम्हारा लड़का बुद्धसिंह शहरके बाहर मरा पड़ा है। यह सुनकर बुद्धदासको बड़ा दुःख हुआ। उसी समय दौड़ा हुआ वह लड़केके पास आया। और उसकी वह दशा देखकर पद्मश्रीसे उसने कहा–अरी डाकिन, तूने ही मेरे लड़केको और इन बेचारे दोनों व्यापारियोंको खाया है! मुझे नहीं मालूम था कि तू ऐसी पिशाचिनी होगी, नहीं तो तो क्यों मैं इसे तेरे साथ आने देता। अब तेरी भी कुशल इसीमें है कि या तो तू मेरे लड़केको जिलादे, नहीं तो तुझे भी

मैं मार डालूँगा। ऐसा कहकर अचेत पड़े बुद्धसिंहको उसके पास रखकर वह लगा रोने। पद्मश्रीने मनमें विचारा—मेरे जो कर्मोंका उदय है, उसे कौन मेट सकता है? अस्तु, जो हो, उसने हाथ जोड़कर कहा—यदि मेरे हृदयमें जिनधर्मका पक्का श्रद्धान है, यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ, यदि मुझे रात्रिभोजनका त्याग है, तो हे—शासनदेवता, मेरे प्राणनाथ और ये दोनो व्यापारी सचेत हो जायँ! आश्चर्य है कि—इतना कहते ही पद्मश्रीके व्रतके प्रभावसे वे तीनों उठ बैठे। यह देखकर शहरके लोगोंने पद्मश्रीकी प्रशंसा कर कहा—इसे धन्य है, जो ऐसी सुन्दर होने पर भी यह पतिव्रता है। यह बड़े आश्चर्यकी बात है। नीतिकारोंने कहा है कि राजनीतिमें निपुण राजा यदि धार्मिक हो तो उसमें आश्चर्य नहीं, वेद और शास्त्रोंको पढ़ा हुआ ब्राह्मण यदि पंडित हो, तो भी कुछ आश्चर्य नहीं; पर हाँ रूपवती और यौवनवती स्त्री यदि पतिव्रता हो, तो आश्चर्य है तथा निर्धन मनुष्य यदि पाप न करे तो आश्चर्य है। इस तरह प्रशंसा कर नगरके लोगोंने पद्मश्रीकी पूजा की। देवोंने पंचाश्चर्य किये। यह सब वृत्तान्त शाडिवाहनने भी देखा। उसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह कहने लगा—जिनधर्मको छोड़कर और किसी धर्मसे इष्टसिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए इसी धर्मको स्वीकार करना चाहिए। ऐसा विचार कर अपने नयविक्रम नामके पुत्रको राज्य देकर उसने यशोधर मुनिके पास जिन-

दीक्षा लेली। उसके साथ और भी बहुतसे लोगोंने दीक्षा ली। बौद्धधर्मावलम्बी बुद्धदास और बुद्धसिंहने जैनी हो श्रावकोंके व्रत लिये। और कई लोगोंने अपने परिणामोंको ही सुधारा। इधर पद्मावती रानी, वृषभदास सेठकी स्त्री पद्मावती, तथा पद्मश्री आदिने सरस्वती आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की।

यह कथा सुनाकर पद्मलताने अर्हद्दाससे कहा–प्राणनाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझको दृढ़तर सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है। यह सुनकर अर्हद्दासने कहा–प्रिये, जो तुमने देखा है, मैं उसका श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उस पर रुचि–प्रेम करता हूँ। अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। परन्तु कुन्दलताने सबकी हाँमें हाँ न मिलाकर कहा–यह सब झूठ है, मैं इसका श्रद्धान नहीं करती।

राजा, मंत्री और चोरने अपने अपने मनमें विचारा–पद्मलताकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी कुन्दलता झूठ बतलाती है। वास्तवमें यह बड़ी पापिनी है। राजाने कहा–सवेरे ही मैं इसे गधे पर चढ़ाकर शहरसे बाहर निकाल दूँगा। चोरने कहा–दुष्टोंका ऐसा स्वभाव ही होता है।

७–कनकलताकी कथा।

पद्मलताकी कथा सुनकर अर्हद्दासने कनकलतासे कहा–प्रिये, तुम भी अपने सम्यक्त्वके प्राप्तिका कारण वतलाओ। कनकलता तब यों कहने लगी–

अवंति देशमें उज्जयिनी नगरी है। उसमें नरपाल नामका राजा था। उसकी रानी मदनवेगा थी। राजमंत्रीका नाम मदनदेव था। मंत्रीकी स्त्रीका नाम सोमा था। इसी नगरीमें समुद्रदत्त नामका एक सेठ रहता था। सेठकी स्त्रीका नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रका नाम उमय और पुत्रीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता कौशाम्बीके रहनेवाले जिनदत्त श्रावकको व्याही गई थी। उमय वड़ा व्यसनी था। माता-पिताने उसे वहुतेरा मना किया, पर उसने व्यसनोंको न छोड़ा। उन्होंने दुखी होकर सोचा–सच है पूर्व जन्ममें उपार्जन किये कर्मोंको कोई नहीं मेट सकता।

उमय हर रोज शहरमें चोरी किया करता था। एक दिन गस्त लगानेवाले सिपाहीने उसे चोरी करते पकड़ लिया। वह उमयको मारता, पर समुद्रदत्तके कहनेसे उसने उसे छोड़ दिया। इसी तरह सिपाहीने कई वार चोरी करते उसे प-

कड़ा और छोड़ दिया। उभयकी यह दशा देखकर सिपाहीने सोचा–एक पेटसे पैदा हुए सब एकसे नहीं होते। जिनदत्ता और उभय दोनों एक पेटके वहिन-भाई हैं। पर वेचारी जिन-दत्ता कितनी सीधी-साधी और यह ऐसा पापी है।

उभयने वार वार मना करने पर भी जव न माना तो सिपाही एक दिन लाचार हो उसे राजाके पास लेगया। राजासे उसने कहा–महाराज यह नगरसेठ समुद्रदत्तका लड़का है। उभय इसका नाम है। यह वड़ा चोर है। इसे हजारों वार मना करने पर भी इसने चोरी करना न छोड़ा। अव जैसा आप उचित समझें करें। राजाने कहा–जव इसमें समुद्रदत्तका एक भी गुण नहीं तव यह उसका लड़का कैसे कहा जा सकता है। राजाने समुद्रदत्तको बुलाकर कहा–सेठ महाशय, इस दुष्टको घरसे निकाल वाहर कीजिए। अन्यथा इसके साथ आप भी नाहक खराव होंगे। आपकी मान-मर्यादामें वट्टा लगेगा। दुर्जनके संसर्गसे सज्जनोंको भी दोष लग जाया करता है। सीताका हरण रावणने किया था, परन्तु वाँधा गया था समुद्र। इसलिए कि वह लंकाके पास ही था।

समुद्रदत्तने विचारा–साधुओंको दुर्जनोंकी संगति कष्टके लिए ही होती है। पानीकी घड़ीका वर्तन तो पानीमें डूवकर समय वतलाता है, पर ठोका जाता है पासमें लगा हुआ घंटा।

इसके वाद उसने अपनी स्त्रीसे कहा–अव उभ-यको घरसे निकाल देना ही अच्छा है। क्योंकि चोरसे

घूस लेना, उससे प्रीति रखना, चोरीका माल खरीदना, अथवा चोरीके मालमेंसे हिस्सा लेना इन बातोंको समझदार लोग बहुत जल्दी समझ लेते हैं—ऐसी बातोंका पता उन्हें शीघ्र लग जाता है। जब उमय घरमें रहेगा तो उससे हर तरहका सम्बन्ध रहेगा और उससे बड़े भारी अनर्थके होनेकी संभावना है। इसीलिए नीतिकारोंने कहा है कि कुलकी रक्षाके लिए कुलके उस आदमीको ही त्याग देना अच्छा है जिससे कुलमें कलंक लगता हो। अगर हम उमयको न निकालेंगे तो शहरके सब लोगोंसे विरोध होगा और बहुतोंके साथ विरोध अच्छा नहीं। क्योंकि चींटियाँ बड़े भारी सर्पको भी खा डालती हैं। ऐसा विचार कर समुद्रदत्तने उमयको घरसे निकाल दिया। उमयकी माको उसके निकाले जानेसे बड़ा दुःख हुआ। वह विचारने लगी—जिसका भाग्य अच्छा होता है उसे समुद्रके उस पारसे भी वस्तु प्राप्त हो जाती है और जिसका भाग्य बुरा है उसकी हथेली पर रखी हुई वस्तु भी चली जाती है।

उमय घरसे निकल कर एक व्यापारीके साथ कौशाम्बीमें अपनी बहिन जिनदत्ताके पास गया। लेकिन उमयकी बद-नामी सब जगह फैल चुकी थी। इसलिए उसकी बहिनने भी उसे अपने घरमें न घुसने दिया। उत्तम विद्या, अ-नोखी बात, बदनामी, कस्तूरीकी गंध, आदि बातें पानीमें डाली हुई तेलकी बूँदकी तरह सब जगह फैल जाती हैं।

उमयने विचारा–मैं बड़ा अभागा हूँ जो यहाँ पर भी आफ़तने मेरा पिंड न छोड़ा। नीतिकारने ठीक कहा है, कि भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है आफ़तें भी वहीं पहुँच जाती हैं। बेचारे एक गंजे सिरके आदमीको बड़ी तेज़ धूप लग रही थी। वह बेलके पेड़तले जा खड़ा हुआ। उसने विचारा–यहाँ मुझे धूप न लगेगी; लेकिन ऊपरसे एक बड़ा बेल गिरा और गंजेकी खोपड़ी फूट गई।

एक मल्लाहने एक मछलीको पकड़ा तो बड़े जोरसे, पर मछली उसके हाथोंसे निकल गई। निकल कर वह जालमें गिरी। जालसे भी किसी तरह वह निकल गई, पर निकलते ही उसे झटसे बगुला निगल गया। मतलब यह कि जब भाग्य ही उल्टा होता है तब मनुष्य आपत्तिसे बच नहीं सकता। इससे उमयको बड़ा वैराग्य हुआ। वह विचारने लगा–पराधीन रहना भी बड़ा कष्टदायक है। देखो, सम्पूर्ण तारामंडल जिसका परिवार है, जो औषधियोंका मालिक है, जिसका शरीर अमृतमय है और जो स्वयं प्रकाशमान है। ऐसा चन्द्रमा भी सूर्यका उदय होने पर फीका पड़ जाता है; सच है दूसरेके घर जानेसे सबको नीचा देखना पड़ता है। ऐसा विचार कर वह जिन मंदिरमें पहुँचा। वहाँ उसने श्रुतसागर मुनिसे धर्मका उपदेश सुनकर सप्त व्यसनके त्याग पूर्वक दर्शन-प्रतिमा धारण कर श्रावकोंके व्रत लिये। उमय अब सच्चा श्रावक हो गया। इसके सिवा उसने अजान फलोंके

खानेका भी त्याग किया। ग्रन्थकार कहते हैं–गुणवानके संसर्गसे गुणहीन भी गुणी हो जाता है। थोड़ीसी सुगंध सारे घरको सुगन्धित कर देती है।

उमयकी वहिनने जब सुना कि उमयने व्यसनोंको छोड़ दिया–अब वह सदाचारी हो गया, तब वह बड़े आदरसे उसे अपने घर पर लाई और वहुतसा धन भी उसने उसे दिया। यह ठीक ही है, क्योंकि सुमार्ग पर चलनेवालेकी पशु भी सहायता करते हैं, और कुमार्गीको सगा भाई भी छोड़ देता है। सच्चरित्र मनुष्यों पर आई हुई विपत्ति वहु दिनोंतक नहीं ठहरती। क्योंकि हाथोंके आघातसे गिरा गेंद फिर भी उठता ही है।

एक दिन उज्जैनके कुछ व्यापारी कौशाम्वीमें आये। उन्होंने उमयको सदाचारी देखकर उसकी वड़ी प्रशंसा की और कहा–भाई, तू धन्य है। अच्छा हुआ जो तुझे ऐसी उत्तम संगति मिल गई, जिससे तू ऐसा योग्य वन गया। क्योंकि उत्तम, मध्यम और जघन्य गुणोंकी प्राप्ति उत्तम, मध्यम और जघन्य मनुष्योंकी संगतिसे ही हुआ करती है। देख, गरम लोहे पर पानी पड़नेसे उसका नाम निशान भी नहीं रहता, पर कमलके पत्ते पर पड़ा हुआ वही पानी मोती जैसा दिखाई देने लगता है और वही पानी यदि स्वाति नक्षत्रमें समुद्रकी सीपमें पड़ जाय तो मोती ही वन जाता है। उमय, तुम्हें धर्मात्मा देखकर हमें वड़ी प्रसन्नता होती है।

तुमने बहुत अच्छा काम किया जो व्यसनोंको छोड़कर धर्मको स्वीकार किया। क्योंकि जैसे चन्द्रमाके विना रात्रि की, और कमलोंके विना सरोवरकी शोभा नहीं उसी तरह धर्मके विना जीवनकी भी शोभा नहीं।

उभय भी तब बेचनेके लिए बहुतसा सामान खरीद कर अपने कुछ मित्रोंको साथ लिए उन व्यापारियोंके साथ अपनी जन्मभूमि उज्जयिनीकी ओर चला। उभय अपने माता-पिताको देखनेके लिए बड़ा उत्सुक हो रहा था। इसलिए वह उन व्यापारियोंका साथ छोड़कर अपने मित्रोंको लिए आगे बढ़ा। चलते चलते रात हो गई। उभयको रास्ता मालूम न होनेसे वह एक भयानक जंगलमें जा पहुँचा। उन सबने रात वहीं बिताई। सवेरा हुआ। उभयके मित्रोंको भूख लगी। उन्हें कहींसे देखनेमें अच्छे, रसीले, पर मरणके कारण ऐसे कुछ किंपाक-फल (विष-फल) मिल गये। उन फलोंको उन्होंने खालिया। उभयको भी वे फल दिये गये। उभयने पूछा—इन फलोंका नाम क्या है? उसके मित्रोंने कहा—तुम्हें नामसे क्या मतलब? जो फल कड़वे हों, नीरस हों, और बे-स्वाद हों उन्हें न खाना चाहिए और इन सिवाय फलोंको खाकर अपनी भूख मिटा लेनी चाहिए। उभयने कहा ठीक है, पर मैं विना नाम जाने किसी फलको नहीं खा सकता। मेरा ऐसा नियम है। यह कहकर उभयने उन फलोंको नहीं खाया। फल खानेके थोड़ी ही देर बाद

उभयके मित्र अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े। यह देख-कर उभयको बड़ा खेद हुआ। वह सोचने लगा–हाय! कौन जानता था कि ये फल हलाहल विषभरे होंगे। उभय तो इसी विचारमें डूब रहा था कि इधर उसके नियमकी परीक्षा करनेके लिए वनदेवता एक सुन्दर स्त्रीका रूप लेकर आई और उभयको एक फलोंसे लदा वृक्ष दिखाकर उसने कहा–पथिक, तूने इस कल्पवृक्षके फलोंको क्यों नहीं खाया? तेरे मित्रोंने जो फल खाये हैं वे तो विषफल थे, पर यह कल्पवृक्ष है। इसके फल पुण्य विना नहीं मिलते। इसके फलोंको जो एक वार खा लेता है, उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। वह फिर अमर हो जाता है–उसे कभी कोई दुःख नहीं होता। और उसका ज्ञान इतना बढ़ जाता है कि वह सब चराचर वस्तुओंको जानने लग जाता है। मैं पहले बहुत ही बूढ़ी थी। सो इन्द्र दया करके इस वृक्षके फल खानेको मुझे यहाँ रख गया। देख, मैं इन्हीं फलोंको खा-कर ऐसी जवान हो गई हूँ। यह सब सुनकर उभयने कहा–बहिन, विना जाने फलोंको खानेकी मुझे प्रतिज्ञा है। इसलिए मैं तो इन फलोंको हर्गिज नहीं खा सकता। नाहक तुम इनकी इतनी तारीफ करती हो। जो ललाटमें लिखा होगा, वही तो होगा। फिर व्यर्थ अधिक बोलनेसे लाभ क्या? उभयकी धीरताको, उसके नियमकी निश्चलताको देखकर वनदेवताने उससे कहा–उभय, तेरी प्रतिज्ञाकी निश्चलताको

देखकर मैं तुझ पर प्रसन्न हुई। तुझे जो इच्छा हो वैसा वर माँग। उमयने तब वनदेवतासे कहा—यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो मेरे इन अचेत पड़े साथियोंका विष दूरकर इन्हें सचेत कर दो और उज्जायिनीका रास्ता बतादो। ' तथास्तु ' कह कर वनदेवताने उन्हें सचेत कर दिया। नीतिकार कहते हैं— उद्योग, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छह बातें जिसके पास हैं, उसकी देव भी सहायता करते हैं।

वे सब सचेत होकर उमयसे कहने लगे—भाई उमय, तुम्हारे प्रसादसे हम लोग आज जी गये। तुम्हारे व्रतका माहात्म्य हमने आँखों देख लिया। सच तो यह है कि तुम्हें कुछ भी असाध्य नहीं है।

वनदेवताने उन्हें उज्जैनका मार्ग भी बता दिया। कुछ दिनों बाद मित्रोंको साथ लिए उमय अपने घर आ पहुँचा। उसे सदाचारी देखकर उसके माता-पिता, राजा, मंत्री परिवार तथा नगरके लोगोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की, और कहा— भाई उमय, तू धन्य है, उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे तू भी पूज्य हो गया। नीतिकारोंने ठीक कहा है कि उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे बुरा मनुष्य भी गौरवको प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि फूलोंके साथमें गुँथा हुआ धागा बड़े बड़े पुरुषोंके मस्तक पर पहुँच जाता है। दूसरे दिन नगरदेवताने आकर एक बहुत सुन्दर रत्नमयी मंडप बनाया और उसमें उमयको बैठाकर

उसका अभिषेक किया, पूजा की और पंचाश्चर्य किये। यह सब वृत्तान्त नगरके लोगोंने तथा राजाने देखकर कहा—जिन-धर्म ही सब आपत्तियोंको दूर कर सकता है, दूसरा धर्म नहीं। जैसा कि कहा है—इस लोक और परलोकमें धर्म ही जीवोंका हित करनेवाला है, अन्धकारके नष्ट करनेको सूर्य है, सब आपत्तिओंको दूर करनेमें समर्थ है, परमानिधि है, अनाथ-असहायोंका बन्धु है, विपत्तिमें सच्चा मित्र है और संसाररूपी विशाल मरुभूमिमें कल्पवृक्ष समान है। धर्मसे बढ़कर संसारमें और कोई वस्तु नहीं है। ऐसा विचार कर नरपाल नृपतिने अपने पुत्रको राज्यपद और मंत्रीने अपने पुत्रको मंत्रीपद देकर दोनोंने सहस्रकीर्त्ति मुनिके पास जिन-दीक्षा ग्रहण करली। इनके साथ साथ राजसेठ समुद्र-दत्त, उभय तथा और बहुतसे लोगोंने भी दीक्षा ग्रहण की। कुछ लोगोंने श्रावकोंके व्रत लिये और कुछने अपने परिणामों-को ही सरल बनाया। इनके बाद ही मदनवेगा रानी, मन्त्रि-पत्नी सोमा, समुद्रदत्तकी स्त्री सागरदत्ता तथा और बहुतसी स्त्रियोंने भी अनन्तमती आर्यिकाके पास जिन-दीक्षा ग्रहण की और कितनी ही स्त्रियोंने श्रावकोंके व्रत लिये।

इस कथाको कहकर कनकलताने अर्हद्दाससे कहा—प्राण-नाथ, यह सब वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है, इसीसे मुझे दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। अर्हद्दासने कहा—प्रिये, जो तुमने देखा है, उसका मैं श्रद्धान करता हूँ, उसे चाहता हूँ

और उसमें रुचि करता हूँ। अर्हद्दासकी और स्त्रियोंने भी ऐसा ही कहा। पर कुन्दलताने पहलेकी तरह ही दृढ़तासे कहा– यह सब झूठ है। मैं इस पर श्रद्धान नहीं करती। राजा, मंत्री और चोर मनमें विचारने लगे–कनकलताकी प्रत्यक्ष देखी हुई बातको भी यह झूठी बतला रही है, यह बड़ी ही पापिनी है। राजाने कहा–मैं सवेरे ही इसे गधे पर चढ़ाकर शहरसे निकाल दूँगा। चोरने सोचा–जो किसीको झूठा ही दोष लगाता है, वह नीच गतिका पात्र होता है। मनुष्यको दूसरोंके विद्यमान गुणोंको छुपाना तथा अविद्यमान दोषोंको कहना उचित नहीं। जो ऐसा करते हैं उनका जन्म नीच गोत्रमें होता है।

८–विद्युल्लताकी कथा।

कनकलताकी कथा सुनकर अर्हद्दासने विद्युल्लतासे कहा–प्रिये, अब तुम भी अपने सम्यक्त्वका कारण सुनाओ।

विद्युल्लताने तब यों सुनाना आरंभ किया—भरतक्षेत्रमें कौशाम्बी नगरी है। उसका राजा सुदंड था। विजया इसकी रानी थी। मंत्रीका नाम सुमति था। गुणश्री मंत्रीकी स्त्री थी। सूरदेव राजसेठ था। गुणवती सेठकी स्त्री थी। एक बार सूरदेव व्यापा-

रके लिए मङ्गल देशमें गया और वहाँसे वह एक सुन्दर घोड़ी खरीद कर लाया। उसने उस घोड़ीको राजाकी भेंट किया। राजाने प्रसन्न होकर सेठको बहुत धन दिया, उसका सम्मान किया और उसकी बहुत प्रशंसा की।

एक समय सूरदेवने गुणसेन मुनिको विधिपूर्वक दान दिया। दानके फलसे देवोंने सूरदेवके घर पंचाश्चर्य किये।

इसी कौशाम्बीमें सागरदत्त नामका एक और सेठ रहता था। पर यह निर्धन था। इसकी सब संपत्ति नष्ट हो गई थी। इसकी स्त्रीका नाम श्रीदत्ता था और पुत्रका समुद्रदत्त। समुद्रदत्त सूरदेवके दानके फलसे जो पंचाश्चर्य हुए उन्हें देखकर मनमें विचारने लगा—मैं गरीब हूँ तब मुनियोंको दान कैसे दे सकता हूँ। अस्तु, मैं भी कभी सूरदेवकी तरह धन कमाकर दान दूँगा। सच है—धनके बिना कुछ नहीं हो सकता। जिसके पास धन है उसके सभी मित्र हैं, सभी बन्धु हैं, वही मनुष्य है, और पंडित भी वही है। इस संसारमें पराये आदमी भी धनवानोंके स्वजन हो जाते हैं, और गरीबोंके स्वजन भी पराये हो जाते हैं। ऐसा विचार कर कुछ मित्रोंको साथ लिए वह मंगल देशको चला। रास्तेमें मित्रोंने उससे पूछा—भाई, जान पड़ता है तुम तो दूर देशकी यात्राके लिए चल रहे हो। तुमने हमसे चलते समय तो यह हाल नहीं कहा। अच्छा, तब यह तो बतलाओ कि इतने दूर देश चलते किस लिए हो?

समुद्रदत्त बोला–समर्थोंको भी क्या कोई बोझा लगता है ? व्यापारियोंके लिए क्या कोई देश दूर है ? विद्वानोंके लिए क्या कोई विदेश है ? और मीठे बोलनेवालोंका क्या कोई शत्रु होता है ? कौआ, कायर पुरुष, और मृग, परदेश जानेसे डरते हैं–आलस और प्रमादसे वे अपने ही स्थानमें पड़े पड़े मर जाते हैं। इस तरह बात करते करते वे लोग पलाश नामके गाँवमें जा पहुँचे। वहाँ समुद्रदत्तने उनसे कहा–भाइयो, अब हमें यहाँसे साथ छोड़ देना पड़ेगा। इसलिए जहाँ कहीं हमारा माल बिक सके उन शहरों और गाँवोंमें माल बेच कर और खरीदने लायक माल खरीद कर तीन वर्ष बाद फिर हमें इसी स्थान पर आकर मिल जाना चाहिए।

ऐसी सलाह करके समुद्रदत्तके साथी वहाँसे चले गये। समुद्रदत्त रास्तेका हारा-थका था; इसलिए वह उसी गाँवमें रह गया। समुद्रदत्त जब अपने साथियोंसे बिछुड़ा तो उसे यह प्रवास अब बड़ा ही कष्टकर जान पड़ने लगा। नीतिकारने कहा है–पहले तो मूर्ख रहना, तथा युवा अवस्थामें दरिद्रताका होना ही दुःख है, परन्तु दूसरेके घर रहना और परदेशमें जाना तो उससे भी अधिक दुःखदायक है।

इस गाँवमें एक अशोक नामका गृहस्थ रहता था। वह घोड़ोंका व्यापार करता था। इसकी स्त्रीका नाम वीतशोका था। इसके एक लड़की थी। उसका नाम कमलश्री था।

अशोक अपने घोड़ोंकी रखवालीके लिए एक नौकरकी खोजमें था। यह वात समुद्रदत्तको मालूम हुई। उसने अशोकके पास आकर कहा—मैं तुम्हारे घोड़ोंकी रखवाली किया करूँगा। कहिए आप मुझे क्या नौकरी देगें? नीतिकार कहते हैं—मनुष्यके पास जवतक धन रहता है तभीतक उसमें गुण और गौरव रहता है। और जहाँ वह याचक वना कि उसके गुण और गौरव सभी नष्ट हो जाते हैं। यही दशा समुद्रदत्तकी हुई। एक सेठका लड़का आज घोड़ोंकी सईसी करने पर उतारू हुआ। अस्तु।

समुद्रदत्तकी वात सुनकर अशोकने उससे कहा—दिनमें दो वार भोजन और छह महीनेमें एक साफ़ा, एक कम्वल, और एक जूता जोड़ा, तथा तीन वर्षमें इन घोड़ोंमेंसे तुम्हारे मनचाहे दो घोड़े, यह नौकरी तुम्हें मिलेगी। वोलो, मंजूर है? समुद्रदत्तने अशोककी यह नौकरी स्वीकार करली। अव वह घोड़ोंकी वड़ी सम्हालसे रखवाली करने लगा। नीतिकार कहते हैं—नौकर आदमी तरक्कीके लिए स्वामीकी अधिक सेवा-शुश्रुषा करता है और मौके पर अपने प्राणोंकी भी परवा नहीं करता। सुखकी आशासे दुःख तक उठाता है। सचमुच, नौकरसे वढ़कर कोई मूर्ख नहीं है।

समुद्रदत्त अशोककी लड़की कमलश्रीको प्रतिदिन अनेक प्रकारके मीठे मीठे फल-फूल और कंद ला-लाकर दिया करता था, और उसे अपना मनोहर गाना सुनाया करता था।

निदान कुछ समयमें समुद्रदत्तने कमलश्रीको अपने वशमें कर लिया। वह भी उसे हर तरहसे चाहने लगी। नीतिकार कहते हैं–जब वनमें भील लोग गा-गाकर बड़े तेज भागनेवाले हरिणों तकको वशमें कर लेते हैं तब मनुष्य मनुष्यको अपनी गान-कलासे वशमें करले तो आश्चर्य क्या ? सच है गुणों द्वारा कौन कार्यसिद्ध नहीं होता ? बालिकाएँ खेलके समय अच्छे अच्छे फलादिक खानेको देनेसे, जवान स्त्रियाँ अच्छे गहने और कपड़ोंसे, मध्यवया स्त्री (मध्यमा नायिका)सुदृढ़ संभोग कलासे और वृद्ध स्त्रियाँ गौरवके साथ उनसे मीठी मीठी बातें करनेसे वशमें होती हैं। यही कारण था कि कमलश्री गाने और फलादिकके देनेसे समुद्रदत्तके वश हो गई। कमलश्रीके मनमें अब यही भावना उठने लगी कि मेरा पति यही हो। नीतिकारने ठीक कहा है–कि आगको ईंधनसे संतोष नहीं होता, नदियोंसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती, प्राणियोंको खाते खाते यमराज नहीं अघाता और स्त्रियोंको चाहे जितने पुरुष मिलते जायँ पर उन्हें चैन नहीं पड़ता–हर समय वे दूसरोंके लिए ही तड़फती रहती हैं।

समुद्रदत्तको रहते पूरे तीन वर्ष हो गये। एक दिन वह कमलश्रीसे बोला–प्यारी, तुम्हारी कृपासे मेरे दिन बड़े सुखसे बीते। अब मेरी नौकरीके दिन पूरे हो गये। सो, मैं अपने देश जाऊँगा। मैंने जो तुमसे कभी बुरा-भला कहा हो–मेरी जबानसे भूलमें कुछ बेजा निकल गया हो, तो तुम मुझे क्षमा करना।

यह सुनते ही कमलश्रीके मुँह पर एक साथ उदासी छागई। वह गिड़गिड़ा कर बोली–पर प्राणनाथ, मैं आपके विना नहीं जी सकती ? इसलिए मैं तो आपहीके साथ चलूँगी। समुद्रदत्तने तब उससे कहा–प्यारी, तुम धनवान्‌की लड़की हो, सुकुमार हो, और मैं एक गरीब रास्तागिर हूँ। मेरे साथ रहकर तुम्हें क्या सुख होगा ? घर छोड़कर बाहर तुम्हें सुख न मिलेगा कमलश्री! इसलिए मेरे साथ तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। देखो, निर्धनोंको प्रायः कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनकी ऐसी दशा देख स्त्रियाँ भी उन्हें छोड़कर नौ-दो-ग्यारह हो जाती हैं। कमलश्रीने कहा–मैं अधिक क्या कहूँ, पर यह याद रखिए कि मैं आपके विना क्षण भर भी नहीं जी सकती। बहुत मना करने पर भी जब कमलश्रीने न माना, तब समुद्र-दत्तने उससे कहा–अच्छा तब चलो। जो तुम्हारे भाग्यमें होगा, वह होगा। क्योंकि जो होनहार होती है वह नारि-यलके फलमें पानीकी तरह कहीं न कहींसे आही जाती है, और जो जानेवाला होता है वह हाथीके खाये कैथके भीत-रके गूदेकी तरह किसी प्रकार चला ही जाता है।

एक दिन मौका पा कमलश्रीने समुद्रदत्तको अपने पिताके घोड़ोंका भेद बताकर कहा–मेरे पिताके इन घोड़ोंमें दो घोड़े सबसे अच्छे हैं। उनमें एक आकाशमें चलता है, और एक जलमें। आकाशगामी सफेद जलगामी लाल है। और ये दोनों बिलकुल दुबले-पतले हैं। समुद्रदत्तने तब अपनी नौकरीके

बदलेमें उन्हीं दोनों घोड़ोंके लेनेका निश्चय किया। कमल-श्रीके इस रहस्यके बतानेसे प्रसन्न होकर वह मनमें विचारने लगा–मैं बड़ा पुण्यात्मा हूँ। क्योंकि बिना पुण्यके मनो-रथोंकी सिद्धि नहीं होती। इसी समय समुद्रदत्तके मित्र भी अपने अपने मालको बेच-बिचाकर और अपने देशमें बिकने योग्य अच्छा अच्छा नया माल खरीद कर देशान्तरसे लौट आये। वे समुद्रदत्तसे मिले। सभीने पर-स्परको जिमाया और योग्य वस्तुएँ एकने एककी भेंट कीं। नीतिकार कहते हैं–खाना-खिलाना, देना-लेना और अपनी गुप्त बात कहना या सुनना, ये छह मित्रताके लक्षण हैं।

एक दिन समय पाकर समुद्रदत्तने अपने मालिक अशोकके पास जाकर कहा–स्वामी, अब मेरे तीन वर्ष पूरे हो गये, और मेरे साथी भी परदेशसे लौट आये हैं। इसलिए मेरी तनख्वाह आप दे दीजिए, जिससे कि मैं अपने देश चला जाऊँ।

अशोकने कहा–ठीक है, इन घोड़ोंमेंसे जो तुम्हें पसंद हों, दो घोड़े लेलो। अशोककी आज्ञा पा समुद्रदत्तने उन्हीं दोनों आकाश गामी और जलगामी घोड़ोंको छाँट लिया। यह देखकर अशोकको बड़ी चिन्ता हुई।

उसने समुद्रदत्तसे कहा—अरे-ओ मूर्खोंके अगुआ! सचमुच तू बड़ा ही मूर्ख है। तू कुछ नहीं जानता। बतला तो इन बदसूरत और दुबेल-पतले घोड़ोंको लेकर क्या करेगा?

दूसरे कीमती और मोटे-ताजे, सुन्दर घोड़ोंको तूने क्यों न लिया? ये तो आजकलमें ही मर जायँगे। समुद्रदत्तने कहा—जो कुछ हो, मैंने तो जिनको एक बार ले लिया सो ले लिया। मुझे दूसरे नहीं चाहिए। यह सुनकर पास बैठे हुए लोगोंने कहा—यह मूर्ख और हठी है। इसको समझाना व्यर्थ है। नीतिकारने कहा है—जलसे अग्नि शान्त हो सकती है, छातेसे घाम बचाया जा सकता है, दवाईसे रोग, और मंत्रसे विष दूर किया जा सकता है, अंकुशसे मदोमन्त हाथी और लाठीसे गाय तथा गधा वशमें किया जा सकता है, पर मूर्ख किसी तरह वशमें नहीं किया जा सकता। कहनेका मतलब यह कि शास्त्रोंमें सबका इलाज है, पर मूर्खोंका कोई इलाज नहीं।

अशोक बोला—यह बड़ा ही अभागा है और अभागेको अच्छी वस्तु भी बुरी मालूम देती है। यह कहकर वह घर पर आया और घरके सब लोगोंसे उसने पूछा—कि समुद्रदत्तको घोड़ोंका भेद किसने दिया? घरके सब लोगोंने कसमें खा-खाकर अशोकको विश्वास कराया कि हमने घोड़ोंका भेद किसीको नहीं बताया। इतनेमें किसी पाजीने आकर अशोकसे कमलश्रीका सारा हाल कह सुनाया। अशोक सुनकर मनमें कहने लगा—कमलश्री बड़ी दुष्टा है। जान पड़ता है इसीने समुद्रदत्तको घोड़ोंका भेद बताया है। नीतिकारने ठीक कहा है कि जलमें तेल, पात्रमें

दान, बुद्धिवानमें शास्त्र और दुष्टसे कहा हुआ गुप्त रहस्य, ये सब बातें बहुत जल्दी फैल जाती हैं। इन वस्तुओंका स्वभाव ही ऐसा है। स्त्रियाँ जो न करें सो थोड़ा है। वे बदमाशोंके साथ रमती हैं, कुलकी मर्यादाको तोड़ देती हैं, और गुरुजन, मित्र, पति, पुत्र वगैरह किसीको कुछ नहीं समझतीं। सुख, दुःख, जय, पराजय और जीवन-मरणकी बातोंको जो जानते हैं, ऐसे बड़े बड़े तत्वज्ञानी भी इन स्त्रियोंके जालमें फँस जाते हैं। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, लोभ, अप्रेम और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं।

अशोकने विचारा–यदि मैं इसे घोड़े न दूँ तो प्रतिज्ञा भंग होती है और बड़े आदमीको अपनी प्रतिज्ञाका भंग कभी न करना चाहिए। नीतिकारने कहा है—दिग्गज, कूर्मावतार, कुलपर्वत और शेषनाग आदिसे धारण की हुई यह पृथ्वी तो चलायमान हो सकती है, पर महा पुरुषोंकी प्रतिज्ञा कभी नहीं डिगती

अशोकने और भी विचारा–यदि मैं कमलश्री पर क्रोध करता हूँ, तो उसे घरका सब रत्ती रत्ती हाल मालूम है, तब संभव है कि वह जमीनमें गड़े हुए धनादिकको भी किसीको बतलादे। क्योंकि रसोइया, कवि, वैद्य भाट (चारण), शस्त्रधारी, स्वामी धनी, मूर्ख और अपना भेद जाननेवाले-पर क्रोध करके उन्हें क्रोधित करना ठीक नहीं। अन्यथा ये मौका पाकर बड़ा अनर्थ कर डालते हैं। ऐसा विचार कर

अशोकने समुद्रदत्तको वे दोनों घोड़े दे दिये और शुभ मुहूर्तमें उसके साथ कमलश्रीका विवाह भी कर दिया। ब्याहके कुछ दिनों बाद अशोकने समुद्रदत्तको विदा किया। अपने मित्रों और कमलश्रीको लेकर समुद्रदत्त रवाना हुआ।

इसके पहले कि समुद्रदत्त समुयात्रा करे, अशोकने आकर जहाजके मल्लाहोंसे कहा—समुद्रदत्तके पास दो घोड़े हैं, सो तुम अपने किरायेके बदलेमें उससे दोनों घोड़ोंको माँगना। मल्लाहोंने कहा—पर यह हो कैसे सकता है? जो हमारा वाजिबी किराया होगा, हम तो वही लेंगे और ज्यादा मिल भी कैसे सकता है?

अशोक बोला—तुम्हें इससे क्या मतलब? तुम माँगना तो सही! मल्लाहोंने कहा—अच्छी बात है। इसके बाद अशोक कमलश्रीको कुछ उपदेश देकर अपने घर लौट आया।

समुद्रदत्त अपने मित्रोंके साथ समुद्रके किनारे पर आया। उसने देखा समुद्र बड़ी शोभाको धारण किये हुए है। चारों ओर उसमें तरंगे उठ रहीं हैं, तैर रहे फेन-पिण्ड द्वारा वह चन्द्रमाकी शोभाको धारण कर रहा है, उसमें मगर, घड़याल और बड़े बड़े मच्छ इधरसे उधर दौड़ लगा रहे हैं। वह इस समय ठीक ऐसा मालूम पड़ता है जैसे प्रलयकालके मेघ उमड़ रहे हों।

समुद्रदत्तने मल्लाहोंसे जहाजका किराया पूछा। उन्होंने वे दोनों घोड़े माँगे। उनकी यह धीठता देखकर समुद्रदत्तको

बड़ा क्रोध आया। उसने उन मल्लाहोंसे कहा–तुम लोग बड़े ही नीच हो। जो ठीक किराया है, उससे ज्यादा एक फूटी कौड़ी भी मैं तुमको न दूँगा। घोड़ोंकी तो बात दूर रहे। तब मल्लाहोंने कहा–तो हम अपने जहाजमें बैठाकर तुम्हें उस पार भी न पहुँचा सकेंगे। यह देखकर कमलश्रीने कहा–प्यारे, इस झमेलेमें आप क्यों पड़े हो? चलिए, जलगामी घोड़े पर सवार हो समुद्र पार उतरें और अपने घर चलें। और इस आकाशगामी घोड़ेकी लगाम पकड़ लीजिए, सो यह आकाशमें उड़ता चला जायगा। समुद्रदत्तने ऐसा ही किया। वह थोड़ीही देरमें अपने घर पहुँच गया।

एक दिन समुद्रदत्त राजासे मिलने गया। उसने उस समय अपने आकाशगामी घोड़ेको राजाकी भेंट किया। राजाने प्रसन्न हो उसको आधा राज्य दिया और अपनी अनंगसेना नामकी राजकुमारीका उसके साथ ब्याह भी कर दिया। समुद्रदत्त अब बड़े सुखसे रहने लगा, दान-पूजा आदि पुण्य-कर्म करने लगा और मुनियोंको आहार देने लगा।

सुदंड राजाने वह घोड़ा अपने परम मित्र सूरदेव सेठको रक्षाके लिए सौंप दिया। नीतिकार कहते हैं–इसमें आश्चर्य नहीं कि इतने बड़े राजाकी सूरदेवसे मित्रता हो। क्योंकि सूरदेव बड़ा सज्जन था। इसलिए राजाका उस पर बड़ा प्रेम था। राजा इस बातको जानता था कि सच्चा मित्र पापसे बचाता

है, हितमें लगाता है, गुप्त बातोंको छुपाये रहता है, गुणोंको प्रगट करता है और आपत्तिके समय साथ न छोड़कर सहयता करता है।

सूरदेव उस घोड़ेकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करता था। एक दिन सूरदेवने विचारा–यह घोड़ा आकाशगामी है, तब इसके द्वारा तीर्थयात्रा क्यों न की जाय? क्योंकि जब तक शरीर नीरोग है, बुढ़ापा नहीं आया, इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ीं और आयु बाकी है, उसके पहले ही मनुष्यको अपने कल्याणके लिए यत्न करना उचित है। घरमें आग लगने पर कुआ खोदना किस कामका?

अपने निश्चयके अनुसार सूरदेव एक दिन आकाशगामी घोड़ेको पुचकार कर उस पर चढ़ा और चलनेके लिए उसनें घोड़ेके ऐड़ लगाई। फिर क्या था, घोड़ा हवा हो गया। सेठने सम्मेदशिखिर, गिरनार, शत्रुंजय आदि तीर्थोंकी वन्दना की।

सूरदेव इसी तरह हर एक पर्वके दिन अकृत्रिम चैत्यालय और निर्वाण भूमियोंकी वन्दना किया करता था और धर्मपूर्वक समय विताता था। सो ठीक ही है, क्योंकि बुद्धिमानोंका समय धर्मकार्योंमें वीतता है और मूर्खोंका सोने तथा लड़ाई-झगड़ोंमें वीतता है।

पल्ली नामकी एक सुन्दर पुरी है। उसके राजाका नाम पल्लीपति है। सूरदेव तीर्थयात्रा करनेको आकाशगामी घोड़े पर सवार होकर इसी पुरीपरसे जाया करता था। उसे

जाता देखकर किसी आदमीने पल्ली पुरीके राजा पल्लीपति-से कहा–महाराज, कौशाम्बीमें सूरदेव नामका एक सेठ रहता है। उसके पास एक आकाशगामी घोड़ा है। ऊपर देखिए उसी घोड़े पर सूरदेव चला जा रहा है। नीतिकार कहते हैं–राजाके सम्बन्धका कोई छोटेसे छोटा भी काम हो, तो उसे इस तरह सभामें कहना उचित नहीं। राजाने उसकी यह बात सुनी, पर इस नीतिको विचार कर, कि भाट, स्तुति-पाठक, ओछा स्वभाववाले, नाई, माली और साधु-संन्यासियोंके साथ बुद्धिमानोंको सलाह करना ठीक नहीं, वे चुप हो रहे।

फिर एक दिन सूरदेवको उसी घोड़े पर चढ़े हुए जाता देखकर राजाने कहा–यह घोड़ा यद्यपि दुबला पतला है तथापि जान पड़ता है बड़ा गुणी है। इसलिए यह इस कृश अवस्थामें भी बड़ा ही सुन्दर दिखता है। नीतिकार कहते हैं–कई वस्तुएँ ऐसी भी हैं जो कृश ही शोभाको पाती हैं। जैसे शाण पर चढ़ाया रत्न कट-छँटकर छोटा रह जाता है, पर उसकी सुन्दरता और मूल्य बढ़ जाता है। युद्धमें हाथी शस्त्रोंसे बुरी तरह घायल होकर निर्मद हो जाता है, पर विजयलाभ करनेसे वह प्रशंसा किया जाता है। चौमासेमें पूर आई नदी शरद ऋतुमें घटकर बहुत थोड़ी रह जाती है–उसका जल कम हो जाता है, पर सुन्दरता वही धारण करती है, चौमासेकी नदी नहीं। द्वितीयाका चन्द्रमा भी बहुत

छोटा होता है, पर तारीफ उसीकी होती है । संभुक्त बाल-वधू यद्यपि शिथिल हो जाती है, पर सुन्दर गिनी जाती है । दाताओंका धन याचकोंको दान देनेसे घट जाता है, पर संसारमें उस दाताकी सब ही प्रशंसा करते हैं । कहनेका सार यह कि दुबला-पतला पन भी बुरा नहीं है । यह विचार कर राजाने अपने योद्धाओंसे कहा—जो कोई इस घोड़ेको लाकर मुझे देगा उसे मैं अपना आधा राज्य दूँगा और राजकुमारीको उसके साथ व्याह दूँगा । नीतिकार कहते हैं—नीच मनुष्योंकी बुद्धि नीच कामोंमें बड़ी जल्दी स्फुरायमान होती है । उल्लुओंको अँधेरेहीमें दिखाई देता है । अस्तु । राजाकी यह बात सुनकर सब सुभटोंने अपने अपने मुँह नीचे कर लिये—किसीकी हिम्मत ' हाँ ' करनेकी न हुई । परन्तु उनमेंसे कुन्तल नामके एक सुभटने आगे बढ़कर कहा—महाराज, मैं इस घोड़ेको लाने जाता हूँ ।

राजाके सामने ऐसी प्रतिज्ञा कर कुन्तल चला गया । उसने घोड़ेकी प्राप्तिके लिए सेठके घरमें प्रवेश करनेके कई उपाय किये, पर उसे सफलता किसीमें न हुई । इससे उसे बड़ा कष्ट हुआ । आखिर उसे एक युक्ति सूझ गई । वह जैनी हो गया और एक गाँवमें कुछ दिनोंतक किसी मुनिके पास रहकर कपटसे कुछ थोड़ा बहुत लिख-पढ़ कर झूठा ही जैनधर्मका श्रद्धानी बन ब्रह्मचारी हो गया । अब वह सचित्त वस्तुओंका त्याग कर प्रासुक आहार लेने

लगा, दोनों वार सामायिक करने लगा, भूमि पर सोने लगा और छह छह आठ आठ उपवास करने लगा। लोग इसको ऐसा ज्ञानी ध्यानी देखकर मानने लगे–इसकी पूजा-प्रतिष्ठा करने लगे। सो ठीक ही है, नीच मनुष्य भी उत्तम पुरुषोंकी संगतिसे पूज्य हो जाता है। गंगाके किनारेकी धूलको भी लोग पूजने लगते हैं।

एक दिन क्षुल्लक कौशाम्बीमें आकर सूरदेव चैत्यालयमें ठहरा और मेरी आखें आगई हैं, ऐसा वहाना कर उसने आखों पर कपड़ा बाँध लिया। जब लोग उसे आहारके लिए कहते तब वह उनसे कहता कि मेरी आखोंमें बड़ी पीड़ा है। मैं आहार न करूँगा-उपसा ही रहूँगा। क्योंकि जिसकी आखोंमें, पेटमें और सिरमें पीड़ा हो, जिसको ज्वर आता हो और जिसके फोड़ा-फुंसी हो गये हों, तो ऐसे लोगोंको लंघन करना परमौषध है। जब सूरदेव पूजाके लिए मंदिरमें आया तो उसने मालीसे पूछा–यह कौन है? माली बोला–यह महा तपस्वी ब्रह्मचारी है। इसकी आखोंमें बड़ी पीड़ा है। यह सुनकर सूरदेव उस कपटीके पास गया और वन्दना कर उसने कहा–महाराज, कृपाकर आप मेरे यहीं पारण किया करें तो अच्छा हो। मैं आपकी आखोंकी भी दवा करूँगा। दवाईके विना आपकी आखें अच्छी न होंगी। उस मायावीने तब कहा–सेठजी, ब्रह्मचारियोंको किसीके घरमें रहना ठीक नहीं है–उनका तो ऐसी निराकुल जगहमें रहना ही

अच्छा है। सेठने कहा—जिसको राग-द्वेष नहीं है उसके लिए तो घर ओर वनमें भेद ही नहीं है। उसको तो जैसा घर तैसा ही वन। नीतिकारने कहा है—रागी मनुष्योंको वनमें भी दोष उत्पन्न हो जाते हैं और वैरागी घरहीमें पाँचों इन्द्रियोंका दमन कर सकता है। जो निन्द्य कार्यमें प्रवृत्त नहीं है और राग-द्वेषसे रहित है, उसको घर ही तपोवन है। इस प्रकार समझा-बुझाकर कुन्तलको सेठ अपने घर ले आया।

एक आदमीने कुन्तलकी धूर्तताको पहचान लिया। वह सेठसे बोला—सेठजी, यह ब्रह्मचारी नहीं किन्तु मायाचारी है—बड़ा बना हुआ बगुला है। इसका तपश्चरणादिक सब छल मात्र है। याद रखिए, यह आपका घर-बार लूट-लाट कर भाग जायगा। यह सुनकर सेठने कहा—यह जितेन्द्रिय है। इसकी निन्दा न करनी चाहिए। संसारमें जितेन्द्रिय पुरुष बड़े ही दुर्लभ हैं।

ऐसे लोगोंकी निन्दा करनेवाला पापी कहलाता है। यह देख ढोंगी कुन्तल बोला—सेठजी, इस धर्मात्मा पर क्रोध करनेसे कुछ लाभ नहीं। मायावीकी अपने निन्दकके प्रति ऐसी निरी-हता देखकर सेठने विचारा—यह ब्रह्मचारी बड़ा ही सत्पुरुष है। अपनी निन्दा करनेवाले पर भी क्रोध नहीं करता और न प्रशंसा करनेवाले पर प्रसन्न ही होता है। सेठके पासमें बैठे हुए लोग भी ऐसा ही कहने लगे कि इन महात्मामें तो अभिमान जरा भी नहीं है। मायावी कुन्तल बोला—जो सर्वज्ञ होता है

वह तो गर्व करता ही नहीं तब हम:अल्पज्ञोंकी तो बात ही क्या चली? अहंकारसे सब गुणोंका नाश हो जाता है । इसलिए गुण चाहनेवालेको अहंकार कभी न करना चाहिए।

इसके बाद सूरदेवने कुन्तलको बड़ी भक्तिसे आहार कराया और उसके रहनेके लिए अपने घरहीमें जहाँ वह घोड़ा बँधा करता था उसके पास ही एक एकान्त स्थानमें जगह देदी। और स्वयं सेठ उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगा। कुन्तल भी सेठको प्रतिदिन धर्मोपदेशसे सन्तुष्ट किया करता था। कभी कभी कुन्तल सेठसे कहता–सेठजी, आप बड़े धर्मात्मा हैं, जो जिन भगवान्के उपदेश किये गृहस्थोंके षट्कर्म–देवपूजा, गुरु-सेवा स्वाध्याय, संयम, तप, और दान आदिको निरन्तर करते रहते है । और इसीलिए मुनि जन भी आपके यहाँ आहारके लिए आया करते हैं।

एक दिन सूरदेव रातको सो रहा था। उसे गाढ़ निद्राके वश देख कुन्तलने अपनी घात लगाई। घोड़े पर सवार हो वह आकाशमार्गसे चल दिया। घोड़ा और अधिक वेगसे चले, इसके लिए उसने घोड़ेको एक जोरका चाबुक जमाया। घोड़ा उस मारको न सह सका। सो उसने उसे गिरा दिया। कुन्तल मर गया। घोड़ा पहलेके अभ्याससे विजयार्द्ध पर्वत पर सिद्धकूट चैत्यालयमें आगया और चैत्यालयकी तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान्के सामने खड़ा हो गया । इतनेहीमें सिद्धकूट चैत्यालयकी वन्दना

करनेके लिए अचिन्त्यगति और मनोगति नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ आये। इसी समय वहीं आये हुए एक विद्याधरोंके राजाने उस घोड़ेको भगवान्के सामने खड़ा देख अचिन्त्यगति मुनिकी वन्दना कर उनसे उस घोड़ेका हाल पूछा—मुनिराजने अवधिज्ञानसे घोड़ेका सब हाल विद्याधरसे कहकर कहा—राजन्, इस घोड़ेके कारण सूरदेव सेठ पर इस समय बड़ी भारी आपत्ति आई है। इस लिए तुम इसे पुचकार कर और हाथोंसे तीन वार इसकी पीठ ठोककर इस पर चढ़ सेठके पास जल्दी पहुँचो, जिससे उसका उपसर्ग टल जाय।

नीतिकारने लिखा है—नष्ट-भ्रष्ट हुए कुलका, कुएका, तलाव-वावड़ीका, राज्यका, अपनी शरणमें आये हुए लोगोंका, ब्राह्मणका, धर्मात्माओंका और जीर्ण-शीर्ण मन्दिरोंका जो उद्धार करता है—इनकी रक्षा करता है उसे चौगुना पुण्यबन्ध होता है।

मुनिराजके वचनोंको सुनकर वह विद्याधर-सम्राट् घोड़े पर सवार हो जबतक कौशाम्बीमें पहुँचता है, उसके पहले वहाँ जो घटना हुई, उसका वृत्तान्त लिखा जाता है।

इधर सूरदेवने सोतेसे उठते ही सुना कि घोड़ा चला गया। उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह बोला—मायावियोंके प्रपंचोंको कोई नहीं जान पाता। आज मेरे बड़ा ही अशुभ कर्मका उदय आया। घोड़ेके लिए राजा जरूर ही मेरा सिर कटवा-

डालेगा। खैर, अब जो होगा वह भोगना ही पड़ेगा। ऐसा विचार कर उसने अपने सब परिवारके लोगोंको बुलाकर कहा—मेरा तो जो होना होगा वह होगा, परन्तु तुम लोग दान-पूजा आदि धर्मकार्योंको न छोड़ना। क्योंकि नीच लोग तो विघ्नोंके भयसे कोई काम ही प्रारंभ नहीं करते, और मध्यम श्रेणीके पुरुष काम तो प्रारंभ कर देते हैं, पर विघ्न आजाने पर उसे छोड़ बैठते हैं। पर उत्तम पुरुष वे हैं जो बार बार विघ्न आने पर भी प्रारंभ किये हुए कार्यको नहीं छोड़ते। इसलिए हम पर यद्यपि इस समय बड़ी भारी आपत्ति आई है तो भी तुम लोग अपना धर्मकार्य करते ही चले जाना।

यह सब हाल-चाल देखकर किसीने सेठसे हँसीमें कहा—क्यों सेठजी, आपके ब्रह्मचारी महाराज अच्छे तो थे न? सेठजीने तड़ाकसे उसे मुँहतोड़ जबाव दिया, कि हां क्या गया? माना कि वह मायाचारी था, पर इससे विगड़ क्या गया?

एक पापीके अपराधसे शासनकी क्या हानि हो गई? अपने पापसे वही पापी नष्ट हुआ। अयोग्य लोगोंके अपराधसे क्या धर्ममें मलिनता आती है? एक मेंढ़कके मरजानेसे समुद्र गँदला नहीं होता। और सुनो, यह कलियुग है, इसमें सच्चे पुरुष मिलने बड़े दुर्लभ हो गये, राजकीय करोंके कारण देश दरिद्र हो गये, राजा लोग लोभी हो गये, चोर लूटने लगे, स्त्रियाँ छीजती जाती हैं, सज्जन पुरुष दुःख भोगते हैं और दुर्जन मौज उड़ाते हैं। मतलब यह कि कलियुगका

जमाना है, जो न हो जाय सो थोड़ा है । इसके बाद सेठ चैत्यालयमें गया और भगवान्की वन्दना कर प्रार्थना करने लगा—हे दीनबन्धो, अब मैं तभी आहार-पानी ग्रहण करूँगा जब कि मेरा यह उपसर्ग टलेगा। ऐसी प्रतिज्ञा कर सेठ जिनेन्द्र भगवान्के सामने संन्यास धारण कर बैठ गया।

इधर राजाने घोड़ेका हाल सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया। वह बोला—सूरदेवका सिर कटवा डालना चाहिए। पासमें बैठे हुए लोगोंने भी राजाकी हाँमें हाँ मिलादी। सो यह ठीक ही है, जैसा राजा वैसी ही प्रजा होती है। राजाने यमदंडको बुलाकर आज्ञा दी कि मेरे शत्रु सूरदेवका सिर काट कर जल्दी मेरे पास ला। क्योंकि धर्मकार्यके प्रारंभ करनेमें, ऋण चुकानेमें, कन्याका विवाह करनेमें, धन कमानेमें, आग बुझानेमें, रोग दूर करनेमें और शत्रुका वध करनेमें विलंब करना ठीक नहीं।

राजाकी आज्ञा पाकर यमदंड नंगी तलवार लिए चला। सूरदेवका सिर काटनेके लिए उसने तलवार उठाई कि इतनेमें उसे शासनदेवताने वहाँका वहीं कील दिया।

इसी मौके पर वह विद्याधर भी उस घोड़े पर चढ़ा हुआ सूरदेवके पास चैत्यालयमें आ पहुँचा और तीन प्रदक्षिणा देकर जिनेन्द्र भगवान्के सामने खड़ा हो गया। देवोंने सूरदेवके व्रतका प्रभाव देखकर पंचाश्चर्य किये। यह सब वृतान्त सुनकर राजाने कहा—सचमुच धनसे बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं। देखिए, धनहीके कारण भरतराज अपने छोटे

भाई बाहुबलिसे लड़े थे, उनके मारनेकी उन्होंने चेष्टा की थी। ऐसा विचार कर सुदंड राजा उसी समय आया और हाथ जोड़कर सेठसे बोला–सेठजी, मैंने अज्ञानसे बड़ी भूल की है। मुझे क्षमा कीजिए। सूरदेवने उचित उत्तर देकर संतुष्ट किया।

इसी बीचमें एक आदमीने सेठसे कहा–सेठजी, मृत्यु तो आ पहुँची थी, पर भाग्यसे आप बच गये कहा–मैं मर भी जाता तो कोई आश्चर्य न था। मृत्युसे कौन नहीं मरा? देखो, सुवेल नामका पर्वत अभेद्य किला था, समुद्र जिसकी खाई थी, कुवेर खजानेकी रक्षा करता था, मुँहमें जिसके विद्या थी, वह रावण भी जब मृत्युसे नहीं बच सका तब साधारण लोगोंकी क्या चली? सेठके इस प्रभावको देखकर सब लोगोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। राजाने कहा–जैनधर्मको छोड़कर दूसरे धर्ममें ऐसा चमत्कार नहीं। यह विचार कर उसने अपने राजकुमारको राज्य दे सुमति मंत्री, सूरदेव, सागरदत्त एवं और बहुतसे लोगोंके साथ जिनदत्त मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण करली। कुछ लोगोंने श्रावकोंके व्रत लिये। कुछ लोगोंके परिणामोंमें इस वृत्तान्तके देखनेसे सरलता आई। इधर विजया रानी, मंत्रि-पत्नी गुणश्री, सूरदेवकी स्त्री गुणवती तथा और बहुतसी स्त्रियोंने अनन्तश्री आर्यिकाके पास दीक्षा ग्रहण की। कुछ स्त्रियोंने श्रावकोंके व्रत लिये।

यह कथा कहकर विद्युल्लता अर्हद्दाससे बोली—नाथ, मैंने यह सब वृत्तान्त प्रत्यक्ष देखा है, इसी कारण मुझे दृढ़ सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हुई ।

अर्हद्दासने विद्युल्लताकी प्रशंसा कर कहा—प्रिये, मै भी तुम्हारे सम्यक्त्वका श्रद्धान करता हूँ और उसे चाहता हूँ । अर्हद्दासकी और और स्त्रियोंने भी उसकी हाँमें हाँ मिलाकर वैसा ही कह विद्युल्लताकी प्रशंसा की । पर कुन्दलताने पहले सरीखी ही दृढ़तासे कहा—यह सब झूठ है, आपने और मेरी इन वहिनोंने जो सम्यक्त्व ग्रहण किया है, मैं उसका श्रद्धान नहीं करती, न मैं उसे चाहती हूँ और न मेरी उसमें रुचि ही है । कुन्दलताकी यह बात सुनकर उदितोदय राजा, सुबुद्धि मंत्री और सुवर्णखुर चोरने अपने अपने मनमें कहा—क्या किया जाय दुर्जनका स्वभाव ही ऐसा होता है ।

यह विचार कर वे तीनों अपने अपने घर चले गये ।

सवेरा हुआ । राजाने शौच, मुख-मार्जन कर सूर्यको अर्घ दिया, नमस्कार किया और प्रातःकालकी सब क्रियाएँ समाप्त कीं । इसके बाद कुछ आदमियोंको साथ लिए राजा और मंत्री अर्हद्दास सेठके घर पर आये । सेठने उनका वड़ा आव-आदर किया । सो ठीक ही है, क्योंकि नीतिकार कहते हैं—जब अपने घर कोई प्रेमी आवे तो उससे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि—आइए, वैठिए, यह आसन है, आपके दर्शनसे मैं वड़ा प्रसन्न हुआ, कहिए क्या हाल है, वड़े दुवलेसे

दीखते हो, अबकी बार बहुत दिनोंमें दर्शन दिये—इत्यादि। जो ऐसा व्यवहार करें, उनके घर पर प्रसन्न मनसे जरूर जाना चाहिए। और जिसके घर पर वह आवे उसे उचित है कि वह मित्रके आने पर तो क्या, पर यदि शत्रु भी अपने घर पर आ जाय तो उसे वह प्रेमभरी दृष्टिसे देखे, उसके साथ मधुर संभाषण करे, उसे ऊँचे आसन पर बैठावे, भोजन करावे और पान-सुपारी दे।

इसके बाद राजाने सेठसे कहा—सेठजी, रातमें आपने और आपकी सातों स्त्रियोंने जो-जो कथाएँ कहीं, दुष्टा कुन्दलताने उन सबको झूठ बतलाकर निन्दा की। वह बड़ी दुष्टा है और कभी यही आपकी मृत्युका कारण होगी। क्योंकि दुष्ट स्त्री, मूर्खमित्र, जवाब देनेवाला नौकर और साँपका घरमें रहना ये सब मृत्युके कारण हैं। इसलिए उसे मेरे सामने लाइए। मैं उसे दंड दूँगा। यह सुनते ही कुन्दलताने राजाके सामने आ कहा—लीजिए महाराज, यह है वह दुष्टा! इन सबने जो कुछ कहा और इनका जैसा जिन व्रत पर निश्चय है, मैं उसका श्रद्धान नहीं करती, मैं उसे नहीं चाहती और न मेरी उसमें रुचि होती है। राजाने पूछा—तू क्यों उनका श्रद्धान नहीं करती? हम सबने रूपखुर चोरको सूली पर चढ़ते देखा है। इस बातको तू झूठी कैसे बतलाती है?

कुन्दलता बोली—महाराज, ये सब तो जैन-कुलमें ही पैदा हुए हैं और बालकपनसे ही इनको जैनधर्मका संसर्ग रहा है, इसलिए ये यदि जैनधर्मको छोड़कर दूसरे धर्मको नहीं

जानते तो इसमें कोई नई बात नहीं। पर मैं न तो जैनीकी लड़की हूँ और न स्वयं जैनी हूँ, तौ भी मुझे जिनधर्मके व्रतोंका प्रभाव सुनकर वैराग्य हो गया, यह सचमुच आश्चर्यकी बात है महाराज! मैं केवल श्रद्धान मात्रसे कुछ लाभ नहीं समझती और यही कारण है कि अब मैंने निश्चय कर लिया है—मैं सबेरे ही जिन-दीक्षा लूँगी। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि इन सबने जिनधर्मके व्रतोंका माहात्म्य देखा है और सुना भी है, तौ भी ये सब रहे मूर्खके मूर्ख ही। उपवास आदि करके ये शरीरको सुखाते जरूर हैं, पर संसारके भोगोंमें ये सदा फँसे रहते हैं—भोग-विलासोंको छोड़ते नहीं हैं। मेरा तो यह सिद्धान्त है कि मनुष्यको गुण सम्पादन करनेमें प्रयत्न करना चाहिए, आडम्बरोंमें नहीं। जिन गायोंमें दूध ही नहीं है उनके गलेमें केवल घंटा बाँध देनेसे क्या वे बिक जायँगी? इस प्रकार कुन्दलताकी बातें सुनकर राजाको, मंत्रीको और अर्हदास आदिको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने तब उसकी प्रशंसा की, स्तुति की और उसे नमस्कार किया। इसके बाद उदितोदय राजा, सुबुद्धि मंत्री, सुवर्णखुर चोर, अर्हद्दास सेठ तथा और भी बहुतसे लोगोंने अपना अपना पद और अपना अपना स्थावर-जंगम सम्पत्तिका अधिकार अपने अपने पुत्रोंको सौंपकर गणधर मुनिराजके पास जिन-दीक्षा ग्रहण की। किसीने श्रावकोंके व्रत लिये। किसी किसीने अपने परिणामोंको ही निर्मल किया। रानी यशोमती, मंत्रि-पत्नी सुप्रभा, अर्हद्दासकी आठों स्त्रियोंने तथा और भी बहुतसी

स्त्रियोंने उदयश्री आर्यिकाके पास जिन-दीक्षा ली। किसी-किसीने श्रावकोंके व्रत लिये। सबने बड़ा उग्र तप किया। कोई मोक्ष गया, कोई सर्वार्थसिद्धि गया, तथा कोई किसी स्वर्गमें गया और कोई किसीमें।

इस प्रकार गौतमस्वामीने श्रेणिकसे सम्यक्त्व-कौमुदीकी कथाएँ कहीं। उन्हें सुनकर सबको दृढ़ सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई। ग्रन्थकार कहते हैं—तब भव्यजनो, तुम भी इन कथाओंको सुनकर या पढ़कर सम्यक्त्व ग्रहण करो न ? जिससे तुम्हारा संसार-भ्रमण छूट सके और तुम मोक्षका सुख प्राप्त कर सको।

देखो, यह जीव धर्म-साधनसे स्वर्ग लाभ करता है और पापसे नर्कोंमें जाता है। ज्ञानसे इसे मोक्ष मिलता है और अज्ञानसे कर्मोंका बन्ध होता है। इसलिए जो किसी भी प्रकारका सुख चाहते हैं, जैसे—धन-दौलतका, कामभोगका, सौभाग्य प्राप्तिका, पुत्र-लाभका, राज्य-वैभवका या और किसी प्रकारका, तो उन्हें धर्म प्राप्तिके लिए पूर्णपने यत्न करना चाहिए। क्योंकि धर्मसे जब स्वर्ग-मोक्षका भी सुख मिल सकता है तब उससे और साधारण सुख क्या न मिलेंगे ? मिलेंगे—और अवश्य मिलेंगे। धर्मका लक्षण ही ऐसा है कि " जो दुःखोंसे छुड़ाकर सुखमें स्थापित करे।" वह पवित्र धर्म संसारके जीवोंका कल्याण करे, यह मनोकामना है।
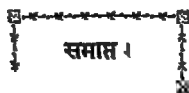
समाप्त।

श्रीवीतरागाय नमः ।

सम्यक्त्व-कौमुदी ।

श्रीवर्द्धमानमानम्य जिनदेवं जगत्प्रभुम् ।
वक्ष्येहं कौमुदीं नृणां सम्यक्त्वगुणहेतवे ॥
गौतमस्वामिनं स्तौमि गणेशं च श्रुताम्बुधिम् ।
स्तवीमि भारतीं तां च सर्वज्ञमुखनिर्गताम् ॥
गुरूंश्चार्ये त्रिशुद्ध्याथ श्रुतसागरपारगान् ।
यत्प्रसादेन निःशेषं जाड्यं याति हृदिस्थितम् ॥

अथ जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे मगधविषये सततं प्रवृत्तोत्सवं प्रभूतवर-जिनालयं जिनधर्माचारोत्सवसहितश्रावकं भोगावतीनगरवद्राजगृहं नाम नगरमस्ति । तत्र समस्तराजमंडलीमंडितसिंहासनः सकलकला-प्रौढः समस्तराजनीतिसमन्वितः श्रेणिको नाम राजास्ति । तस्य तत्र पट्टमहिषी समस्तगुणसम्पन्ना जिनधर्मप्रभाविका महारूपवती चेलना नामास्ति । स च श्रेणिकोऽमरराजवद्राजते ।

एकदा वनपालेन वने परिभ्रमता परस्परनिबद्धवैरिणमश्वमहिष-मूषकमार्जाराहिनकुलादीनामेकत्रमेलापकं दृष्टम् । साश्चर्यो भूत्वा मनसि विचारयति—अहो, किमेतत् ! एवं पर्यटता वनपालेन

विपुलाचलपर्वतस्योपरि समस्तसुरेश्वरसमन्वितं जयनयादिरवपूर्णदिगन्तरालमन्तिमतीर्थंकरश्रीवर्द्धमानस्वामिसमवसरणं दृष्टं । दृष्ट्वा हृष्टः सन् मनसि विचारयति—अहो परस्परविरुद्धजातानां यदेकत्र मेलापकं दृष्टं मया, तत् सर्वमस्य महापुरुषस्य माहात्म्यम् ।

तथा चोक्तम्—

" सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं
मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशा केकिकांता भुजंगीम् ।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम् ॥ "

एवं ज्ञात्वा कानिचिदकालफलानि गृहीत्वा स वनपालक आस्थानस्थितमहामंडलेश्वरश्रेणिकस्य हस्ते दत्वा च तानि भणति स्म—देव, तव पुण्योदयेन विपुलाचलपर्वतस्योपरि श्रीवर्द्धमानस्वामिसमवसरणं समागतम् । एतच्छ्रुत्वासनादुत्थाय तद्दिशि सप्तपदानि गत्वा साष्टाङ्गं नमस्कृत्य तदनन्तरं वनपालस्याङ्गस्थितानि वस्त्राभरणानि परमप्रीत्या दत्तानि श्रेणिकेनातिसंतुष्टेन ।

वनपालेनोक्तम्—

" रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं देवतां गुरुम् ।
नैमित्तिकं विशेषेण फलेन फलमादिशेत् ॥ "

तत आनन्दभेरीं दापयित्वा मागधेशः श्रेणिकः परिजनपुरजनसहितो महोत्सवेन समवसरणं जगाम । नृपः करौ कुड्मलीकृत्य पूजां-स्तुतिं चकार ।

यथा—

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य देव त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन ।
अद्य त्रिलोकतिलक ! प्रतिभासते मे संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ॥

इति स्तोत्रशतसहस्रैर्जिनं मुनिनायकं, गौतमस्वामिनं च स्तुत्वा यथोचितकोष्ठ उपविष्टः । जिनस्योपदेशामृतं पीत्वा ततोऽवसरं प्राप्य गौतमस्वामिनं प्रति श्रेणिको ब्रूते—हे स्वामिन्, कौमुदीसम्यक्त्व-कथां कथय ।

भगवान् गौतम आह—

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे सौरदेश उत्तरमथुरायां राजा पद्मोदयः । तस्य राज्ञी यशोमतिः । तयोः पुत्र उदितोदयः । राजमंत्री संभिन्नमतिः । तस्य भार्या सुप्रभा । तयोः पुत्रः सुबुद्धिः । तत्राञ्जनगुटिकादिविद्या-प्रसिद्धो रूपखुरनामा चोरोस्ति । तस्य भार्या रूपखुरा । तयोः पुत्रः सुवर्णखुरः । तत्र राजश्रेष्ठी जिनदत्तः । तस्य भार्या जिनमतिः । तयोः पुत्रोऽर्हद्दासः । तस्यार्हद्दासस्य भार्या अष्टौ । मित्रश्रीः, चन्दनश्रीः, विष्णुश्रीः, नागश्रीः, पद्मलता, कनकलता, विद्युल्लता, कुन्दलता, चैताः परस्परमहास्नेहा, दयादानतपःपरा वर्तन्ते ।

अथोदितोदयो राजा कौमुदीयात्रां प्रतिवर्षे स्ववनमध्ये कार्तिक-मासे शुक्लपक्षे पूर्णिमादिवसे कारयति । तदनुसारेण राज्ञा घोषणं दापितम्—"अद्य दिने समस्ता नगरास्थिताः स्त्रियो वनक्रीडां कर्तुं व्रजन्तु । रात्रौ तत्रैव तिष्ठन्तु । पुरुषाः सर्वेपि नगराभ्यन्तरे तिष्ठन्तु । कोपि पुरुषो वनान्तरे स्त्रीणां पार्श्वे गमिष्यति चेत् स च राजद्रोही । नृत्यगीतविनोदादिसमन्वितां क्रीडां कृत्वा महत्संभ्रमेण स्वपुरमायान्तु।" एवं महता सुखेन राजा राज्यं करोति ।

तथा चोक्तम्—

"आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां पूज्यानामपमानता ।
पृथक्शय्या च नारीणा-मशस्त्रवधमुच्यते ॥"

लोकेन यथा राज्ञा भणितं तथा कृतम् । न कोऽपि वनं गताः ।

उक्तं च—

"आज्ञामात्रफलं राज्यं ब्रह्मचर्यफलं तपः ।
ज्ञानमात्रफलं विद्या दत्तभक्तफलं धनम् ॥"

राज्ञा चतुर्दिक्षु सावधानान्भटान्संस्थाप्य रक्षणं कृतम् ।

यत—

"नदीनां नखिनाञ्चैव शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥"

यदा राज्ञाऽऽदेशवशवर्तिन्यो विविधविहितशृंगारा उद्यानगमनाय सर्वा नार्यः सोद्यमा दृष्टा तदा नागरिकानाहूयाऽऽज्ञप्तम् । भो नागरिकाः, भवन्तो नगराभ्यन्तरे निजनिजविनोदैः क्रीडाद्यैश्च त्वरमाणास्तिष्ठन्तु । तदा श्रेष्ठिना चिन्तितम्—अद्याहं सपरिकरः कथं चैत्यार्चनं करिष्यामि ? इति क्षणं विसर्ज्योपायं चिंतयित्वा, स्वर्णस्थालं रत्नसंभृतं कृत्वास राजकुलं गतः । नृपाग्रे स्थालं मुक्त्वा प्रणामं कृतवान् । ततोऽवनिपालेन पृष्टं—श्रेष्ठिन्, समागमनकारणं कथय ? श्रेष्ठिना विनयनम्रशिरसि करकुड्मलं कृत्वा भणितं—राजन्नद्य चातुर्मासिको मया श्रीवर्द्धमानस्वामिनोऽग्रे नियमो गृहीतोऽस्ति । एवं पञ्च दिने समग्रजिनायतनेषु चैत्यपरिपाटी विधिवत्कार्या, साधुवन्दना च । रात्रावेकस्मिन्प्रसादे महा-

पूजा विधेया, गीतं नृत्यादिकं करणीयमिति नियमो गृहीत इति । यथा मे नियमभंगो न स्यात्, यथा च भवदादेशः पालितः स्यात् तथाऽऽदिश्यताम् । एतच्छ्रुत्वा नरपतिना हृदि ध्यातमहो, अस्य महान् धर्मनिश्चयः । अनेन पुण्यात्मनैतन्नगरं शोभते । इत्यादिभावनां कृत्वोक्तं—भो श्रेष्ठिन्, त्वं धन्यः, कृतार्थस्त्वं, ते मनुजजन्म सफलं, यस्त्वमेवंविधकौमुद्युत्सवेपि धर्मोद्यमं करोषि । त्वयाऽस्मद्राज्यं राजते । अतस्त्वं निःशंकं सर्वसमुदायेन समं स्वकीयसर्वमपि धर्मकृत्यं कुरु । अहमपि तदनुमोदयामीति गदित्वा रत्नस्थालं पश्चात् समर्प्य पट्टकूलादिना प्रसादं कृत्वा विसर्जितः । ततो हर्षभरनिर्भरेण श्रेष्ठिना स्वसमुदायेन सह महदुत्सवेन चैत्यपरिपाटयादि समस्ततद्दिनधर्मकृत्यं समाप्य रात्रौ विशेषतः स्वसदनस्थजिनगृहे पूजां कृत्वा जिनाग्रे परमभक्त्या देवानामपि मनोहारि भूपानां दुर्लभमुत्सवं प्रारब्धं । अस्याष्टौ भार्या सन्ति, ता अपि स्वस्वाम्यनुवृत्त्या धर्मबुद्धया च मधुरजिनगुणगानं, सतालमानं भेर्यादिवाद्यनिनादं च, नृत्यं च कुर्वन्त्यः संति । नागरिकलोकोपि भव्यविनोदैर्दिनमतिक्रम्य शर्वर्यां स्वमन्दिरे स्थितवान् । अत्रान्तरे चन्द्रोदये कामातुरेण राज्ञा स्वराज्ञी स्मृता । प्रियाविरहितस्य हृदि चिन्ता समागता इति गता निद्रा । नृपोपि निद्रामलभमानो मंत्रिणं प्रति जगाद—भो मंत्रिन्, यत्र विलासवत्यः सविलासं विलसन्ति तत्रोद्याने विनोदार्थं जंगम्यते । एतद्राजवचनं श्रुत्वा सुबुद्धिमन्त्रिणाऽभाणि—देव, साम्प्रतमुद्यानगमने क्रियमाणे बहुभिर्नागरैः समं विरोधो भविष्यति, विरोधे जायमाने च राज्यादिविनाशः स्यात् ।

उक्तं च—

" बहुभिर्न विरोद्धव्यं दुर्जयो हि महाजनः ।
स्फारमपि नागेन्द्रं भक्षयन्ति पिपीलिकाः ॥ "

मन्त्रिणो वचनं हृदयेऽवगम्य सावज्ञं, साभिमानं च नृप आह—भो नियोगिन्, मयि क्रुद्धे सति वराका एते किं कर्तुं समर्थाः।

उक्तं च—

" आजन्मप्रतिबद्धवैरपरुषं चेतो विहायादरा—
त्सांगत्यं यदि नाम संप्रति वृकैः सार्धं कुरंगैः कृतम् ।
तत्किं कुंजरकुंभपीठविलुठद्व्यासक्तमुक्ताफल-
ज्योतिर्भासुरकेसरस्य पुरतः सिंहस्य किं स्थीयते ॥ "

मन्त्रिणोक्तम्—

" न सौख्यसौभाग्यकरा गुणा नृणां
स्वयंगृहीता युवतिस्तना इव ।
परैर्गृहीता उभयोस्तु तन्वते
न युज्यते तेन गुणग्रहः स्वयम् ॥ "

सामर्थ्यं जायते राजन्समुदायेन तत्क्षणात् ।
प्राणिनामसमर्थानामतो मुञ्च दुराग्रहम् ॥

तथा च—

" बहूनामप्यसाराणां समुदायो हि दारुणः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोपि बध्यते ॥ "

पुना राजा ब्रूते—

किं तेनासक्तेन समुदायेन !

" एकोपि यः सकलकार्यविधौ समर्थः
सत्त्वाधिको भवति किं बहुभिः प्रहीनैः ।
चन्द्रः प्रकाशयति दिङ्मुखमंडलानि
तारागणः समुदितोप्यसमर्थ एव ॥

पुनर्मंत्री वदति—

भो नरेन्द्र, तव विनाशकालः समायातः, अन्यथा विपरीतबुद्धिर्न जायते ।

उक्तं च—

" न निर्मिता केन न च पूर्वदृष्टा न श्रूयते हेममयी कुरंगी ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ॥ "

बहुजनविरोधे सति विनाशं विहायाऽन्यन्न भवति । अत्रार्थे सुयोधनराजाख्यानं शृणु सावधानो भूत्वा । तथाहि— हस्तिनागपुरे सुयोधनराजा । तस्य पट्टराज्ञी कमला । तयोः पुत्रो गुणपालः । मंत्री पुरुषोत्तमः । स चतस्रनृपविद्यानां ज्ञाता राजवल्लभोऽभूत् ।

उक्तं च—

" मंत्रः कार्यानुगो येषां कार्यं स्वामिहितानुगम् ।
त एव मंत्रिणो राज्ञां न तु ये गल्लफुल्लकाः ॥ "

कपिलः पुरोहितो जपहोमविधानाशीर्वाददानसावधानः ।

उक्तं च—

" वेदवेदांगतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः ।
आशीर्वादपरो नित्य-मेष राज्ञः पुरोहितः ॥ "

यमदंडः कोटपालः । एवं राज्यं करोति सुयोधनराजा ।

एकदाऽऽस्थानस्थितराज्ञोऽग्रे चरेण निरूपितम्—भो राजन्, तव देशः शत्रुभिरुपद्रुतः। एतद्वचः श्रुत्वा राज्ञोक्तं—तावद्वैरिवर्गो भुवस्तले निःशकं दृश्यन्तु, यावन्मत्कालखड्गस्य गोचरे ते न निपतन्ति।

उक्तं च—

" निद्रामुद्रितलोचनो मृगपतिर्यावद्गुहां सेवते
तावत्स्वैरममी चरन्ति हरिणाः स्वच्छन्दसंचारिणः।
उन्निद्रस्य विधूतकेसरसटाभारस्य निर्गच्छतो
नादे श्रोत्रपथं गते हतधियां सन्त्येव शून्या दिशः॥
तावद्गर्जन्ति मातंगा वने मदभरालसाः।
शिरोवलग्नलांगूलो यावन्नायाति केसरी॥"

पुनः—

" तावद्गर्जन्ति मण्डूकाः कूपमाश्रित्य निर्भरम्।
यावत्करिकराकारः कृष्णसर्पो न दृश्यते॥ "

एवमुदित्वा चतुरङ्गबलेन राज्ञा शत्रुं प्रति प्रयाणकोद्यमः कृतः। ततो वीराणां तुष्टिदानं दत्वा भणितम्—

" जानीयाः प्रेषणे भृत्यं बान्धवं व्यसनागमे।
मित्रं चापत्तिकाले च भार्यां च विभवक्षये॥ "

ततो निर्गमनसमये यमदंडकोटपालं प्रति तेन भणितम्—भो यमदंड, त्वया महद्यत्नेन प्रजारक्षणं कार्यम्। तेनोक्तं—महाप्रसादः। अपराण्यपि कार्याणि निरूप्य यमदंडस्य निर्गतो राजा। तुष्टिनादारभ्य यमदंडेन सर्वजनानन्दकारि रक्षणं कृतम्। राजकुमारादयः सर्वेपि नागरा समावर्जिताश्च। कतिपयदिवसैः शत्रुं जित्वा स्वरिपोः सर्व-

स्वापहारं कृत्वा निजनगरं प्रत्यागतो राजा । महाजनं सम्मुखागतं नरपतिना संमान्य भणितम्—भो लोका, यूयं सुखेन तिष्ठत ? तैरुक्तं—स्वामिन्, यमदंडप्रसादेन सुखेन तिष्ठामः । कियन्तं कालं विलम्ब्य, ताम्बूलं दत्वा पुनरपि राज्ञा पृष्टा लोकास्तैस्तथैवोक्तम् । ततो महाजनं प्रस्थाप्य मनसि चिन्तितं राज्ञा—अहा, यमदंडेन सर्वोपि लोकः स्वायत्तीकृतः । असौ दुष्टात्मा । मम राज्यद्रोही । येन केनोपायेनैनं मारयामि ।

यदुक्तम्—

" नियोगिहस्तार्पितराज्यभाराः स्वपन्ति ये स्वैरविहारसाराः ।
बिडालवृन्दार्पितदुग्धपूराः स्वपन्ति ते मूढधियः क्षितीन्द्राः ॥ "

एवमपमानेन स्थितो राजा न कस्यापि निरूपयति ।

यतः—

" अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ "

एकदा यमदंडेन गत्याकारेण राजानं दुष्टाभिप्रायं ज्ञात्वा स्वमनसि चिन्तितम्—अहो, मयाऽभव्यं राज्यकार्यं कृतं । यद्राजा दुष्टत्वं न त्यजति । राजा कस्यापि वशो न भवति इति लोकोक्तिः सत्या ।

तथा चोक्तम्—

" काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता ।
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ "

कियान् कालो गतः । एकदा राज्ञा मंत्रिणं सपुरोहितमाहूय स्वचित्ता-

भिप्रायं निवेद्य भणितम्—अयं यमदंडो दुष्टात्मा मारणीय उपायेन । ततस्ताभ्यां तथैवालोचितम् ।

यतः—

"तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्च तादृशः ।
सहायास्तादृशा ज्ञेया यादृशी भवितव्यता ॥"

उपायं कंचनं पर्यालोच्य त्रिभिर्मिलित्वैकस्मिन्दिवसे राज्ञा कोशे खनित्रव्यापारं कृत्वा तत्रस्थानि वस्तूनि अन्यत्र सुगुप्तस्थाने निक्षिप्य निजस्थानं प्रति वेगेन गच्छता राज्ञा पादुका, मंत्रिणा मुद्रिका विस्मृता, पुरोहितेन च यज्ञोपवीतं । प्रातः समये कोलाहलः कृतः । यमदंडाकारणार्थं भृत्याः प्रेषिताः । यमदंडेन चिन्तितमद्य मे मरणमायातम् ।

यदुक्तम्—

"कविरकविः पटुरपटुः शूरो भीरुश्चिरायुरल्पायुः ।
कुलजः कुलीनहीनो भवति पुमान्नरपतेः कोपात् ॥"

एवं निश्चित्यागतो राजमन्दिरं यमदंडः । तं दृष्ट्वा राज्ञा भणितं—रे यमदंड, महाजनरक्षां करोषि, ममोपरि औदासीन्यं च । अद्य मम भाण्डारस्थितानि सर्ववस्तूनि चौरेण गृहीतानि । तानि वस्तूनि चौरश्च झटिति दातव्यः । नो चेच्छिरश्छेदं करिष्यामि । एतद्राजवचनं श्रुत्वा खातावलोकनार्थं गतो यमदंडः । तत्र खातमुखे, पादुकां, मुद्रिकां, यज्ञोपवीतं च दृष्ट्वा गृहीत्वा पादुकाभ्यां राजा, मुद्रिकया मंत्री, यज्ञोपवीतेन च पुरोहितश्चौरो ज्ञातः । ततश्चित्ते तेन विचारितम्—अहो, यदि राजा एवं करोति, तदा कस्याग्रे

निरूप्यते । इमं कोलाहलं श्रुत्वा सर्वोपि नागरः समुदायेन समायातः । तस्याग्रे राज्ञा समग्रं वृत्तान्तं कथितम् । महाजनेन निरूपितं—हे तात, अस्य सप्त दिनानि दातव्यानि । सप्त दिनानन्तरं वस्तूनि चौरं च न प्रयच्छति चेत्तदा देव, चिन्तितं कार्यं श्रीमता । राज्ञा महाजनोक्तं महता कष्टेन प्रतिपन्नम् । तमर्थं सुवद्धं विधाय नागरिकलोको निजधाम जगाम । इतो यमदंडेन राजपुत्रादिसर्वसमाजं मीलयित्वा निरूपितं—मया किं क्रियते, ईदृग्विधा व्यवस्था मे समायाता । महाजनेनोक्तं मा भयं कुरु ।त्वयि रक्षणायोद्यते सत्यस्मिन्नगरे चौरव्यापारो न । साम्प्रतं राज्ञो भेदेन चौरव्यापारोस्ति । युवयोरुभयोर्मध्ये यो दुष्टस्तस्य निग्रहं करिष्यामो वयम् । यमदंडेनोक्तं भव्यं भवतु । ततोऽनन्तरं धूर्तवृत्त्या चौरमवलोकयति । यमदंडः प्रथमदिने राजसभायां गतः । राज्ञे नमस्कारं कृत्वोपविष्टः । नरपतिना पृष्टं—रे यमदंड, त्वया चौरो दृष्टः ? तेनोक्तं—स्वामिन्, मया सर्वत्र चौरगवेषणं कृतं, परं न दृष्टः कुत्रापि । पुना राज्ञोक्तं-एतावत्कालपर्यन्तं क्व स्थितं भवता ?

यमदण्डेनोक्तम्—

हे देव, एकस्मिन्प्रदेशे कश्चित्कथकः कथां कथयति स्म । सा मया श्रुता । तेन कारणेन महती वेला लग्ना । राज्ञोक्तं—रे यमदंड, त्वया कथं स्वस्य मरणं विस्मर्यते । तां साश्चर्यां कथां कथय । तेनोक्तं—राजन्, दत्ता वधानेनाकर्णय । कथां निरूपयाम्यहम् ।

तद्यथा—

"दीहकालं वयं तत्थ, पादपे णिरुपद्दवे ।
मूलादो उच्छिया वल्ली जादं सरणदो भयं ॥"

एकस्मिन् वनमध्ये पंकादिदोषरहितं, सहस्रपत्रादि सरोजराजि-सहितं, मानससरोस्ति । तत्पाल्युपरि सरलोन्नतवृक्षोस्ति । तस्योपरि बहवो हंसास्तिष्ठन्ति । एकदा वृद्धहंसेन तरुमूले वल्ल्यंकुरो दृष्टः । ततः पुत्रपौत्रादिहितार्थं वृद्धेन भणितं— हे पुत्रपौत्राः, एनं वृक्ष-मूल उद्गच्छन्तं वल्ल्यंकुरं चञ्चुप्रहारैस्त्रोटयत । अन्यथा सर्वेषां मरणं भविष्यति । एतद्वचः श्रुत्वा तरुणहंसैर्हसितम् । अहो, वृद्धोयं मरणा-द्बिभेति । सर्वकालं जीवितुमिच्छति । कस्माद्भयमिह । निजपुत्र-पौत्राणामीदृग्विधं वचनं श्रुत्वा मनसि चिन्तितं तेन—अहो, एते मूर्खाः स्वहितोपदेशं न जानन्ति, परन्तु कोपमेव कुर्वन्ति ।

उक्तञ्च—

"प्रायः सम्प्रति कोपाय सन्मार्गस्योपदेशनम् ।
विलूननासिकस्येव विशुद्धादर्शदर्शनम् ॥"

पुनरपि वृद्धहंसेनाऽभाणि—मूर्खैः सहोदिते सति स्ववचनस्य वै-यर्थ्यं स्यात्, फले व्यक्तिर्भविष्यति । इति मनसि निश्चित्य तूष्णीं स्थितः । कालान्तरेण वल्ली वृक्षस्योपरि चटिता । एकदा वल्लीमा-लम्ब्य पारधी वृक्षस्योपरि चटितः । तत्र तेन पाशराशयो मंडिताः । ये हंसा वृक्षाश्रितास्ते रात्रौ पारिधिपाशैर्बद्धाः । तेषां कोलाहलं श्रुत्वा वृद्धहंसेन भणितं—हे पुत्राः, ममोपदेशं न कुर्वन्ति, इदानीं बुद्धि-रहितानां भवतां मरणमागतम् ।

तथा चोक्तम्—

"वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया धीर्गरीयसी ।
बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥"

तैरुक्तं—

भो तात, जीवनोपायश्चिन्तनीयः । तेनोक्तं—भो पुत्रा, नष्टे कार्ये क उपायः ।

तथा चोक्तम्—

"अज्ञानभावादथवा प्रमादा—दुपेक्षणादात्ययभाजि कार्ये ।
पुंसः प्रयासो विफलः समस्तो गतोदके कः खलु सेतुबन्धः ॥"

पुनरपि तैरुक्तं—भो तात, चित्तं स्वस्थं कृत्वा कश्चिज्जीवनोपायो दर्शनीयः ।

तथा चोक्तम्—

"चित्तायत्तं धातुबधं शरीरं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं यत्नतो रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवःसंभवन्ति ॥"

ततो वृद्धेनोक्तं—

भो पुत्राः, मृतकवत्तिष्ठन्तु । अन्यथा स पारधी गलमोटनं करिष्यति । प्रभातसमये स पारधी समागतः । पक्षिसमूहं मृतकं ज्ञात्वाऽधो भागे पातिताः सर्वे । तदनन्तरं वृहद्धंसेन भणितं—भो पुत्राः, सर्वे पलायनं कुर्वन्तु । एवं ज्ञात्वा सर्वैरप्युड्डीनं कृतम् । पश्चात् सर्वैरपि भणितमहो, वृद्धवचनोपदेशेन जीविता वयम् ।

तथा चोक्तम्—

"वृद्धवाक्यं सदा कृत्यं प्राज्ञैश्च गुणशालिभिः ।
पश्य हंसान्वने बद्धान्वृद्धवाक्येन मोचितान् ॥"

मूलतो विनष्टं कार्यमित्याभिप्रायं सूचितमपि न जानाति । कुतो दुराग्रहग्रहत्वात् ।

तथा चोक्तम्-

" दुराग्रहग्रहग्रस्ते विद्वान्पुंसि करोति किम् ।
कृष्णपाषाणखण्डस्य मार्दवाय न तोयदः ॥ "

इत्याख्यानं कथयित्वा यमदंडो निजमंदिरं गतः ।

इति प्रथमदिनकथा ।

द्वितीयदिने राज्ञः पार्श्वे आगतो यमदंडो राज्ञा पृष्टः-रे यमदंड, चौरो दृष्टस्त्वया ? तेनोक्तं-हे महाराज, न मया चौरो दृष्टः । राजोक्तम्-किमर्थं कालातिक्रमः कृतः ? तेनोक्तम्-

एकस्मिन् मार्गे एकेन कुंभकारेण कथा कथिता । सा मया श्रुता । अत एव कालातिक्रमो जातः । राज्ञोक्तं-सा कथा ममाग्रे निरूपणीया । यमदंडेनोक्तम्-तथास्तु, तद्यथा-अस्मिन्नगरे पाल्हण-नामा कुंभकारो निजविज्ञाननिपुणोस्ति । स प्रजापतिराजन्मतो नगरास-न्नमृत्खनिसकाशान्मृत्तिकामानीय विविधानि भाण्डानि निर्माय निर्माय विक्रीणाति । कालेन धनवान् जज्ञे । पश्चात्तेन भव्यं गृहं कारायितम् । पुत्रादिसंततिर्विवाहिता । सर्वेषां भिक्षुवराणां सत्यां भिक्षां ददाति, याचकानां भोजनादि च । क्रमेण स्वजातिमध्ये महत्तरो जातः । एकदा रासभीं सज्जीकृत्य मृत्तिकार्थं गतः । तस्य खानिं खनत-स्तटी निपतिता । तया कटिर्भग्ना ।

पश्चात्तेन पठितम्-

" जेण भिक्खं बलिं देमि जेण पोसेमि अप्पयं ।
तेण मे कडिया भग्गा जादं सरणदो भयं ॥ "

एवं सूचिताभिप्रायं राजा न जानाति । इत्याख्यानं कथयित्वा यमदंडो निजगृहं प्रति गतः ।

इतिद्वितीयादिनकथा ।

तृतीयदिने तथैव राज्ञः पार्श्वे आगतो यमदंडः । राज्ञा पृष्टः– रे यमदंड, चौरो दृष्टस्त्वया? तेनोक्तम्–हे देव, न कुत्रापि चौरो दृष्टः । राज्ञोक्तम्–कथं महती वेला लग्ना ? तेनोक्तमेकस्मिन् मार्गे एकेन कथा कथिता । सा मया श्रुता । अत एव महती वेला लग्ना । राज्ञोक्तं सा कथा ममाग्रे निरूपणीया । यमदंडेनोक्तं–तथास्तु, तद्यथा–पांचालदेशे वरशक्तिनगरे राजा सुधर्मः परमधार्मिको जैनमतानुसारी । तस्य भार्या जिनमतिः । सापि तथा । राजमंत्री जयदेवः श्रावकमतानुसारी । तस्य भार्या विजया । सापि तथैव ।

एवं राजा महता सुखेन राज्यं करोति । एकदा स्थानास्थितस्य राज्ञोऽग्रे केनचिन्निरूपितम्–हे देव, महाबलो वैरी महतीं पीडां प्रजानां करोति । राज्ञोक्तं–तावद्गर्जं करोतु यावन्नाहं व्रजामि । पुनरपि राज्ञोक्तं–शस्त्रबंधं न कस्यापि करोमि । यस्तु समरे तिष्ठति, निजमंडलस्य कंटकं भवति सोऽवश्यं राज्ञा निराकरणीयः ।

तथा चोक्तम्–

" यः शस्त्रवृत्तिः समरे रिपुः स्यात्–
यः कंटको वा निजमंडलस्य ।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति
न दीनकानीनशुभाशयेषु ॥ "

तथा च दुष्टनिग्रहः शिष्टप्रतिपालनो हि राज्ञो धर्मः, न तु मुंडनं, जटाधारणं च । एवं विचार्य निजशत्रुमहाबलस्योपरि गतो राजा । समरे तं जित्वा, सर्वस्वं गृहीत्वा महानन्देन निजनगरमागतो राजा । नगरप्रवेशसमये नगरप्रतोली पतिता । तां दृष्ट्वा "अपशकुन"—मिति-ज्ञात्वा व्याघुट्य नगरबाह्ये स्थितो राजा । मंत्रिणा झटिति प्रतोली कारिता । द्वितीयदिनेपि तथैव पतिता । एवं तृतीयदिने पतिता ।

राजा मंत्रिणं पृष्टवान्—भो मंत्रिन्, कथं प्रतोली स्थिरा भवति ? मंत्रिणोक्तं— हे राजन्, स्वहस्तेन मनुष्यं मारयित्वा तद्रक्तेन प्रतोली सेचनीया । पश्चात् प्रतोली स्थिरा भवति । नान्यथा । कुलाचार्यमत-मिदम् । एतद्वचनं श्रुत्वा राजा ब्रूते—यस्मिन्नगरे जीववधो विधीयते, ममानेन नगरेण प्रयोजनं नास्ति । यत्राहं तत्र नगरम् । सुवर्णेन किं क्रियते येन कर्णस्त्रुटचति । पुनरपि राज्ञोक्तं—यः स्वस्य हितं वाञ्छति तेन हिंसा न कर्तव्या ।

तथा चोक्तम्—

"न कर्तव्या स्वयं हिंसा प्रवृत्तां च निवारयेत् ।
जीवितं बलमारोग्यं शश्वद्वाञ्छन्महीपतिः ॥"

तथा च—

"यो दद्यात् कांचनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुंधराम् ।
एकस्य जीवितं दद्यात्फलेन न समं भवेत् ॥"

ततो महाजनेनागत्य भणितं—भो स्वामिन्, मया सर्वमपि क्रियते, भवन्तस्तूष्णीं तिष्ठन्तु । राज्ञोक्तं—प्रजाः पापं कुर्वन्ति यदा, तदा मम षडंशपापं भवति, पुण्यमपि तथा ।

तथा चोक्तम्—

" यथैव पुण्यस्य सुकर्मभाजां
षडंशभागी नृपतिः सुवृत्तः ।
तथैव पापस्य कुकर्मभाजां
षडंशभागी नृपतिः कुवृत्तः ॥ "

पुनरपि महाजनेनोक्तं—पापभागोऽस्माकं, पुण्यभागो भवतामिति तूष्णीं तिष्ठन्तु । राज्ञोक्तं—तथास्तु । ततो महाजनेन द्रव्यस्योद्ग्राहणिका कृता । तेन द्रव्येण कांचनमयः पुरुषो घटापितः । नानाप्रकारै रत्नैर्विभूषितः । पश्चात् पुरुषं शकटे चटाप्य नगरमध्ये घोषणं दापितम् । यदि कोपि स्वपुत्रं दत्वा माता स्वहस्तेन विषं प्रयच्छति, पिता स्वहस्तेन गलमोटनं करोति तर्हि तस्य कांचनमयः पुरुषः कोटिद्रव्यं च दीयते । तत्रैव नगरे निष्करुणो महादरिद्री वरदत्तो नाम ब्राह्मणोस्ति । तस्य सप्त पुत्राः सन्ति । तस्य वरदत्तस्य भार्या निष्करुणा नाम्नी । तेन द्विजेन स्वभार्या पृष्टा—हे प्रिये, लघुपुत्रमिन्द्रनामानं दत्वेदं द्रव्यं गृह्यते । आवयोः कुशले सति अन्येपि पुत्रा बहवो भविष्यन्ति । तया निष्करुण्या " तथास्तु " इत्येवं भणितम् । ततो वरदत्तेन घोषणं धृत्वा कथितम्—इदं द्रव्यं गृहीत्वा पुत्रो दीयते मया ।

महाजनेनोक्तम्—

" माता यदि विषं दद्यात्पिता विक्रीयते सुतम् ।
राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिवेदना ॥ "

यदि मात्रा स्वहस्तेन पुत्रस्य विषं दीयते, पित्रा स्वहस्तेन पुत्रस्य

गलमोटनं क्रियते चेत् तर्हि द्रव्यमिदं दीयते समस्तवस्तु च । नान्यथा । वरदत्तेनोक्तं—तथास्तु । तत इन्द्रदत्तेन स्वमनस्युक्तम्—अहो, स्वार्थ एव संसारे कोपि कस्यापि वल्लभो नास्ति

उक्तञ्च—

"वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः
पुष्पं गन्धगतं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः ।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका दुष्टं नृपं सेवकाः
सर्वः कार्यवशाज्जनोभिरमते कः कस्य को वल्लभः ॥"

अहो वस्तुतो माहात्म्यं पश्य, धननिमित्तमकर्तव्यमपि क्रियते ।

तथा चोक्तम्—

"बुभुक्षितः किं न करोति पापं
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ।
आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्य
न गंगदत्तः पुनरेति कूपम् ॥"

इत्यभिधानात् । ततो द्रव्यं गृहीत्वा पुत्रो महाजनस्य समर्पितः वरदत्तेन ।

ततः सालङ्कारं मातृपित्रादिलोकसमूहवेष्टितं हसमानं प्रतोलीसम्मुखागतमिन्द्रदत्तं दृष्ट्वा राज्ञा भणितं—रे माणवक, किमर्थं हससि । मरणेन बिभेषि ?

तेनोक्तं—हे देव, यावद्भयं नागच्छति तावद्भेतव्यमागते तु सोढव्यमिति ।

तथा चोक्तम्—

" तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकितम् ॥"

पुनरपीन्द्रदत्तेनोक्तं—भो राजन्, पित्रा संतापितः शिशुर्मातृशरणं गच्छति, राज्ञा संतापितः शिशुर्महाजनशरणं गच्छति, यत्र माता विषं प्रयच्छति पिता च गलमोटनं करोति। महाजनो द्रव्यं दत्त्वा गृह्णाति, राजा प्रेरको भवति तत्र कस्याग्रे निरूप्यते ।

तथा चोक्तम्—

" मातृपित्रा सुतो दत्तो राजा च शस्त्रघातकः ।
देवता बलिमिच्छन्ति आक्रोशः किं करिष्यति ॥"

अत एव धीरत्वेन मरणमस्तु । एतद्वचनं श्रुत्वा राज्ञोक्तम्—अनया प्रतोल्या, अनेन नगरेणापि च मम किमपि प्रयोजनं नास्ति । यत्राहं तत्र नगरमिति। एवं सधैर्यं राजानं, माणवकसाहसं च दृष्ट्वा नगरदेवताभिः प्रतोली निर्मिता, पञ्चाश्चर्येण माणवकः प्रपूजितश्च ।

तथा चोक्तम्—

" उद्यमं साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमम् ।
षडेते यस्य विद्यन्ते तस्य देवोपि शंक्यते ॥"

एवं सूचिताभिप्रायं राजा न जानाति। इत्याख्यानं निरूपयित्वा निजगृहं गतो यमदंडः ।

इति तृतीयदिनकथा ।

चतुर्थदिने आस्थानस्थितेन राज्ञा तथैव यमदंडः पृष्टः—रे यमदंड, त्वया चौरो दृष्टः ? तेनोक्तं—न कुत्रापि दृष्टो मया । राज्ञोक्तं—किमर्थं महती वेला लग्ना ? तेनोक्तम्—एकस्मिन्पथि एकेन हरिणीकथा कथिता।

सा मया श्रुता। अत एवं महती वेला लग्ना। राज्ञोक्तं—सा कथा ममाग्रे निरूपणीया। तेनोक्तं—तथास्तु। तद्यथा—एकस्मिन्नुद्यानवने तडागतटे काचिद् हरिणी निवसति स्म। सा स्वबालकैः सह वनस्थलीषु तृणादिभक्षणं कृत्वा तडागेषु पानीयं पीत्वा सुखेन कालं गमयति। तदासन्ननगरस्यारिमर्दनस्य नृपस्य बहवः पुत्राः सन्ति। केनापि व्याधेनैकं मृगशावकं जीर्णवनतो गृहीत्वा एकस्मै कुमाराय समर्पितः। अन्ये कुमारास्तं दृष्ट्वा पश्चात्तैरेकत्र संभूय राज्ञोऽग्रे कथितम्—अस्माकं मृगशावान् समर्पय। ततो राज्ञा व्याधानाकार्य पृष्टं—भो भो व्याधाः, कस्मिन् वने मृगशावाः प्राप्यन्ते। केनचित्कथितं—हे देव, जीर्णोद्याने प्राप्यन्ते। तच्छ्रुत्वा राजा स्वयमेव व्याधवेषं विधाय तत्र गतः। तद्वनं विषमं दृष्ट्वा मृगपोतग्रहणार्थं व्याधेभ्यः कथित,—मेकत्र ज्वलन,—मेकत्र पाशा,—नेकत्र गर्तखननं कुर्वन्तु। इति दृष्ट्वैकेन पंडितेनोक्तम्—

"सव्वजलं विससहिदं सव्वारण्णं च कूटसंछण्णं।
राया य सयं वाहो तत्थ सिदाणं कुदो वासो।"

तथा च—

"रज्वा दिशः प्रवितताः सलिलं विषेण
पाशैर्मही हुतभुजाकुलितं वनान्तम्।
व्याधाः पदान्यनुसरन्ति गृहीतचापाः
कं देशमाश्रयतु डिंभवती कुरंगी॥"

एवं सूचिताभिप्रायं राजा न जानाति। इत्याख्यानं निरूपयित्वा निजमंदिरं गतो यमदंडः।

इति चतुर्थदिनकथा।

पञ्चमदिन आस्थानस्थितेन राज्ञा तथैव पृष्टः—रे यमदंड, चौरो दृष्टः? तेनोक्तं—हे देव, न कुत्रापि दृष्टो मया। राज्ञोक्तं—किमर्थं बृहद्वेला लग्ना? तेनोक्तं—ग्रामाद्बहिरेकेन कथा कथिता। सा मया श्रुता। अत एव महती वेला लग्ना। राज्ञोक्तं—सा कथा ममाग्रे निरूपणीया। तेनोक्तं—तथास्तु। तद्यथा—नेपालदेशे पाटलीपुरी। राजा वसुंधरः। राज्ञी वसुमतिः। स राजा कवित्वविषये बलीयान्। राजमंत्री भारतीभूषणः। भार्या देविका। सोपि मंत्री शीघ्रकवित्वेन लोकमध्ये प्रसिद्धः। एकदाऽऽस्थानमध्ये राजकवित्वं मंत्रिणा बहुधा दूषितं। कुपितेन राज्ञा मंत्रिणं बन्धयित्वा गंगाप्रवाहे निक्षिप्तः दैववशाद्वालुकोपरि पतितः।

तथा चोक्तम्—

"वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये
महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि॥
भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति तन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य॥"

मंत्रिणोक्तं—कविं कविर्न सहत एतत् सत्यम्।

तथा चोक्तम्—

"शिष्टाय दुष्टो विरताय कामी
निसर्गतो जागरकाय चौरः।

धर्मार्थिने कुप्यति पापवृत्तिः
शूराय भीरुः कवये कविश्च ॥ "

पुनरपि चोक्तम्--

" सूपकारं कविं वैद्यं विप्रो विप्रं नटो नटम् ।
राजा राजानमालोक्य श्वावद्घुरघुरायते ॥ "

जलमध्यस्थितेन मंत्रिणा पद्यमेकमभाणि---

" जेण बीयाइ रोहंति जेण तप्पंति पायपा ।
तस्स मज्झे मरिस्सामि जादं सरणओ भयं ॥ "

अधोवहमानं जलं दृष्ट्वैकं पद्यमन्योक्तं पुनरपि भणितम्---

" शैत्यं नाम गुणस्तवैव तदनु स्वाभाविकी स्वच्छता
किं ब्रूमः शुचितां भवन्ति शुचयः संगेन यस्यापरे ।
किं चान्यत्पदमस्ति ते स्तुतिपदं त्वं जीवितं जीविनां
त्वं चेन्नीचपथेन गच्छसि पयः ! कस्त्वां निरोद्धुं क्षमः ॥"

एतद्वचनं श्रुत्वा ततो राज्ञा मनसि चिन्तितमहो, विरूपं कृतं मया । आश्रितानां गुणदोषचिंता न करणीया सत्पुरुषेण ।

तथा चोक्तम्--

" चन्द्रः क्षयी प्रकृतिवक्रतनुर्जडात्मा
दोषाकरः स्फुरति मित्रविपत्तिकाले ।
मूर्ध्ना तथापि विधृतः परमेश्वरेण
न ह्याश्रितेषु महतां गुणदोषचिन्ता ॥ "

एवं विचार्य स मंत्री जलान्निःसारितः पूजितो मंत्रिपदे स्थापितश्च । इत्याख्यानं निरूपयित्वा निजगृहं गतो यमदंडः ।

इति पञ्चमदिनकथा ।

षष्ठदिने तथैव राज्ञा पृष्टः—रे यमदंड, चौरो दृष्टः ? तेनोक्तं—हे देव, न कुत्रापि दृष्टः। राज्ञोक्तं—किमर्थं वेला लग्ना ? तेनोक्त—मापण-मध्य एकेन कथा कथिता। सा मया श्रुता। अत एव महती वेला लग्ना। राज्ञोक्तं—सा ममाग्रे निरूपणीया। तेनोक्तं—तथास्तु।

तद्यथा—

कुरुजांगलदेशे पाटलीपुरनगरे राजा सुभद्रः। राज्ञी सुभद्रा। एकदा राज्ञा वनमेकं विनोदेन कारितम्। तदपूर्वं संजातं बहुभिर्वृक्षै-र्नानाप्रकारैः संभृतम्। तन्मध्ये सरित् स्वच्छजलेन परिपूर्णा। तस्यो-परिहंससारसचक्रवाकाः क्रीडंति। परिमलेन भृंगा गुञ्जंति। ईदृशं तद्वनं। तत्र वने तालवृक्षसुरां पीत्वोन्मत्ता मर्कटा वनस्योपद्रवं कुर्वन्ति।

तथा चोक्तम्।

" कपिरपि च कापिशयेन परिणीतो वृश्चिकेन संदष्टः।
सोपि पिशाचगृहीतः किं ब्रूते चेष्टितं तस्य॥ "

वनपालेन महावने मर्कटोपद्रवं दृष्ट्वा राज्ञोग्रे निरूपितं—हे राजन्, मर्कटैर्वनं विध्वस्तं। एतद्वनपालकवचनं श्रुत्वा राज्ञा वनरक्षणार्थं स्वमंदिरस्थिता विनोदवृद्धवानराः प्रस्थापिताः। वनपालेन मनस्युक्तं—मूलविनष्टं कार्यमिति वनरक्षणे मर्कटाः। वनपालकेन भणितं स्वम-नसि—चक्षुर्भ्यां विनाऽन्यायमार्गान्धकारपतने कोपराधः।

तथा चोक्तम्—

एकं हि चक्षुरमलं सहजो विवेक-
स्तद्वद्भिरेव गमनं सहजं द्वितीयम्।

पुंसो न यस्य तदिह द्वयमस्य सोन्धः
तस्यापमार्गचलने खलु कोऽपराधः ॥"

एवं सूचिताभिप्रायं राजा न जानाति । इत्याख्यानं निरूपयित्वा निजमंदिरं गतो यमदंडः ।

इति षष्ठदिनकथा ।

सप्तमदिन आस्थानस्थितेन राज्ञा तथैव पृष्टः—रे यमदंड, चौरो दृष्टः ? तेनोक्तं—हे देव, न कुत्रापि दृष्टः । राज्ञोक्तं—किमर्थं नहीं वेला लग्ना ? तेनोक्तं—केनचिद्वनपालेन चत्वरस्थाने कथा कथिता । सा मया श्रुता । अत एव वेला लग्ना । राज्ञोक्तं—सा ममाग्रे निरूपणीया । तेनोक्तं—तथास्तु, तद्यथा—अवन्तिविषय उज्जयिनी नाम नगर्यस्ति । तत्र सुभद्रनामार्थवाहोस्ति । तस्य द्वे भार्ये । एकदा तेन निजमातृहस्ते भार्याद्वयं समर्प्य व्यवहारार्थं सुमुहूर्ते परिवारेण सह नगरीबाह्ये प्रस्थानं कृतं । इतस्तस्य माता दुश्चारिणी केनचिज्जारेण सह गृहवाटिकामध्ये स्थिता । रात्रौ कार्यवशात् सुभद्रः स्वगृहमागतः । तेनागत्य भणितं—भो मातः, कपाटमुद्घाटय । पुत्रवचनं श्रुत्वा कपाटमुद्घाट्योभौ पलाय्य भीतातुरौ गृहकोणे प्रविष्टौ । गृहमध्ये प्रविशता तेन निजमातृवस्त्रमेरण्डवृक्षोपरि दृष्टम् । ततस्तेन मनस्युक्तमहो, इयं सप्ततिवर्षिका तथापि कामसेवां न त्यजति । अहो, वैचित्र्यं मकरध्वजस्य माहात्म्यम् । यतो मृतामपि मारयति ।

तथा चोक्तम्—

" कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो
व्रणी पूयोद्गीर्णः कृमिकुलशतैरावृततनुः ।
क्षुधा क्षामः क्षुण्णः पिठरककपालार्पितगलः
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥ "

अहो 'स्त्रीचरित्रं न केनापि ज्ञातुं शक्यते' लोकोक्तिरियं सत्या ।
तथा चोक्तम्—

" आलिङ्गत्यन्यमन्यं रमयति वचसा वीक्षते चान्यमन्यं
रोदित्यन्यस्य हेतोः कलयति शपथैरन्यमन्यं वृणीते ।
शेते चान्येन सार्द्धं शयनमुपगता चिन्तयत्यन्यमन्यं
स्त्री वामेयं प्रसिद्धा जगति बहुमता केन धृष्टेन सृष्टा ॥ "

यत्रेयं वार्धिक एवं करोति तत्र तरुण्योर्मम भार्ययोः का वार्ता ।
तथा चोक्तम्—

" वायुना यत्र नीयन्ते कुञ्जराः षष्ठिहायनाः ।
गावस्तत्र न गण्यन्ते मशकेषु च का कथा ॥ "

एवं मनसि विचार्य भार्ययोः शिक्षां प्रयच्छति ।
तद्यथा—

" मूलविणट्ठा वल्ली जं जाणइ तं करेहु सुण्णाओ ।
अंबाए पंगुरणं दिट्ठं एरंडमूलम्मि ॥ "

एवं सूचितमभिप्रायं, तदपि राजा न जानाति । इत्याख्यानं निरूपयित्वा निजगृहं गतो यमदंडः ।

इति सप्तमदिनकथा ।

अष्टमदिने आस्थानोपविष्टेन क्रोधाग्निदेदीप्यमानेन राज्ञा यमदंडः पृष्टः—रे यमदंड, चौरो दृष्टः ? तेनोक्तं—हे देव, न कुत्रापि दृष्टः । ततो राज्ञा समस्तमहाजनमाकार्य भणितम्—अहो, मम दोषो नास्ति ।

अनेन धूर्तेन सप्त दिनेषु प्रतारितोऽहं । इदानीं चौरं वस्तु चासौ न प्रयच्छति चेदेनं शतखंडं कृत्वा दिग्बलिं दास्यामि । एतद्राज्ञो वचनं श्रुत्वा निदाने[1] तेन यमदंडेन यज्ञोपवीतपादुकामुद्रादिकं गृहादानीय सभाग्रे निधाय भणितं—भो न्यायवेदिनो महाजनाः, इदं वस्तु, एते चौरा यथा भवतां मनसि रोचते तथा कुर्वन्तु । इत्येवं निरूप्य पदमेकमभाणि ।

तद्यथा—

" जत्थ राया सयं चोरो समंतो सपुरोहितो ।
वणं वज्जह सव्वेपि जादं सरणदो भयं ॥ "

पुनरपि यमदंडेनोक्तं—यद्यविचार्य नरपतिं भवन्तो न त्यजन्ति तर्हि पुण्येन दुराकृता भवन्त इत्येवं ज्ञातव्यं भवद्भिः ।

तथा चोक्तम्—

" मित्रं शत्रुगतं कलत्रमसतीं पुत्रं कुलध्वंसिनं
मूर्खं मंत्रिणमुत्सुकं नरपतिं वैद्यं प्रसादास्पदम् ।
देवं रागयुतं गुरुं विषयिणं धर्मं दयावर्जितं
यो वा न त्यजति प्रमोहवशतः स त्यजते श्रेयसा ॥ "

ततो महाजनेन पादुकाभ्यां राजा चौर इति ज्ञातं, मुद्रिकया मंत्री चौर इति ज्ञातं, यज्ञोपवीतेन पुरोहितश्चौर इति ज्ञातम् । ततः सर्वैः सह पर्यालोच्य पश्चात् राजानं निर्घाट्य राजपुत्रो राजपदे स्थापितः । मंत्रिणं निर्घाट्य मंत्रिपुत्रो मंत्रिपदे स्थापितः । पुरोहितं निर्घाट्य पुरोहितपुत्रः पुरोहितपदे

१ अवसाने ।

स्थापितः । त्रयाणां निर्गमनसमये लोकैर्भणितम्—अहो, 'विनाश काले शरीरस्था बुद्धिरपि गच्छती'—ति लोकोक्तिः सत्येयम् ।

तथोक्तम्—

" रामो हेममृगं नवेत्ति नहुषो याने युनक्ति द्विजा—
न्विप्रस्यापि सवत्सधेनुहरणे जातामतिश्चार्जुनेः ।
द्यूते भ्रातृचतुष्टयं च महिषीं धर्मात्मजो दत्तवा—
न्प्रायः सत्पुरुषो विनाशसमये बुद्ध्या परित्यज्यते ॥ "

तथा च—

" (?) रावणतणेकपाले, अठोतरसो बुद्धि वसई ।
लंकाभंजनकाले, इकइ बुद्धि न संपडी ॥ "

निर्गमनसमये राज्ञोक्तमहो, मया चिन्तितं—यमदंडं मारयित्वानेनोपायेन सुखेन राज्यं क्रियते । अयं विपाकः कर्मणो मम मध्ये समायातः । एवं सर्ववृत्तान्तं सुबुद्धिमंत्रिणोदितोदयराजानं प्रति निरूपितम् । अत एवाहो देव, केनापि सह विरोधो न कर्तव्यः । विरोधे सति स्वस्य नाश एव नान्यत् ।

तथा चोक्तम्—

" पराभवो न कर्तव्यो यादृशे तादृशे जने ।
तेन टिट्टिभमात्रेण समुद्रो व्याकुलीकृतः ॥ "

एतत्सर्वमाख्यानं श्रुत्वोदितोदयेन राज्ञोक्तं—भो सुबुद्धे, ततो निर्गमनसमये राज्ञा तौ प्रति भणितम्—" अहो मया यमदंडमनेनोपायेन मारयित्वा सुखेन राज्यं क्रियते " एवं मनसि चिन्तितम् । अयं कर्मविपाको मध्ये समागमिष्यतीति को जानीते ।

तथा चोक्तम्—

" निदाघे दाघार्तः प्रचुरतरतृष्णा तरलितः
सरः पूर्णं दृष्ट्वा त्वरितमुपयातः करिवरः।
तथा पंके मग्नस्तटनिकटवर्तिन्यपि यथा
न नीरं नो तीरं द्वयमपि विनष्टं विधिवशात् ॥ ".

यत्त्वया कथितं तत्सर्वमपि सत्यं वने गमने विरुद्धमवगते सावि ममापि सुयोधनावस्था भविष्यत्येवात्र संदेहाभावः ।

सुबुद्धिमंत्रिणोक्तं–हे राजन्, मंत्र्यभावे राज्यनाश एव ।

तथा चोक्तम्–

" एकं विषरसो हंति शस्त्रेणैकश्च हन्यते ।
सबन्धुराष्ट्रं राजानं हन्त्येको मंत्रिविप्लवः ॥ ".

राज्ञोक्तं–योऽनर्थकार्यं निवारयति स परमो हि मंत्री ।

सुबुद्धिमंत्रिणोक्तं–भो राजन्, मंत्रिणा स्वामिहितं कार्यं कर्तव्यम् । राज्ञोक्तं–भो मंत्रिन्, त्वमेव सत्पुरुषो लोके त्वयि सति मदीयाऽपकीर्तिर्दुर्गतिश्च गता ।

तथा चोक्तम्–

" (?) गुण जाई निगुणस्स गोठइ, धन जाई पापिणीदिट्ठी ।
तपं जाइ तरुणिनैसंगि मलपरा जाइ नीचनैसंगि ॥ "

एवं नानाप्रकारैर्मंत्रिणं स्तुत्वा राज्ञा कथितं–भो मंत्रिन्, रात्रिनिर्गमनार्थं, विनोदार्थं च नगरभ्रमणं क्रियते, तत्र किंचिदाश्चर्यं दृश्यते ।

तथा चोक्तम्—

"धर्मशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
इतरेषां मनुष्याणां, निद्रया कलहेन च।"

मन्त्रिणोक्तम्—एवमस्तु। एवं पर्यालोच्यालक्ष्यभूतौ द्वौ चलितौ नगराभ्यन्तर आश्चर्यमवलोकयतः।

एकस्मिन् प्रदेशे छायापुरुषो दृष्टः। राज्ञोक्तं—भो मंत्रिन्, कोयं? तेनोक्तं—हे देव, अञ्जनगुटिकाप्रसिद्धः सुवर्णखुरनामा चौरोयम्। राज्ञोक्तमसौ क गच्छतीति अनेन सह गन्तव्यम्। एवं पर्यालोच्य चौरपृष्ठतो लग्नौ द्वौ। स चौरः क्रमेणार्हद्दासश्रेष्ठि-गृहप्राकारस्योपरि वटवृक्षस्योपरि अलक्ष्यीभूत्वा स्थितः। राजा मंत्री चालक्ष्यौ भूत्वा तद्वृक्षमूले स्थितौ। अस्मिन् प्रस्ताव अष्टो-पवासिनाऽर्हद्दासश्रेष्ठिना स्वकीया अष्टौ भार्याः प्रति भणितं—भो भार्याः, अद्य नगरमध्ये पुरुषान्विहाय स्त्रियः सर्वा अपि राजा-देशेन वनक्रीडार्थं गता भवत्योपि व्रजन्तु। अहं धर्मध्यानेन गृहे तिष्ठामि। अन्यथाऽऽज्ञाभंगेन सर्पवद्विषमो राजा सर्वमनिष्टं करिष्यति।

तथा चोक्तम्—

"मणिमंत्रौषधिस्वस्थः सर्पदृष्टो विलोकितः।
नृपेन्द्रदृष्टिविषैर्दृष्टो न दृष्टः पुनरुत्थितः॥"

ताभिरुक्तं—भो स्वामिन्, अस्माकमष्टोपवासा अद्य संजाताः। उपवासदिने धर्मं विहाय वनक्रीडार्थं कथं गम्यते। इत्येवं भवन्तो विचारयन्तु। ततस्तेन राजादेशेन किं प्रयोजनं यदस्माभिरुपार्जितं तद्भविष्यत्येव, न वयं वने गच्छामः।

तथा चोक्तम्—

" मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुं जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकलाः पुण्याः कलाः शिक्षतु ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं
नाभव्यं भवतीह कर्मवशतो भावस्य नाशः कुतः ॥ "

श्रेष्ठिनोक्तं—भवतीभिर्यदुक्तं तत्सत्यमेव । उपवासादिने जिनागमादिश्रवणं कर्तव्यम् । तदेव कर्मक्षयस्य कारणं भवति, न तु क्रीडार्थं वनगमनम् ।

तथा चोक्तम्—

" एकाग्रचित्तस्य दृढव्रतस्य
पञ्चेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ।
अध्यात्मयोगे गतमानसस्य
मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य ॥ "

ताभिरुक्तं—हे देव, अस्माभिस्त्वया च स्वगृहमध्यस्थे सहस्रकूटचैत्यालये जागरणं कर्तव्यम् । श्रेष्ठिना भणितं—तथास्तु । ततोऽनेकमंगलद्रव्यसहितः श्रेष्ठी, ताश्च सहस्रकूटचैत्यालयं गतास्तत्र मंगलधवलशब्दादिना भगवतः परमेश्वरस्य पूजां कृत्वा धर्मानन्दविनोदेन परस्परं स्थिताः । ततो भार्याभिर्भणितं—भो श्रेष्ठिन्, तव दृढतरसम्यक्त्वं कथं जातम् ? तन्निरूपणीयम् । श्रेष्ठिना भणितं—पूर्वं युष्माभिर्निरूपणीयं सम्यक्त्वकारणम् । ताभिरुक्तं—भो श्रेष्ठिन्, त्वमस्माकं पूज्यः त्वया पूर्वं निरूपणीयं पश्चादस्माभिर्निरूप्यते ।

तथा चोक्तम्—

" गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ "

अत्रान्तरेऽर्हद्दासश्रेष्ठिनो या कुंदलता लघ्वी भार्याऽस्ति तया भणितं—हे स्वामिन्, किमर्थमेवंविधं कौमुद्युत्सवं सर्वजनानन्दजननं मुक्त्वा देवपूजातपश्चरणादिकं विधीयते युष्माभिः सकलत्रैः? श्रेष्ठिनाऽभाणि—हे भद्रे, यत्पुण्यं विधीयतेऽस्माभिस्तत्परलोकार्थमेव । तया जल्पितं—हे स्वामिन्, परलोकं दृष्ट्वा कोप्यागतः? वेह लोके केन धर्मफलं दृष्टम्? यदीह लोकपरलोकाश्रितं फलं दृष्टं भवति तदा युक्तं देवपूजादिकं, अन्यथा निरर्थकमेव तत् ।

श्रेष्ठिना भणितं—परलोकफलं दूरेस्तु, मयाप्रत्यक्षं धर्मफलं दृष्टं । तत् त्वं शृणु । तयोक्तं—हे स्वामिन्, कथय श्रेष्ठिना भणितं—तथास्तु ।

ततः श्रेष्ठी निजसम्यक्त्वप्रापणकथां कथयति । तद्यथा—अत्रैवोत्तर-मथुरायां राजा पद्मोदयः । तस्य राज्ञी यशोमतिः । तयोः पुत्र उदितोदयः । स उदितोदयः साम्प्रतं राजाधिराजो वर्तते । अत्रैव राजमंत्री संभिन्नमतिः । भार्या सुप्रभा । तयोः पुत्रः सुबुद्धिः सम्प्रति मंत्रीभूत्वा वर्तते ।

अत्रैवाञ्जनगुटिकादिविद्याप्रसिद्धो रौप्यखुरनामा चौरः । तस्य भार्या रूपखुरा । तयोः पुत्रः सुवर्णखुरः सम्प्रति चौरो वर्तते । अत्रैव राजश्रेष्ठी जिनदत्तो । भार्या जिनमतिः । तयोः पुत्रोर्हद्दासोहं संप्रति श्रेष्ठी भूत्वा तिष्ठामि

एतत्सर्वं चौरेण राज्ञा मन्त्रिणा श्रुतंचौरेण मनस्युक्तमहो,मम चौरव्यापारो नित्यमस्ति । अद्यासौ किं किं निरूपयतीति श्रूयते । राज्ञा मंत्रिणा

च भणितमेतत्कौतुकमावाभ्यां श्रूयते। पुनः श्रेष्ठी कथयति—भो भार्याः, दृष्टा श्रुताऽनुभूता या कथा मया कथ्यते तां दत्तावधानेनाकर्णयन्तु। ताभिरुक्तं—'महाप्रसाद' इति। श्रेष्ठी निरूपयति—स रूपखुरनामा चौरः ससन्यसनी भूत्वैकस्मिन्दिने द्यूतक्रीडां कृत्वा जितं द्रव्यं याचकानां दत्वा क्षुधाक्रान्तो निजगृहं प्रति प्रहरद्वये भोजनार्थं चलितः। राजमन्दिरसमीपतो गच्छता चौरेण रसवत्याः सुगन्धपरिमलं नासिकायामाघ्राय मनसि भणितमहो, मम किमपि गहनं नास्ति। ईदृग्विधा रसवती अञ्जनबलेन किमर्थं न भुज्यते। इत्येवं मनसि विचार्य नयनयोरञ्जनं चटाप्य राजमन्दिरं प्रविश्य राज्ञा सह भोजनं कृत्वा गतः। एवं प्रतिदिनं राज्ञा सह भोजनं कृत्वा स्वस्थानं गच्छति। क्रमेण स राजा दुर्बलो जातः। एकदा मंत्रिणा राजशरीरं दुर्बलं दृष्ट्वा चिन्तितमहो, अस्य किमन्नं नास्ति? अन्यथा कथं दुर्बलो भवतीति।

तथा चोक्तम्—

" अन्नेन गात्रं नयनेन वक्त्रं
न्यायेन राज्यं लवणेन भोज्यम्।
धर्मेण हीनं बत जीवितव्यं
न राजते चन्द्रमसा निशीथम्॥ "

ततो मंत्रिणा राजा पृष्टः—भो राजन्, तव शरीरे किमर्थं दौर्बल्यं जातम्? तत् कारणं कथय। यदि कापि चिन्ता विद्यते सापि निरूपणीया। राज्ञोक्तं—भो मंत्रिन्, त्वयि विद्यमाने सति मम कापि चिन्ता नास्ति। एतदाश्चर्यं यद्भोजनं द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं पञ्चगुणं कृत्वापि मम तृप्तिर्नास्ति परन्त्वेवं जानामि यन्मया

सह कश्चिद्भोजनं करोति, तेन कारणेनोदराग्निर्न प्रशाम्यति । एतद्वचनं श्रुत्वा मंत्री चिन्तयति—अञ्जनसिद्धः कोपि राज्ञा सह भोजनं करोति, तेन कारणेन राजा दुर्बलो जातः । एवं ज्ञात्वा मंत्रिणोपायो रचितः । राज्ञो भोजनकाले रसवतीसमीपे सर्वत्रार्ककुसुमानि क्षिप्तानि । चतुःकोणे रौद्रधूपधूमपरिपूर्णघटानां मुखं बद्ध्वा घटा निक्षिप्ताः ।

एकत्र प्रच्छन्नपुरुषमल्लाश्च निक्षिप्ताः । एवं कृत्वा यावत्तिष्ठति, तावच्चौरः समागतः भोजनगृहे प्रविष्टश्च । अर्ककलिकोपरिपादसंत्रटनचञ्चूर्यमाणध्वनिना चौरमागतं ज्ञात्वा द्वारे गाढतरामर्गलां दत्वा, तीव्रधूपपरिपूर्णघटमुखबद्धवस्त्राणि स्फेटितानि । ततो धूमव्याकुललोचनाश्रुपातेन नयनस्थमञ्जनं गतम् । भटैः स प्रत्यक्षो दृष्टः । बद्ध्वा राज्ञोग्रे नीतः । एतस्मिन् प्रस्तावे चौरेण मनस्युक्त महो, भोजनं गृहं च द्वयमपि विधिवशाद्गतम् ।

तथा चोक्तम्—

" निदाघे दाघार्तस्तरलतरतृष्णातरलितः
सरः पूर्णं दृष्ट्वा त्वरितमुपयातः करिवरः ।
तथा पंके मग्नस्तटनिकटवर्तिन्यपि यथा
न नीरं नो तीरं द्वयमपि विनष्टं विधिवशात् ॥ "

पुनरपि चौरेण मनसि भणितं—मयाऽन्यच्चिन्तितं विधिनाऽन्यथा कृतम् ।

तथा चोक्तम्—

" अन्यथा चिन्तितं कार्यं दैवेन कृतमन्यथा ।
राजकन्याप्रसादेन भिक्षुको व्याघ्रभक्षितः ॥ "

पुनश्च –

" रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।
एवं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥ "

राज्ञोक्तमहो भटाः, एनं शूलोपरि स्थापयन्तु । अत्रावसरे कैश्चित्परस्परं भणितमहो, एक व्यसनाभिभूतो नियमेन म्रियते किं पुनः सप्तव्यसनाभिभूतः ।

तथा चोक्तम्—

" द्यूताद्धर्मसुतः पलादिह बको मद्याद्यदोर्नन्दनाः
चारुः कामितया मृगान्तकतया स ब्रह्मदत्तो नृपः ।
चौर्यत्वाच्छिवभूतिरन्यवनितादोषाद्दशास्यो हठा-
देकैकव्यसनाद्धता इति जनाः सर्वैर्न को नश्यति ॥ "

ततो राजादेशेन शूलोपरि निक्षिप्तः । राज्ञा चतुर्दिक्षु प्रच्छन्नवृत्त्यां किंकरा धृताः । कथितश्चैतेषामग्रे—रे भृत्या, अनेन सह यः कश्चिद्वार्ता करोति स राजद्रोही । तत्पार्श्वे चौरद्रव्यं तिष्ठतीत्येवं विचारणीयं पश्चान्ममाग्रे निरूपणीयम् । अस्मिन् प्रस्तावेऽर्हद्दासपुत्रेण सह जिनदत्तश्रेष्ठी ग्रामबहिःस्थितस्य सहस्रकूटजिनालयाभिषेकं पूजां कृत्वा परमगुरुश्रीजिनचन्द्रभट्टारकस्य पादद्वयस्य वन्दनां कृत्वा च स्वमन्दिरं प्रति चलितः । तस्मिन्नेव पथि तृषाक्रान्तं रक्तजर्जरितं कंठगतप्राणं शूलोपरिस्थितं चौरं दृष्ट्वार्हद्दासेन पितरं प्रत्यभाणि—भो तात, किमेतत् ? कथमेतेनेदं प्राप्तम् ? पित्रोक्तं—भो सुत, पूर्वं यदुपार्जितं तत् कथमुदयं विहाय गच्छति ।

तथा चोक्तम्—

" पातालमाविशतु यातु सुरेन्द्रमन्दिर-
मारोहतु क्षितिवराधिपतिं च मेरुम् ।
मंत्रोषधिप्रहरणैश्च करोतु रक्षां
यद्भावि तद्भवति नात्र विचारहेतुः ॥ "

एतत् सर्वं चौरेण श्रुत्वा भणितम् ।

तथा चोक्तम्—

" शृगालैर्भक्षितौ पादौ काकैर्जर्जरितं शिरः ।
पूर्वकर्म समायातं किं करोतु नरः सुधीः ॥ "

भो जिनदत्त, त्वं कृपासागरः परमधार्मिको महाद्रुमवज्जगदुपकारी, यत् त्वया क्रियते तत् सर्वमपि लोकोपकारार्थम् । अत एव पिपासितस्य मम पानीयं पायय। अद्य तृतीयं दिनं गतं किं करोमि प्राणा न यान्ति ।

" यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानं च मोक्षं च किं जटाभस्मचीवरैः ॥
छायामन्यस्य कुर्वन्ति स्वयं तिष्ठन्ति चातपे ।
फलन्ति च परार्थेषु नात्महेतोर्महाद्रुमाः ॥
परोपकाराय दुहन्ति गावः
परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः ।
परोपकाराय वहन्ति नद्यः
परोपकाराय सतां प्रवृत्तिः ॥ "

भो श्रेष्ठिन्, मन्ये त्वं परोपकारायैव सृष्टः, एवं बहुधा प्रकारैः श्रेष्ठी स्तुतः। एतच्चौरवचनं श्रुत्वापि राजविरुद्धं ज्ञात्वा तथाप्यार्द्रचित्तेन

परोपकाराय श्रेष्ठिना भणितं—रे वत्स, मया द्वादशवर्षपर्यन्तं गुरुसेवा कृता। अद्य प्रसन्नेन गुरुणा मंत्रोपदेशो दत्तः। अद्याहं जलार्थं गच्छामि चेन्मंत्रोपि विस्मर्यते, अत एव न गच्छामि।

चौरेणोक्तमनेन मंत्रेण किं साध्यते? श्रेष्ठिना भणितं—पञ्चनमस्कारनामा मंत्रोयं समस्तसुखं ददाति।

तथा चोक्तम्—

"आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं विपदां चतुर्गतिभवां विद्वेषमात्मैनसाम्।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततां मोहस्य संमोहनं।
पायात्पञ्चनमस्क्रियाक्षरमयी साराधना देवता॥
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तुशतानि च।
अमुं मंत्रं समाराध्य तिर्यञ्चोपि शिवं गताः॥"

चौरेणोक्तं—यावत्कालपर्यन्तं त्वया जलमानीयते तावत्कालपर्यन्तमिमं मंत्रमहं घोषयामीति ममोपदेशं दत्वा झटिति जलार्थं गच्छ। श्रेष्ठिनोक्तं—तथास्तु। इति मंत्रोपदेशं दत्वा स्वयं जलार्थं गतः।

तत एकाग्रचित्तेन पञ्चपरमेष्ठिमंत्रमुच्चारयता चौरेण प्राणा विसर्जिताः। पञ्चपरमेष्ठिमंत्रमाहात्म्येन स चौरः सौधर्मस्वर्गे, षोडशाभरणभूषितोऽनेकपरिजनसहितो देवो जातः। श्रेष्ठी कियत्कालं विलम्ब्य चौरसमीप आगतो जलं गृहीत्वा। अविकारकृतजलं दृष्ट्वा श्रेष्ठिनाऽभाणि—अहो, उत समाधिनाऽसौ स्वर्गं गतः। ततः पुत्रेणोक्तं—भो तात, सत्संगतिः कस्य पापं न हरति, अपि तु सर्वस्यापि। ततः श्रेष्ठिना व्याघुट्य परमगुरूणां वन्दनं कृत्वा

वृत्तान्तं निरूपयित्वोपवासं गृहीत्वा तत्रैव जिनालये स्थितम् । गुरुणोक्तं—महत्संसर्गेण कस्योन्नतिर्न भवति ।

तथा चोक्तम्—

" संतप्तायासि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं दृश्यते ।
अन्तःसागरशुक्तिसम्पुटगतं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्योत्तमगुणाः संवासतो देहिनाम् ॥
महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारणम् ।
गंगाप्रविष्टं रथ्याम्बु त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥ "

हेरकेण राज्ञोऽग्रे निरूपितं—देव, जिनदत्तश्रेष्ठिना चौरेण सह गोष्ठी कृता । राज्ञोक्तं—स राजद्रोही । तत्पार्श्वे चौरद्रव्यं तिष्ठति । एवं कुपित्वा तद्धरणार्थं भटाः प्रेषिताः । यावदेवं वर्तते, तावत्सौधर्मस्वर्गोत्पन्नेन चौरेण भणितं—पुण्यं विनेयं सर्वसामग्री न प्राप्यते ।

तथा चोक्तम्—

" मिष्टान्नपानशयनासनगन्धमाल्यैः
वस्त्रांगनाभरणवाहनयानगेहैः ।
वस्तूनि पूर्वकृतपुण्यविपाककाले
यत्नाद्विनापि पुरुषं समुपाश्रयन्ति ॥ "

" भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् " इत्यवधिज्ञानेन सर्ववृत्तान्तं ज्ञात्वा भणितं—स जिनदत्तो मम धर्मोपदेशदाता तस्योपकारं कदापि न विस्मरामि । अन्यथा मां विहाय कोऽप्यन्यो नास्ति पापी ।

तथा चोक्तम्—

" अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्योपदेशकम् ।
दातारं विस्मरन्पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम् ॥ "

इत्येवं सर्वं विचार्य निजगुरूपसर्गनिवारणार्थं दृढघरो भूत्वा श्रेष्ठिगृहद्वारे तिष्ठति । आगतान्किंकरान्प्रति भणितं—रे वराकाः, किमर्थमागच्छथ । तैरुक्तं—रे रंक, अस्माकं हस्तेन किं मरणं वाञ्छसि ? तेनोक्तं—रे, युष्माभिर्बहुभिः स्थूलैः किं प्रयोजनं यस्य तेजो विराजते स एव बलीयान् ।

तथा चोक्तम्—

" हस्तीस्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोंकुशः
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरिः ।
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः
तेजो यस्य विराजते स बलवान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः ॥
कृशोपि सिंहो न समो गजेन्द्रैः
सत्वं प्रधानं न च मांसराशिः ।
अनेकवृन्दानि वने गजानां
सिंहस्य नादेन मदं त्यजन्ति ॥ "

ततो दृढेन केचन मारिताः केचन मोहिताश्च । एतद्वृत्तान्तं केनचिद्राज्ञोग्रे निरूपितं । ततो राज्ञाऽन्येपि प्रेषिताः । तेपि तथैव मारिताः । ततः कुपितो राजा चतुरंगबलेन सह चलितः । महति-संग्रामे जाते सति सर्वेपि मारिताः । राजा एक एव स्थितः । देवेन महाभयंकरं रूपं धृतं । राजा भयाद्भीतः । भयाक्रान्तेन राज्ञा पलायनं कृतश्च । पृष्ठे देवो लग्नः । भणितश्च—रे पापिष्ठ, अधुना यत्र व्रजसि तत्र मारयामि । यदि ग्रामबहिस्थसहस्रकूटजिनालय-

निवासिश्रेष्ठिजिनदत्तस्य शरणं गच्छसि चेद्रक्षयामि, नान्यथा। एतद्वचनं श्रुत्वा श्रेष्ठिशरणं प्रविष्टो राजा, भणितञ्च तेन—भो श्रेष्ठिन्, रक्ष रक्ष तव शरणं प्रविष्टोस्मि। रक्षिते सति पुनः प्रतिष्ठा कृता भवतीति।

तथा चोक्तम्—

" नष्टं कुलं कूप-तडाग-वापी
भ्रष्टं च राज्यं शरणागतं च।
गां ब्राह्मणं जीर्णसुरालयं च
य उद्धरेत्पुण्यचतुर्गुणं स्यात्। "

एवं श्रुत्वा श्रेष्ठिना मनसि चिन्तितम्—अयं राक्षसः कोपि विक्रियावान्, अन्यस्यैतन्माहात्म्यं न दृश्यते। ततो भणितं—हे देव, प्रपलायमानस्य पृष्ठतो न लग्यते।

तथोक्तम्—

"भीरुः पलायमानोपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा।
कदाचिच्छूरतामेति मरणे कृतनिश्चयः॥"

एतच्छ्रेष्ठिवचनं श्रुत्वा राक्षसरूपं परित्यज्य देवो जातः। श्रेष्ठिनं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृतः! पश्चाद्देवं गुरुं नमस्कृत्योपविष्टो देवः। राज्ञा भणितं—हे देव, स्वर्गे विवेको नास्ति, यतो देवं गुरुं च त्यक्त्वा प्रथमं गृहस्थवन्दना कृता त्वया। अपक्रमोऽयम्—

तथा चोक्तम्—

" अपक्रमं भवेयत्र प्रसिद्धक्रमलंघनम्।
यथा भुक्त्वा कृतस्नानो गुरून्देवांश्च वन्दते॥"

तेनोक्तं—हे राजन्, समस्तमपि विवेकं जानामि। पूर्वं देवस्य नतिः, पश्चाद्गुरोर्नतिस्तदनन्तरं श्रावकस्येच्छाकारो यथायोग्यं जानामि,

किन्तु कारणमस्ति। एष श्रेष्ठी मम मुख्यगुरुस्तेन कारणेन प्रथमं वन्दनां करोमि। राज्ञा देवः पृष्टः—केन सम्बन्धेन तव मुख्यगुरुर्जातः श्रेष्ठी? ततस्तेन देवेन पूर्वं समस्तं वृत्तान्तं निरूपितं राज्ञोऽग्रे। तत्रकेनचिद्भणितमहो, सत्पुरुषोऽयं। सन्तः कृतमुपकारं न विस्मरन्ति।

तथा चोक्तम्—

"प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
उदकममृततुल्यं दद्युराजीवितान्तं—
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥"

राज्ञोक्तं—केन प्रेर्यमाणः सन्नेष श्रेष्ठी कृतवानेवम्? देवेनोक्तं—भो राजन्, महापुरुषस्वभावोऽयम्।

तथा चोक्तम्—

"कस्यादेशात्प्रहरति तमः सप्तसप्तिः प्रजानां
छायाहेतोः पथि विटपिनामञ्जलिः केन बद्धः।
अभ्यर्थ्यन्ते जललवमुचः केन वा वृष्टिहेतो-
र्जात्या चैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः॥"

राज्ञोक्तं—धर्माणां मध्ये महान्धर्मोऽयं महता सुकृतेन लभ्यते। श्रेष्ठिनोक्तं—भो राजन्, त्वयोक्तं सत्यमेव। अल्पपुण्यैर्नलभ्यतेऽयं धर्मः।

तथा चोक्तम्—

"जैनो धर्मः प्रकटविभवः संगतिः साधुलोके
विद्वद्गोष्ठी वचनपटुता कौशलं सर्वशास्त्रे।
साध्वी रामा चरणकमलोपासनं सद्गुरूणां
शुद्धं शीलं मतिरमलिना प्राप्यते नाल्पपुण्यैः॥"

ततस्तेन देवेन पञ्चाश्चर्येण जिनदत्तश्रेष्ठी प्रपूजितः प्रशंसितश्च । अहं चौरोपि तव प्रभावेन देवो जातः । निष्कारणेन परोपकारित्वं एतत्सर्वं प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा वैराग्यसम्पन्नो भूत्वा भणति च राजा— अहो, विचित्रं धर्मस्य माहात्म्यं, देवा अपि धर्मस्य माहात्म्यं कुर्वन्ति।

तथा चोक्तम्—

" सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः ।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे
धर्मो यस्य नभोपि तस्य सततं रत्नैः परैर्वर्षति ॥"

ततो राज्ञा पुत्रं स्वपदे संस्थाप्य दीक्षा गृहीता । तथैव मंत्रिणा श्रेष्ठिनाऽन्यैश्च बहुभिर्दीक्षा गृहीता जिनचन्द्रमुनीश्वरसमीपे । केचन श्रावकाः केचन भद्रपरिणामिनश्च संजाताः । देवोपि दर्शनं गृहीत्वा स्वर्गं गतः । ततोर्हद्दासेनोक्तं—भो भार्याः एतत्सर्वं मया प्रत्यक्षेण दृष्टं । अत एव सम्यग्दृष्टिर्जातोहं । भार्याभिर्भणितं—भो स्वामिन्, त्वया दृष्टं श्रुतमनुभूतं च तत्सर्वं वयं सर्वा अपि श्रद्दधाम, इच्छामो, रोचामहे । ततो लघ्व्या कुन्दलतया भणित—मेतत्सर्वं व्यलीकमत एवाहं न श्रद्दधामि, नेच्छामि, न रोचे । एवं कुन्दलताया वचनं श्रुत्वा राजा मंत्री चौरश्च कुपितः । राज्ञोक्तमेतन्मया प्रत्यक्षेण दृष्टं । मत्पिता मम राज्यं दत्वा तपस्वी जातः । सर्वेपि जना जानन्ति । कथमियं पापिष्ठा श्रेष्ठिवचनं व्यलीकं निरूपयति । प्रभातसमयेऽस्या निग्रहं करिष्यामि । पुनरपि चौरेणोक्तं—नीचस्वभावेयं यत् प्रसादाज्जीवति तस्यैव विरूपकं करोति ।

इति प्रथमकथा ।

२–सम्यक्त्वप्राप्तमित्रश्रियः कथा ।

स्वसम्यक्त्वकारणकथां निरूपयित्वा मित्रश्रियं प्रति श्रेष्ठी भणति–भो मित्रश्रि, स्वसम्यक्त्वकथां निरूपय ।

सा कथयति––

मगधदेशे राजगृहनगरे राजा संग्रामशूरः । तस्य राज्ञी कनकमाला । तत्रैव श्रेष्ठी वृषभदासो महासम्यग्दृष्टिः परमधार्मिकः सर्वलक्षणसम्पूर्णश्च ।

तथा चोक्तम्––

"पात्रे त्यागी गुणे रागी भोगे परिजनैः सह ।
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा पुरुषः पञ्चलक्षणः ॥"

तस्य श्रेष्ठिनो भार्या जिनदत्ता । सापि परमधार्मिका सम्यक्त्वादिगुणोपेता, सर्वलक्षणसम्पूर्णा च ।

तथा चोक्तम्–

"अनुकूला सदा तुष्टा दक्षा साध्वी विचक्षणा ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ॥"

एवं गुणविशिष्टा जिनदत्ता, परन्तु वन्ध्या । केनाप्युपायेन तस्याः पुत्रो न भवति । एकस्मिन् दिनेऽवसरं प्राप्य करौ कुड्मलीकृत्य निजस्वामिनं प्रति भणितं–भो स्वामिन्, पुत्रं विना कुलं न शोभते । वंशाच्छेदोपि भविष्यति । अत एव संतानवृद्ध्यर्थं पुनरपि द्वितीयो विवाहः कर्तव्यः ।

तथा चोक्तम्––

" नागो भाति मदेन कं जलरुहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी
वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैर्नद्यः सभा पंडितैः ।
शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरं
सत्पुत्रेण कुलं नृपेण वसुधा लोकत्रयं धार्मिकैः ॥
शर्वरीदीपकश्चन्द्रः प्रभातो रविदीपकः ।
त्रैलोक्यदीपको धर्मः सत्पुत्रः कुलदीपकः ॥ "

पुनश्च,

" संसारश्रांतजीवानां तिस्रो विश्रामभूमयः ।
अपत्यश्च कवित्वश्च सतां संगतिरेव च ॥ "

मिथ्यादृष्टयोप्येवं वदन्ति–" पुत्रं विना गृहस्थस्य गतिर्नास्ति । " श्रेष्ठिना भणितं–सर्वमनित्यं दृष्ट्वा यो भोगानुभवनं करोति स विवेकशून्य एव । पुनरपि श्रेष्ठिना भणितं—परिपूर्णसप्ततिवर्षकोहं । धर्मं विहायैवं क्रियते चेल्लोके हास्यं विरुद्धं च भविष्यति ।

तथा चोक्तम्—

" रोगेप्यंगविभूषणद्युतिरियं शोकेपि लोकस्थितिः
दारिद्र्येपि गृहे वयः परिणतावप्यंगनासंगमः ।
येनान्योन्यविरुद्धमेतदखिलं जानन् जनः कार्यते
सोयं सर्वजगत्त्रयीं विजयते व्यामोहमल्लो महान् ॥"

तयोक्तं–हे पते, रागवशतो यद्येवमतिक्रमः क्रियते तदा हास्यस्य कारणं भवति, संतानवृद्धये न च दोषः इति महता कष्टेन श्रेष्ठिना प्रतिपन्नं । तत्रैव नगरे निजपितृजिनदत्तबन्धुश्रियः पुत्री कनकश्रीरस्ति । सा सपत्नभगिनी तया याचिता । उभाभ्यां भणितं–सपत्न्युपरि न दीयते । जिनदत्तया भणितं–भोजनकालं मुक्त्वा कन-

कश्रीगृहे नागच्छामि । जिनगृह एवाहं तिष्ठामीति शपथं कृत्वा याचिता । ताभ्यां दत्ता च । शुभमुहूर्ते विवाहो जातः । जिनदत्ता जिनगृहे स्थिता । दम्पती स्वगृहे सुखेन स्थितौ । एकदा कनकश्रीर्निजमातृगृहं गता । मात्रा पृष्टा—भो पुत्रि, निजभर्त्रा सह सुखानुभवं क्रियते न वा ? पुत्र्योक्तं—हे मात,—मम भर्ता मया सह वचनालापमपि न करोति, कामभोगेषु का वार्ता । अन्यच्च मम सपत्न्युपरि विवाहयितुं दत्वा किं पृच्छसि ? मुंडे मुंडनं कृत्वा पश्चान्नक्षत्रं पृच्छसि । जिनदत्तया मम भर्ता सर्वप्रकारेण गृहीतः । तौ दम्पती जिनालये सर्वदा तिष्ठतः । तत्रैव सुखानुभवनं कुरुतः । मध्याह्नकाले संध्यासमये च भोजनं कर्तुमागच्छतः । एकाकिनी क्षीणगात्राहं रात्रौ निद्रां करोमि । एतत् सर्वमसत्यं मायया स्वमातुरग्रे कनकश्रिया प्रतिपादितम् । ततो बन्धुश्रिया भणितं—रतिरूपामिमां मत्पुत्रीं परित्यज्य जिनालये जराजर्जरितां विरूपां वृद्धां सेवति । अत एव काम्युचितानुचितं न जानाति ।

तथा चोक्तम्—

> " कवयः किं न कुर्वन्ति किं न पश्यन्ति योगिनः ।
> विरुद्धाः किं न जल्पंति किं न कुर्वन्ति योषितः ॥"

तस्य लज्जापि नास्ति । अहो मकरध्वजस्य माहात्म्यं गुरुतरं पंडितमपि विडम्बयति ।

तथा चोक्तम्—

> " विकलयति कलाकुशलं हसति शुचिं पंडितं विडम्बयति ।
> अधरयति धीरपुरुषं क्षणेन मकरध्वजो देवः ॥"

हे पुत्रि, किं वहुनोक्तेन येनोपायेनेयं पापिष्ठा जिनदत्ता म्रियते तमुपायं करोमि। एवं पुत्रीमनसि संतोषमुत्पाद्य पतिगृहे प्रस्थापिता। सेयं मनसि वैरं कृत्वा स्थिता। एकदानेकवधूसहितोऽस्थ्याभरण-भूषितविग्रहः त्रिशूलडमरुनूपुराद्युपेतो महारौद्रमूर्तिः कापालिकनामा योगी भिक्षार्थं वन्धुश्रीगृहमागतः। एवंविधं योगिनं दृष्ट्वा मनसि चिन्तितमहो, मयाऽनेककापालिका दृष्टा, अस्य माहात्म्यं न कुत्रापि दृश्यते। अस्य पार्श्वे मम कार्यसिद्धिर्भविष्यतीति निश्चित्यानेकरस-वतीसहिता भिक्षा दत्ता तया।

तथा चोक्तम्—

"कार्यार्थी भजते लोके निश्चितं कस्यचित्प्रियः।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा स्वयं त्यजति मातरम्॥"

एवमनुदिनं भिक्षां ददाति। तस्या भक्तिं निरीक्ष्य योगिना मनसि चिन्तितमहो, मम मातेयमस्याः किमप्युपकारं करिष्यामि।

तथा चोक्तम्—

"जनकश्चोपनीता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥"

ततो योगिना भणितं—हे मात,—मम महाविद्यासिद्धिरस्ति। यत्प्रयोजनं ते तत्कथय। ततो रुदन्त्या वन्धुश्रिया सर्वमपि वृतान्तं कथितं, किं वहुनेयं पापिष्ठा जिनदत्ता त्वया मारयितव्या। तव भगिन्या येन गृहवासो भवति तथा कर्तव्यं। योगिना भणितं—भो मात,—त्वं स्थिरीभव। मम जीवमारणे शंका नास्ति। कृष्णचतुर्दशी-

दिने श्मशानमध्ये विद्यासाधनं कृत्वा ध्रुवं जिनदत्तां मारयामि, नोचेत्तर्ह्यग्निप्रवेशं करोम्यहम् ।

एवं प्रतिज्ञां भणित्वा, चतुर्दशीदिने पूजाद्रव्यं गृहीत्वा श्मशाने गतो योगी । तत्र मृतकमेकमानीय तस्य हस्ते खड्गं बद्ध्वोपवेश्य तस्य महतीं पूजां विधाय मंत्रजपेन वेतालीमहाविद्याऽऽराधिता । झटिति मृतकशरीरे वेतालीविद्या प्रत्यक्षीभूता । भणति स्म च–हे कापालिक, आदेशं देहि । योगिना भणितं–भो महामाये, जिनालयस्थितां, कनकश्रीसपत्नीं जिनदत्तां मारय । तयोक्तं–'तथास्तु' इति किलकिलायमाना सा विद्या यत्र जिनदत्ता तिष्ठति तत्र गता । जिनमाहात्म्येन तस्याः सम्यक्त्वमाहात्म्येन च किञ्चित् कर्तुं न समर्था ।

ततस्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य व्याघुट्य तत्रैव गता । तद्भयेन योगी पलाय्य गतः । सा तत्रैव श्मशाने पतिता । एवं वारत्रयं जातं । चतुर्थवासरे निजमरणभयेन योगिना भणितं–भो मातः, द्वयोर्मध्ये या दुष्टा तां मारय । इत्येवं प्रस्थापिता विद्या । एतद्योगिवचनं श्रुत्वा निजगृह एकाकिनीं सुप्तां कनकश्रियं मारयित्वा रक्तलिप्तखड्गा सा विद्या तत्रैव पितृवनं योगिनोऽग्र आगता । ततो योगिना प्रस्थापिता विद्या । तदनन्तरे विद्या स्वस्थानं गता । सोऽपि योगी रात्रौ स्वस्थानं प्रति गतः । प्रभातसमये संतुष्टचित्ता बन्धुश्रीर्निजपुत्रीगृहं गता । शय्योपरि छिन्नशरीरां दृष्ट्वा पूत्कारं कृत्वा राजपार्श्वे गता, भणितं च–हे देव, मम पुत्री कनकश्रीर्जिनदत्तया सपत्न्या मारिता । इमां वार्तां श्रुत्वा कोपपरायणेन राज्ञा दम्पतीधरणार्थं गृहरक्षणार्थं च भटाः प्रेषिताः ।

ते सर्वेपि पुण्यदेव्या स्तम्भिताः । एतद्वृत्तान्तं जिनालयप्रस्थिताभ्यां दम्पतीभ्यां श्रुत्वा भणितम्—उपार्जितं न केनापि लंघयितुं शक्यते ।

तथा चोक्तम्—

" यस्मिन्देशे यदा काले यन्मुहूर्ते च यद्दिने ।
हानिवृद्धियशोलाभस्तथा भवति नान्यथा ॥ "

एवं परस्परं संबोध्य यावदुपसर्गो गच्छति तावत्संन्यासं गृहीत्वा जिनालये स्थितौ । एतस्मिन् स योगी नगरदेवतया प्रेर्यमाणो नगरमध्ये वदति—अहो जनाः, जिनदत्ता निरपराधिनी । बन्धुश्रिय आदेशेन मम वेतालीविद्यया सा कनकश्रीर्मारितेति । एकस्मिन् प्रदेशे सापि वेतालीविद्या नगरदेवतया संताड्यमाना सती वृद्धरूपधारिणी नगरमध्ये एवं वदति—अहो, जिनदत्ता निर्दोषा । कनकश्रीरियं पापिष्ठा मया मारितेति । एतत् सर्वं श्रुत्वा जनैर्भणित—महो, जिनदत्तेयं साध्वी निर्दुष्टा । एतस्मिन् प्रस्तावे देवैः पंचाश्चर्यं कृतं नगरमध्ये । एतत् सर्वं दृष्ट्वा राज्ञा भणितं—बन्धुश्रीर्दुष्टा खरोपरि चटाप्य निर्घाटनीया । तयोक्तं—देव, अज्ञानतस्तथा कृतं मया । मम प्रायश्चित्तं दापयितव्यम् । राज्ञोक्तमस्य दोषस्य प्रायश्चित्तं न कुत्रापि श्रुतमस्ति ।

तथा चोक्तम्—

" मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य पिशुनस्य च ।
चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिं नैव शुश्रुमः ॥ "

ततो निर्घाटिता सा । तयोक्तमहो, उत्कृष्टपुण्यपापयोः फलमत्रैव झटिति दृश्यते ।

तथा चोक्तम्—

" त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते ॥ "

तदनन्तरं राज्ञा मनसि विचारितं—जिनधर्मं विहायेतरधर्मस्येयान्महिमा न दृश्यते । इत्येवं निश्चित्य जिनालये गतः । तत्र समाधिगुप्तमुनेर्दम्पत्योश्च नमस्कारं कृत्वोपविष्टो राजा । तदनन्तरमभाणि राज्ञा—भो मुनिनाथ, दम्पत्योर्महोपसर्गो धर्मेणाद्य निवारितः । मुनिनोक्तं—भो राजन्, यदिष्टं तत्सर्वं धर्मेण भवति । पुनरपि यतिनोक्तं—देव, संसारे धर्मं विहाय सर्वमप्यनित्यं । अत एव धर्मः कर्तव्यः ।

तथा चोक्तम्—

" अर्थाः पादरजःसमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनं
मानुष्यं जलबिन्दुलोलचपलं फेनोपमं जीवितम् ।
धर्मं यो न करोति निश्चलमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनं
पश्चात्तापहतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते ॥ "

राज्ञोक्तं—स धर्मः कीदृग्विधः ? यतिनोक्तं—हिंसादिरहितः ।

तथा चोक्तम्—

" हिंसामंगिषु मा कृथा वद गिरं सत्यामपापावहां
स्तेयं वर्जय सर्वथा परवधू-संगं विमुञ्चादरात् ।
कुर्विच्छापरिमाणमिष्टविभवे क्रोधादिदोषाँस्त्यज
प्रीतिं जैनमते विधेहि नितरां सौख्ये यदीच्छास्ति ते ॥"

ततः संग्रामशूरेण राज्ञा स्वपुत्रसिंहशूराय राज्यं दत्वा समाधिगुप्त-

सूरिपार्श्वे दीक्षा गृहीता । वृषभदासश्रेष्ठिनाऽन्यैर्बहुभिश्च दीक्षा गृहीता । मुनिनोक्तं—भो पुत्राः, चारु कृतम् । सर्वेषां पदार्थानां भयमस्ति, वैराग्यमेवाभयं वस्तु गृहीतं भवद्भिः ।

तथा चोक्तम्—

" भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्ते नृपालाद्भयं
दासे स्वामिभयं जये रिपुभयं वंशे कुयोषिद्भयं ।
माने म्लानभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं नाम भयं भवेदिदमहो वैराग्यमेवाभयम् ॥"

ततो मित्रश्रिया भणितं—भो स्वामिन्, मयैतत् सर्वं प्रत्यक्षेण दृष्टमतो दृढतरं सम्यक्त्वं जातं मम । अर्हद्दासेनोक्तं—भो भार्ये, यत् त्वया दृष्टं तदहं श्रद्दधामि, इच्छामि, रोचे । अन्याभिश्च तथैव भणितम् । ततः कुन्दलतया भणितं सर्वमेतदसत्यं । एतत्सर्वं राज्ञा मंत्रिणा चौरेण श्रुत्वा स्वमनसि भणितं—कथमियं पापिष्ठा सत्यस्यासत्यं कथयति । प्रातरियं निर्घाटनीया, गर्दभोपरि चटाप्य । पुनरपि चौरेण स्वमनसि चिन्तित—महो,—" गुणं विहाय दोषं गृह्णाति दुर्जनः " लोकोक्तिरियं सत्या ।

तथा चोक्तम्—

" दोषमेव समाधत्ते न गुणं निगुणो जनः ।
जलौका स्तनसंपृक्तं रक्तं पिबति नामृतम् ॥ "

इति द्वितीयकथा ।

३—सम्यक्त्वप्राप्तचन्दनश्रियः कथा।

ततः श्रेष्ठिना चन्दनश्रीः पृष्टा—भो भार्ये, स्वसम्यक्त्वकारणं कथय? सा कथयति—कुरुजांगलदेशे हस्तिनागपुरे राजा भूभागः। राज्ञी भोगावती। राजश्रेष्ठी गुणपालः परमधार्मिकोधिकसम्यग्दृष्टिः। भार्या गुणवती। तत्रैव नगरे ब्राह्मणसोमदत्तो महादरिद्रः। भार्या सोमिल्लातीव साध्वी। तयोः पुत्री सोमा। एकस्मिन् समये ज्वराक्रान्ता सोमिल्ला मृता। तस्याः शोकेन सोमदत्तो महादुःखी जातः। केनचिद्यतिना दृष्टः भणितं च—रे पुत्र, किमर्थं दुःखं करोषि। तेन दुःखकारणं कथितं। यतिनाऽभाणि—रे पुत्र, जातस्य मरणं ध्रुवं महति प्रयत्नेप्ययं पापीयान् कालो जीवं कवलयत्येव। पुनरपि यतिनोक्तं-हे पुत्र, तवेह लोके परलोके च धर्म एव हितकारी नान्यः। इति यतिवचनं श्रुत्वा, उपशमनं गत्वा श्रावको जातः। यथाशक्ति दानमपि करोति।

तथा चोक्तम्—

> "देयं स्तोकादपि स्तोकं न व्यपेक्षा महोदये।
> इच्छानुकारिणी शक्तिः कदा कस्य भविष्यति॥"

एवं कालं गमयति। एकदानेन गुणपालेन श्रावको दरिद्रोयमिति ज्ञात्वा निजगृहे नीत्वा पूजितः। सर्वप्रकारेण तस्य निर्वाहं करोति। भणितं चाहो, महत्सर्गेण गुणी पूज्यश्च को न भवति।

तथा चोक्तम्—

> "गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति
> ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।

सुस्वादुतोयं प्रवहन्ति नद्यः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥ ”
महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारणम् ।
गंगाप्रविष्टं रथ्याम्बु त्रिदशैरपि वन्द्यते ।

एकदा सोमदत्तेन निजमरणं ज्ञात्वा गुणपालमाहूय भणितं–तव साहाय्येन किंचिदपि दुःखं न ज्ञातं मया । अपरञ्च मम पुत्री सोमा श्रावकब्राह्मणं विहायान्यस्य न दातव्या । एवं भणित्वा निजपुत्रीं गुणपालस्य हस्ते दत्वा स्वयं संयमत्वतेन मरणं कृत्वा स्वर्गं गतः ।

तथा चोक्तम्—

“विद्या तपो धनं शौर्यं कुलीनत्वमरोगिता ।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते ॥ ”

गुणपालः सोमां निजपुत्रीवत्पालयति । अथ तस्मिन्नेव नगरे ब्राह्मणो धूर्तो रुद्रदत्तनामा वसति । स प्रतिदिनं द्यूतक्रीडां करोति । एकस्मिन् दिवसे सोमा मार्गे गच्छन्ती द्यूतकारैर्दृष्टा । पृष्टाश्च ते रुद्रदत्तेन कस्येयं पुत्री ? तैर्भणितं–सोमदत्तस्य पुत्री । पित्रा मरणसमये गुणपालहस्ते दत्ता । स स्वपुत्रीवदिमां पालयति कुमारिकां । तेषां वचनं श्रुत्वा भणति–रुद्रदत्तोऽहं विवाहयामीमां । तैर्भणितं–रे, अज्ञानेन किं ब्रवीषि । दीक्षितादिब्राह्मणैर्विवाहयितुं याचिता, परन्तु श्रेष्ठी जैनं विहायान्यस्य न प्रयच्छति । त्वं सर्वभ्रष्टः । कथं त्वया प्राप्यते ? तेषां वचनं श्रुत्वा सोऽभिमानी सन् वदति–अहो, मम बुद्धिकौतुकं पश्यत । अवश्यं विवाहयामीति प्रतिज्ञां कृत्वा देशान्तरं गतः कस्यचिन्मुनेः समीपे मायारूपेण ब्रह्मचारी जातः । देव-

वन्दनादिक्रियां पठित्वा व्याघुट्य तत्रैव नगर आगतः । गुणपालकारितचैत्यालये स्थितः । तस्यागमनं श्रुत्वा गुणपालश्चैत्यालय आगतः । गुणपाल इच्छाकारं कृत्वोपविष्टः । ब्रह्मचारिणा "दर्शनविशुद्धिरस्तु" इत्याशीर्वादो दत्तः । श्रेष्ठिना भणितं—भो प्रभो, कस्यान्तेवासी, कस्मात्समागतोसि ? वर्णिना भणित,—मष्टोपवासिनो जिनचन्द्रभट्टारकस्याहमन्तेवासी पूर्वदेशं परिभ्रम्य तीर्थंकरदेवपञ्चकल्याणकस्थानानि सम्प्रति कुन्थ्वरदेवानां वन्दनार्थमागतोहं । श्रेष्ठिना भणितं—धन्योयमस्य दिवसानि धर्मध्यानेन गच्छन्ति । पुनरपि गुणपालेन वर्णी पृष्टः—भो प्रभो, क्व जन्मभूमिः? अत्र नगरे ब्राह्मणः सोमशर्मा । भार्या सोमिल्ला । तयोः पुत्रो रुद्रदत्तोहं पितृमातृमरणावस्थां दृष्ट्वा शोकेन तीर्थयात्रां गतः । वाराणस्यां जिनचन्द्रभट्टारकेण संबोध्य ब्रह्मचारी कृतोहं । किं गात्रेण? किं देशेन ? संसारे किं कस्य नित्यमस्ति । अत एव मम धर्म एव शरणं येन सर्वसिद्धिर्भवति ।

तथा चोक्तम्—

"धर्मोयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्थिनां पुत्रकः ।
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नाना विकल्पैर्नृणां
तत्किं यन्न ददाति किञ्च तनुते स्वर्गापवर्गावपि ॥"

बहुधा प्रशंस्य पुनरपि श्रेष्ठिना भणितं—भो ब्रह्मचारिन्, त्वया सावधिकं निरवाधिकं वा ब्रह्मचर्यं गृहीतम्? तेनोक्तं—सावाधिकं, परन्तु मम स्त्र्युपरि वांछा नास्ति यतः स्त्रियो हि विषमं विषम् ।

तथा चोक्तम्—

" कंठस्थः कालकूटोपि शंभो किमपि नाकरोत्।
सोपि प्रबाध्यते स्त्रीभिः स्त्रियो हि विषमं विषम्॥"

श्रेष्ठिनाऽभाणि—भो, मम गृहे ब्राह्मणपुत्री तिष्ठति तां त्वं विवाहय। श्रावकं ज्ञात्वा तव ददामि। श्रेष्ठिवचनं श्रुत्वा तेनोक्तं—विवाहेन संसारपातो भवति। अत एव विवाहेन प्रयोजनं नास्ति। अन्यच्च स्त्रीसंगमेन मयाऽभ्यस्तं शास्त्रमपि गच्छति।

तथा चोक्तम्—

" वश्याञ्जनतंत्राणि मंत्रयन्त्राण्यनेकधा।
व्यर्थीभवन्ति सर्वाणि वनिताराधनं प्रति॥"

ततः श्रेष्ठिना महताऽग्रहेण विवाहितः। विवाहानन्तरं करकंकण-सहितो रुद्रदत्तः कितवस्थानं गतः। कितवानामग्रे भणितं—मया या प्रतिज्ञा कृता सा परिपूर्णा जाता। इति श्रुत्वा तैः प्रशंसितो रुद्रदत्तः। ततस्तस्य पूर्वभार्या वसुमित्रा-कुट्टिन्याः पुत्री कामलता वेश्या, तस्या गृहे पुनरपि संस्थितः। रुद्रदत्तस्य वृत्तान्तं श्रुत्वा दृष्ट्वा च विलक्षीभूत्वा सोमा भणति—अहो, मम कर्मणां स्वभावोयं यदुपार्जितं तत् कथं गच्छति। श्रेष्ठिना भणितं—भो पुत्रि, विरोधं मा कुरु कलियुग-स्वभावोयं।

तथा चोक्तम्—

" शशिनि खलु कलङ्कः कंटकाः पद्मनाले
उदधिजलमपेयं पंडिते निर्धनत्वम्।
दयितजनवियोगो दुर्भगत्वं सुरूपे
धनपतिकृपणत्वं रत्नदोषे कृतान्तं॥"

पुना रुक्तम्—

" श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि ।
अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्वापि यान्ति विनायकः ॥ "

सोमया भणितं—भो तात, मम मनसि किमपि नास्ति, कितवस्य स्वभावोयम् ।

तथा चोक्तम्—

" नास्ति सत्यं सदा चौरे न शौचं वृषलीपतौ ।
मद्यपे सौहृदं नास्ति द्यूते च त्रितयं न हि ॥ "

अन्यच्च—

" कुलजोयं गुणवानिति विश्वासो न हि खलेषु कर्तव्यः ।
ननुमलयचन्दनपि समुत्थितोऽग्निर्दहत्येव । "

श्रेष्ठिना कथितं—भो पुत्रि, अज्ञानतया यन्मया कृतं तत् सर्वं सहनीयमिति ? एवं निरूप्य बहुतरं द्रव्यं दत्वा भणितं—भो पुत्रि, दानपूजादिकं कुरु येनोत्तमा गतिर्भवति ।

तथा चोक्तम् ।

" गौरवं प्राप्यते दानान्न तु द्रव्यस्य संग्रहात् ।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः पुनः ॥ "

पुनश्च—

" लक्ष्मीर्दानफला श्रुतं शमफलं पाणिः सुरार्चाफलः
चेष्टा धर्मफला परार्तिहरणे क्रीडाफलं जीवितम् ।
वाणी सत्यफला जगत्सुखफलं स्फीतिः प्रभावोन्नतिः
भव्यानां भवशान्तिचिन्तनफला भूत्यै भवत्येव धीः ॥ "

एवं श्रुत्वा तेन द्रव्येण सोमया जिनालयः कारितः । प्रतिष्ठा कारिता । प्रतिष्ठानन्तरं चतुर्थदिवसे चातुर्वर्णसंघो यथा प्रतिपत्या पूजितः सम्मानितश्च ।

तदनन्तरमपरेपि नगरलोकाः, कुट्टिनी वसुमित्रा, तत्पुत्री कामलता, रुद्रदत्तादयश्च भोजनार्थं निमन्त्रिताः । तेपि यथाप्रतिपत्या सम्मानिताः ।

तथा चोक्तम्—

" निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥ "

सोमागृहागतया वसुमित्राकुट्टिन्या सोमारूपं निरीक्ष्य शिरो धूणितं । अहो, सोमा ईदृग्विधा सुन्दरी वर्तते । यद्यस्यामसौ रुद्रदत्त कथमप्यासक्तो भविष्यति चेत् तर्हि कथमस्माकं जीवितं भवतीत्यवश्यं मारणीया । एवं निश्चित्य घटमध्ये महादारुणसर्पं निक्षिप्य पुष्पैः सह सोमाहस्ते घटो दत्त उक्तं च—भो पुत्रि, एभिः पुष्पैर्देवपूजा करणीया । सोमायाः पुण्यमाहात्म्येन सर्पोपि पुष्पमाला जाता । एतदाश्चर्यं दृष्ट्वा मया सर्पो घटे निक्षिप्तो न वेत्येवं विस्मयं गता कुट्टिनी ।

सोमया ते त्रयोपि भोजनवस्त्राभरणादिना सम्मानिताः । अनन्तरमाशीर्वादं दत्वा सा माला सोमया कामलताकंठे निक्षिप्ता । तत्क्षणादेव सर्पो जातः । तेन सर्पेण दष्टा सती सा भूमौ पतिता । ततः कुट्टिन्या पूत्कारं कृत्वा मालासर्पौ घटे निक्षिप्य राज्ञोग्रे निरूपितं—देव, मत्पुत्री कामलता गुणपालपुत्र्या सोमया मारिता । ततः राज्ञा कुपितेन सोमा आकारिता । सोमा राजपार्श्वे समागता । राज्ञा पृष्टा—किमर्थं कामलता मारिता कारणं विना ? सोमयोक्तं—देव, मया न मारिता ।

अहं जैना:। जिनधर्मो दयायुक्तः। जीवघातेन नरकादिदुःखं, जीवरक्षणेन स्वर्गादिसुखं भवति । अत एव सुखार्थिनां जीवघातो न करणीयः।

तथा चोक्तम्—

> पापाद्दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम् ।
> " तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम् "

ततो राज्ञोऽग्रे पूर्ववृत्तान्तं समस्तमपि सोमया निरूपितं। ततः कुट्टिन्या घटस्थः सर्पो राज्ञोऽग्रे दर्शितः । सोमया घटस्थं सर्पं करे धृत्वा बाह्ये आकृष्टः। स सर्पः पुष्पहारो जातः लोकाग्रे दर्शितः, कुट्टिन्या गृहीतः सर्पो जातः। एवं बहुवारं कृत्वा लोको विस्मयं गतः पुनः कुट्टिन्या भणितं—सोमाया एतदेव दिव्यं, यदा मम पुत्रीं जीवयति तदा सोमा शुद्धा । नान्यथा। एतद्वचनं श्रुत्वा जिनस्तुतिं कृत्वा जिनं हृदये निधाय निजकरेण कामलतायाः शरीरं स्पृष्टं तया, ततो निर्विषा जातोत्थिता च ।

तथा चोक्तम्—

> " विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनी भूतपन्नगाः ।
> विषं निर्विषतां यान्ति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ "

कामलतां दृष्ट्वाऽभयदानं दत्वा राजा कुट्टिनी पृष्टा—किमेतन्ममाग्रे सत्यं कथय। तयोक्तं—हे देव, एतत्सर्वं मम चरित्रं, सोमा निर्दुष्टेयमिति पूर्ववृत्तान्तं समस्तमपि कुट्टिन्या राजाग्रे निरूपितम् । इति धर्मप्रभावं निरीक्ष्य राज्ञा मनुष्यैः देवैश्च सा सोमा पूजिता । अपरञ्च देवैः पञ्चाश्चर्याणि कृतानि। ततो लोकैर्भणित,—महो, धर्मात्किं किं न

भवति। ततो भूभागेन राज्ञा, गुणपालेन, अन्यैश्च बहुभिर्जिनचन्द्र-भट्टारकसमीपे तपो गृहीतं। केचन श्रावका जाताः, केचन भद्रपरि-णामिनो जाताः। श्रीमत्यार्यिकासमीपे राज्ञी भोगावती, गुणपाल-भार्या गुणवती, सोमा, अन्याश्च तपोऽगृह्णन्ति स्म। रुद्रदत्तवसुमित्रा-कामलतादिभिश्च श्रावकव्रतं गृहीतम्। चन्दनश्रिया भणितं—भो श्रेष्ठिन्, एतत् सर्वमपि मया प्रत्यक्षेण दृष्टं। पश्चात् मम दृढतरं सम्यक्त्वं जातम्। ततः श्रेष्ठिनाऽभाणि-यत्त्वया दृष्टं तदहं श्रद्दधामि, रोचे, इच्छा-मि च अन्याभिश्च तथैव भणितं। कुन्दलतया भणितं—सर्वमसत्यमेतद्वृत्ता-न्तं। राज्ञा मंत्रिणा चौरेण श्रुत्वा स्वमनसि भणित—महो, इयं पापिष्ठा चन्दनश्रीः प्रत्यक्षदृष्टां कथां कथमसत्यं वदति। प्रभात-समये गर्दभस्योपरि चटाप्य निर्घाटयामि। पुनरपि चौरेण मनसि भणितं—निन्दकस्वभावोयम्।

तथा चोक्तम्—

"यो भाषते दोषमविद्यमानं
सतां गुणानां ग्रहणे च मूकः।
स पापभाक्स्यात्स विनिन्दकश्च
यशोवधः प्राणवधाद्गरीयान्॥"

इति तृतीयकथा।

४—सम्यक्त्वप्राप्तविष्णुश्रियः कथा।

ततोऽर्हद्दासेन विष्णुश्रीः पृष्टा—भो भार्ये, सम्यक्त्वकारणं कथय! सा कथयति—

भरतक्षेत्रे वच्छ (वत्स) देशे कौशाम्बी पुरी । राजाजितञ्जयः। तस्य राज्ञी सुप्रभा। मंत्री सोमशर्मा । तस्य भार्या सोमा। स मंत्री सोमशर्मा सर्वदा कुपात्रविषये रतः ।

तस्मिन्नेव नगरे समाधिगुप्तभट्टारक आगतः। तन्नगरबाह्यस्थितोपवनमध्ये मासोपवासप्रतिज्ञा गृहीता तेन। तदागमनमात्रेण तद्वनं सशोभं सञ्जातं ।

यथा हि–

" शुष्काशोककदम्बचूतबकुलाः खर्जूरकादिद्रुमाः
जाताः पुष्पफलप्रपल्लवयुताः शाखोपशाखान्विताः ।
शुष्काब्जा जलवापिका प्रभृतयो जाताः पयःपूरिताः
क्रीडन्त्येव सुराजहंसशिखिनश्चक्रुः स्वरं कोकिलाः॥ "

पुनश्च–

" जातीचम्पकपारिजातकजपासत्केतकीमल्लिकाः
पद्मिन्या सहिताः क्षणांदिकसिताः माधुर्द्विरेफास्ततः ।
कुर्वन्तो मधुरं स्वरं सुललितं तद्गंधमाघ्रायते
गायन्ते विहगाः परस्परमरे भातीदृशं तद्वनम्॥"

स तपस्वीदृग्विधः ।

तद्यथा–

" देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं श्रुताभ्यासता
चारित्रोज्ज्वलता महोपशमता संसारनिर्वेदता ।
अन्तरबाह्यपरिग्रहत्यजनतां धर्मज्ञता साधुता
साधोः साधुजनस्य लक्षणमिदं संसारविच्छेदकम् ॥ "

पुनः परिग्रहः–

" क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं द्विपदश्च चतुष्पदम् ।
यानशय्यासनं कुप्यं भाण्डश्चेति चतुर्दश ॥
मिथ्यात्वं वेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयम् ।
रागद्वेषौ च संगाः स्युरन्तरङ्गाश्चतुर्दश ॥
मिच्छत्तं वेयतिगं हासाई छक्कयं च णायव्वम् ।
कोहाईण चतुक्कं चउद्दस अभ्भंतरा गंथा ॥ "

प्रतिज्ञानन्तरमेवं गुणविशिष्टं समाधिगुप्तभट्टारकं चर्यार्थमागतं दृष्ट्वा लघुकर्मणा श्रद्धादिसप्तगुणसमन्वितेन, नवविधविधानयुक्तेन मंत्रिणा, मुनिप्रतिलाभतो मुनिं प्रतिष्ठाप्य चर्या कारिता ।

उक्तञ्च—

" श्रद्धा शक्तिरलोभित्वं दया भक्तिः क्षमा तथा ।
विज्ञानञ्चेति सप्तैते दातुः सप्तगुणा मताः ॥ "

पुनश्च—

" पडिगहमुच्चट्ठाणं, पादोदयमच्चणं हु पणमं च ।
मनवयणकायसुद्धी, एसणसुद्धी हु णवविहं पुण्णं ॥ "

मंत्री वदत्यद्याहं धन्यो जातः ।मयाद्य तीर्थंकरो दृष्टः पूजितश्च ।

तथा चोक्तम्—

" सम्प्रत्यस्ति न केवली कलियुगे त्रैलोक्यरक्षामणिः
तद्वाचः परमाश्चरन्ति भरतक्षेत्रे जगद्योतिकाः
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरास्तासां समालम्बनं
तत्पूज्या जिनवाक्यपूजनतया साक्षाज्जिनः पूजितः ॥ "

मंत्रिमन्दिरे मुनिदानफलेनामरविरचितानि पंचाश्चर्याणि जातानि । भट्टारकदत्ताहारदानफलातिशयं दृष्ट्वा मंत्री स्वमनसि वदति—अहो,

वैष्णवधर्मे यानि दानानि प्रतिपादितानि, तानि सर्वाण्यपि दीक्षिताग्निहोतृश्रोत्रियत्रिपटिकशासनधर्मकथकभागवत्तपस्विवन्दकयोगीन्द्रादीनामनेकधा दत्तानि।

तथा चोक्तम्—

" कनकाश्वतिला नागो रथो दासी मही गृहम्।
कन्या च कपिलाधेनुर्महादानानि वै दश॥ "

परं तद्दानफलातिशयः कोपि न दृष्टो मया। इत्येवं मनसि निश्चित्यापराह्णसमय उपवने गत्वा विधिपूर्वेण भट्टारकं वन्दित्वा भट्टारकः पृष्टः- भो भगवन्, दीक्षितादिदत्तदानफलातिशयः कोपि न दृष्टो मया। भगवानाह–भो सचिव, ते कुपात्रा आर्तरौद्रध्यानयुक्ताः। तेषां दानानि देयानि न भवन्ति। योऽतिथिरात्मानं यजमानं च तारयति तस्य दानं दातव्यम्।

तथा चोक्तम्—

" अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते
प्रवर्तयत्यन्यजनञ्च निस्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितेच्छुना गुरुः
स्वयं तरन्तारयितुं क्षमः परम्॥ "

अन्यच्च—

" दानं दातव्यं शीलवद्भ्यः प्रणम्य
ज्ञानं ज्ञातव्यं बन्धमोक्षप्रदर्शि।
देवाः संसेव्या द्वेषरागप्रहीणाः
स्वर्गं मोक्षं गन्तुकामेन पुंसा॥ "

उत्तमपात्रमध्यमपात्रजघन्यपात्राणामौषधाभयाहारशास्त्रदानानि यथायोग्यं दातव्यानि ।

तथा चोक्तम्—

" उत्तमपत्तं साहू मध्यमपत्तं च सावया भणिया ।
अविरतसम्माइट्ठी जहणपत्तं मुणेयव्वं ॥ "

पुनश्च,—

" उत्कृष्टपात्रमनगार,—मणुव्रताढ्यं
मध्यं, व्रतेन रहितं सुदृशं जघन्यम् ।
निर्दर्शितं व्रतनिकाययुतं, कुपात्रं
युग्मोज्झितं नरकपात्रमिदं हि विद्धि ॥ "

पुनश्च—

" अभीतिरभयादाहुराहाराद्भोगवान्भवेत् ।
आरोग्यमौषधाज्ज्ञेयं शास्त्राद्धि श्रुतकेवली ॥ "

यः पुनः—

कुपात्रेभ्यो दानं ददाति स आत्मानं पात्रं च नाशयति " भस्मनि हुतमिवापात्रेष्वर्थव्यय " इति सौमनीतिः—

तथा च—

" जायते दंदशूकस्य दत्तं क्षीरं यथा विषम् ।
तथापात्राय यद्दत्तं तद्दानं तद्विषं भवेत् ॥
उप्तं यथोषरे क्षेत्रे बीजं भवति निष्फलम् ।
तथापात्राय यद्दत्तं तद्दानं निष्फलं भवेत् ॥ "

अन्यच्च—

" एकवापीजलं यद्वादिक्षौ मधुरतां व्रजेत् ।
निम्बे कटुकतां याति पात्रापात्रेषु योजितम् ॥ "

पुनरपि मंत्री पृच्छति–भो भगवन्, यथा मुनिदानफलातिशयो मया प्राप्तस्तथान्येन केनापि मुनिदानफलातिशयः प्राप्तो न वा ? भगवानाह–दक्षिणदेशे वेनातटपुरे राजा सोमप्रभः । राज्ञी सोमप्रभा । स राजा ब्राह्मणभक्तः । विप्रं विहायान्यः कोपि लोकानां तारको न भवतीत्येवं निरूपयति ।

तथा चोक्तम्–

" गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते जगत् ॥ "

एकदा तेन राज्ञा स्वमनसि विचारितमहो मया, बहुद्रव्यमुपार्जितमस्ति । तस्य दानाद्युपयोगो गृह्यतेऽन्यथा नाश एव भवति ।

तथा चोक्तम्–

" दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ "

इति ज्ञात्वा बहुसुवर्णनामा यज्ञः कारितः । तत्रादिमध्यावसानेषु विप्राणां बहु सुवर्णं ददाति ।

यज्ञशालासमीपे विश्वभूतिनाम्नो द्विजस्य गृहं तिष्ठति । स विश्वभूतिर्भोगोपभोगेषु यमनियमसंयमादियुक्तो निस्पृह-चित्तश्च । तस्य भार्या सती ।

तथा चोक्तं, भोगोपभोगः––

" यत्सकृत्सेवते भोगः स भोगो भोजनादिकः ।
भूषादिः परिभोगः स्यात्पौनःपुन्येन सेवनात् ॥ "

पुनश्च यमनियमौ—

" यमश्च नियमश्चेति द्वे त्याज्ये वस्तुनि स्मृते ।
यावज्जीवं यमो ज्ञेयः सावधिर्नियमः स्मृतः ॥"

एकस्मिन्दिने तेन विश्वभूतिना खलु धान्यस्थानं गत्वा कपोतवृत्त्या यवा आनीता । पिष्ट्वा च तच्चूर्णस्य जलेन सह पिण्ड-चतुष्टयं बद्ध्,-मेकेन पिण्डेनाग्निहोत्रं कृतवान् । द्वितीयं पिण्डं स्वभोजनार्थं धृतं । तृतीयं पिण्डं स्वभार्याभोजननिमित्तं धृतं । चतुर्थ-पिण्डमतिथिभोजननिमित्तं धृतम् । एवं विश्वभूतेः कालो गच्छति ।

तथा चोक्तम्—

" देयं स्तोकादपि स्तोकं न व्यपेक्षा महोदये ।
इच्छानुकारिणी शक्तिः कदा कस्य भविष्यति ॥ "

एकस्मिन् दिने विश्वभूतिगृहे पिहिताश्रवमुनिश्चर्यार्थमागतः । परमा-नन्देन यथोक्त्यागमविधिना तेन विश्वभूतिना प्रतिष्ठापितः । अतिथि-निमित्तं धृतं पिण्डं शोधितम् । स्वनिमित्तं धृतमपि पिण्डं शोधितं । तदनंतरं भार्यामुखमवलोकितं द्विजेन । तयोक्तं—धन्याहं तव प्रसादेन । ममापि चटितं मदीयं पिण्डं शोधय । तेन तदपि शोधितम् ।

तथा चोक्तम्—

वश्या सुता वृत्तिकरी च विद्या नीरोगता सज्जनसंगतिश्च ।
इष्टा च भार्या वशवर्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ॥

ततो मुनेर्निरन्तराय आहारोजनि । शुद्धा भिक्षा जाता । ततो

मुनिदानफलेन रत्नवृष्टिः, कुसुमवृष्टिः, सुगंधिवायु,--देवदुन्दुभिः, साधु-वादश्चेति पञ्चाश्चर्यं तन्नगरे देवैः कृतम्। तदनन्तरं मिथ्यादृष्टिब्राह्मणै-र्भणितं राज्ञोऽग्रे--हे राजन्, बहुसुवर्णयज्ञफलमेतत्। राजा संतुष्टो जातः। यदा ते ब्राह्मणा रत्नानि गृह्णन्ति, तदाङ्गाराणि भवन्ति तानि। ततः केनचिद्भणितं--भो भूपते, बहुसुवर्णयज्ञफलं नैतत्। किं तर्हि? विश्वभूतिब्राह्मणेन मुनिदत्ताहारदानफलमेतत्। मुनिदानमाहात्म्यं ज्ञात्वा लघुकर्मणा सोमप्रभराज्ञा मनसि भणितं--सत्यमेतत् ये शुद्ध-भावना संयुक्तास्त एव दानयोग्या भवन्ति, न पुनरार्तरौद्रध्यानपरायणा गृहिणस्तेषां शुभभावनाभावात्।

तथा चोक्तम्--

" नो शीलं परिपालयन्ति गृहिणस्तप्तुं तपो न क्षमा
आर्तध्याननिराकृतोज्ज्वलधियां तेषां न सद्भावना।
इत्येवं निपुणेन हन्त मनसा सम्यङ्मया निश्चितं
नोत्तारो भवकूपतोऽस्ति सुदृढो दानावलम्बात्परः॥ "

अत एव मुनीनां दानं दातव्यं, मुक्तेः कारणं त एव भवन्ति न गृहिणः।

तथा चोक्तम्---

" सन्तः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितं मुक्तेः परं कारणं
रत्नानां दधति त्रयं त्रिभुवनप्रद्योतिकाये सति।
वृत्तिस्तस्य यदन्नतः परमया भक्त्यार्पिताज्जायते
तेषां सद्गृहमेधिनां गुणवतां धर्मो न कस्य प्रियः॥ "

तदनन्तरं करौ कुड्मली कृत्य विश्वभूतिद्विजं प्रति राजा भणति--भो

विश्वभूते, मुनिदत्ताहारदानफलं ममार्द्धं प्रयच्छ । मया वहु सुवर्ण-यज्ञफलार्द्धं दीयते । विश्वभूतिनाभाणि—भो भूपते, दारिद्र्यपीडितोपि-सत्पुरुषो नीतिं परित्यज्यान्यथा करोति किं ? अत एव स्वर्गापवर्ग-साधकमाहाराभयभैषजशास्त्रमिति दानचतुष्टयं द्रविणार्थं न विक्रीयते ।

ततो मुनिनाथसमीपे गत्वा राज्ञाऽभाणि—भो भगवन्, दान-चतुष्टयं गृहिणा किमर्थं दीयते ? यतिनोक्तं—हे देव, आहारदान देहस्थित्यर्थं दीयतेऽत एवाहारदानं मुख्यम् । येनाहारदानं दत्तं तेन सर्वाणि दानानि दत्तानि ।

तथा चोक्तम्—

" तुरगशतसहस्रं गोकुलं भूमिदानं
कनकरजतपात्रं मेदिनी सागरान्ता ।
सुरयुवतिसमानं कोटिकन्याप्रदानं
न हि भवति समानं अन्नदानात्प्रधानात् ॥ "

औषधदानमपि दातव्यं येन रोगविच्छित्तिर्भवति । तदौषधदानं रोगे विनाशे तपो जपं संयमं च करोति, पुनः कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं च गच्छति । तपस्विने तेन कारणेनौषधदानं दातव्यम् ।

तथा चोक्तम्—

" रोगिणो भेषजं देयं रोगो देहविनाशकः ।
देहनाशे कुतो ज्ञानं ज्ञानाभावे न निर्वृतिः ॥ "

रेवतीश्राविकया श्रीवीरस्यौषधदानं दत्तम् । तेनौषधदानफलेन तीर्थंकरनामकर्मोपार्जितमत एवौषधदानमपि दातव्यं । य एकं जीवं रक्षति स सर्वदा निर्भयो भवति किं पुनः सर्वान् ।

तथा चोक्तम्—

" विधेयं सर्वदा दानमभयं सर्वदेहिनाम् ।
यतोऽन्यस्मिन्भवे जीवो निर्भयोऽभयदानतः ॥ "

अन्यच्च—

" यो दद्यात्कांचनं मेरुं कृत्स्नां चापि वसुंधराम् ।
एकस्य जीवितं दद्यात्फलेन न समं भवेत् ॥
गोदानं हिरण्यदानञ्च भूमिदानं तथैव च ।
एकस्य जीवितं दद्यात्फलेन न समं भवेत् ॥ "

अत्रार्थे यमपाशचाण्डालभवदत्तकैवर्तयोश्च कथा । जीवदयां विहाय योऽपात्रदानं ददाति तद्दानं निष्फलं भवेत् । सर्पमुखनिक्षिप्तक्षीरवत् ।

" जायते दन्दशूकस्य दत्तं क्षीरं यथा विषम् ।
तथापात्राय यद्दत्तं तद्दानं तद्विषं भवेत् ॥ "

शास्त्रदानमपि दातव्यं । यः शास्त्रदानं ददाति स क्रमेण सर्वकर्म क्षयं करोति ।

तथा चोक्तम्—

लिखित्वा लेखयित्वा वा साधुभ्यो दीयते श्रुतम् ।
व्याख्यायतेथवा स्वेन शास्त्रदानं तदुच्यते ॥ "

अन्यच्च—

" अन्यस्मिन्भवे जीवो बिभर्ति सकलं श्रुतम् ।
मोक्षसौख्यमवाप्नोति शास्त्रदानफलाधरः "

एतत् सर्वफलं दृष्ट्वा श्रुत्वा च सोमप्रभेण राज्ञा भणितं—भो

मुनिनाथ, मम जैनव्रतं प्रयच्छ। मुनिना जैनव्रतं दत्तम् । तेन स्वीकृतम् । तदा जैनो भूत्वा राजा वदति—भो भगवन्, कीदृग्विधं दानं दातव्यं, कस्मै कस्मै च दातव्यम्? मुनिनोक्तम्—आगमोक्तविधिना दानं दातव्यम् ।

तथा चोक्तम्—

"न दद्याच्छैशवे दानं न भयान्नोपकारिणे ।
न नृत्यगीतशीलेभ्यो हासकेभ्यश्च धार्मिकः ॥"

पुनः—

"यथाविधिं यथादेशं यथाद्रव्यं यथागमम् ।
यथापात्रं यथाकालं दानं देयं गृहाश्रमे ॥"

विविधं दानं मुनिभ्यो दातव्यम् ।

तथा च—

"विवर्णं विरसं विद्धमसात्म्यं प्रसृतं च यत् ।
मुनिभ्योऽन्नं न तद्देयं यच्च भुक्तं गदावहम् ॥
उच्छिष्टं नीचलोकार्हमन्योद्दिष्टं विगर्हितम् ।
न देयं दुर्जनस्पृष्टं देवयक्षादिकल्पितम् ॥
ग्रामान्तरात्समानीतं मंत्रानीतमुपायनम् ।
अदेयमापणक्रीतं विरुद्धं चायथार्तुकम् ॥
बालाजानतपःक्षीणवृद्धव्याधिसमन्वितान् ।
मुनीनुपचरेन्नित्यं यतस्तेस्युस्तपःक्षमाः ॥"

कृपादानं च सर्वेषामपि दातव्यं। एतत् सर्वं श्रुत्वा सोमप्रभो राजाऽतीव परिणतः श्रावको जातः—

तद्यथा—

" मिथ्यादृष्टिसहस्रेभ्यो वरमेको जिनाश्रितः ।
जिनाश्रितसहस्रेभ्यो वरमेक उपासकः ॥
श्रावकाणां सहस्रेभ्यो वरमेको ह्यणुव्रती ।
अणुव्रतिसहस्रेभ्यो वरमेको महाव्रती ॥
महाव्रतिसहस्रेभ्यो वरमेको जिनागमी ।
जिनागमिसहस्रेभ्यो वरमेकः सुतत्ववित् ॥
सुतत्ववित्सहस्रेभ्यो वरमेको दयान्वितः ।
दयान्वितसमं यावन्न भूतो न भविष्यति ॥
वशीकृतेन्द्रियग्रामः कृतज्ञो विनयान्वितः ।
निष्कषायप्रशान्तात्मा सम्यग्दृष्टिर्महाशुचिः ॥"

एवमादिगुणोपेतः सोमप्रभो राजा कालक्रमेणोग्रं तपः कृत्वाऽन्तःसुखी जातः । एतत् सर्वं बहु सुवर्णयज्ञवृत्तान्तं श्रुत्वा सोमशर्मा मंत्री भणति—भो भगवन्, सम्प्रति तव पादौ शरणौ, मम जिनधर्मे प्रसादं कुरु । एतद्वचनं श्रुत्वा मुनिना दर्शनपूर्वकं श्रावकव्रतं दत्तम् । श्रावकव्रतं गृहीत्वा मंत्री वदति—भो भगवन्, 'इह जन्मनि मम लोहप्रहरणे नियम' इति काष्ठकृपाणं कारयित्वा मनोज्ञकोषमध्ये निक्षिप्य राजसेवां करोति । एवं बहुकाले जातः । एकदा केनचिद्दुष्टेन राज्ञोग्र निरूपितं—देव, सोमशर्मा मंत्री काष्ठखड्गेन तव सेवां करोति—लोहप्रहरणं विना संग्रामे कथं सुभटान्मारयति । अत एव देव, तव भक्तो न भवत्यसौ सोमशर्मा ।

तथा चोक्तम्—

" त्यक्त्वापि निजप्राणान्परसुखविघ्नं खलः करोत्येव ।
पतिता कवले सद्यो वमयति खलु मक्षिका हि भोक्तारम् ॥ "

एतद्दुष्टवचनं स्वमनसि धृत्वा राजा तूष्णीं स्थितः । एकदा राज्ञा कृपाणवार्ता चालिता । ततः कोशादुत्खातितो निजकृपाणो राज्ञा समस्तराजकुमाराणामग्रे दर्शितः । तै राजपुत्रैः प्रशंसितः कृपाणः । एवं राज्ञा समस्तराजकुमाराणां कृपाणान्दृष्ट्वा सोमशर्माणं मंत्रिणं प्रति भणितं—भो मंत्रिन्, निजकृपाणं ममाग्रे दर्शय ।

तदनन्तरमिङ्गिताकारेण मंत्रिणा स्वमनसि चिन्तितम्—अहो, दुष्टव्यापारोयमन्यथा कथं मम कृपाणपरीक्षां राजा करोति । ततो मंत्री देवं गुरुञ्च स्वमानसे स्मृत्वा भणति स्वमनसि—यदि मम देवगुरुनिश्चयोस्ति तर्ह्ययं कृपाणो लोहमयो भवतु । एवं प्रतिज्ञाय सकोशोसिस्तेन राज्ञो हस्ते दत्तः । कोशात्कृपाणं राजा यदा निष्काशयति तदादित्यवद्दीप्यमानो लोहमयो जातः । ततो दुष्टमुखमवलोक्य राजा वदति—रे दुष्टात्मन्, ममाग्रेऽप्यन्यथा निरूपितं त्वया । अहो, दुष्टस्वभावोऽयं परावगुणं कथयितुं । राजा कुपितः । तदा मंत्रिणोक्तं—भो राजन्, राजा देवतास्वरूपस्तस्याग्रेऽसत्यं कदाचिदपि न वक्तव्यं ।

तथा चोक्तम्—

" सर्वदेवमयो राजा वदन्ति विबुधा जनाः ।
तत्सर्वदेववत् पश्येत् न व्यलीकेन जातुचित् ॥

किन्तु कारणमस्ति । अत एवास्योपरि कोपं मा कुरु । एतेन यदुक्तं तत् सर्वं सत्यमेव । राज्ञोक्त—महो, सत्पुरुषोयं, अपकारिण्यपि पुरुषे शुभं चिन्तयति । धिक्तं गुणकारिण्यप्यशुभं चिन्त-

यति। पुनरपि राजा ब्रूते–भो सचिव, काष्ठमयोऽयं कृपाणो लोहमयः कथं जातः। मंत्री सर्ववृत्तान्तं निरूप्य भणति–भो स्वामिन्, मम लोहप्रहरणे नियमोस्ति। देवगुरुनिश्चयजनितपुण्यमाहात्म्येन मम काष्ठमयः कृपाणो लोहमयो जात इति ममोपरिक्षमां कुरु। इति श्रुत्वा लोकैर्मंत्री प्रशंसितः पूजितश्च। देवैः पञ्चाश्चर्यं कृत्वा मंत्री पूजितः।

एतत् सर्वं धर्ममाहात्म्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा चाजितंजयो राजा लोकाग्रे निरूपयति–अहो, जिनधर्मं विहायान्यो धर्मो दुर्गतिं न विदारयति। अस्मिन् भवेपि सुखं नास्ति इत्येवं भणित्वा वैराग्य-परायणेन राज्ञा स्वपुत्रं शत्रुंजयं राज्ये संस्थाप्य, सोमशर्ममंत्रिणा स्वपुत्रं देवशर्मणं मंत्रिपदे संस्थाप्य, राज्ञा मन्त्रिणाऽन्यैश्च बहुभिः समाधिगुप्तभट्टारकसमीपे तपो गृहीतं। केचन श्रावका जाताः। केचन भद्रपरिणामिनश्च जाताः। राज्या सुप्रभया, मन्त्रिभार्यया सोमया, अन्याभिश्च बह्वीभिरभयमत्यार्यिकासमीपे तपो गृहीतम्। काश्चन श्राविका जाताः। विष्णुश्रिया भणितं–भो स्वामिन्, एतन्मया सर्व-मपि प्रत्यक्षेण दृष्टं। तदनन्तरं मम दृढतरं सम्यक्त्वं जातम्। एतत् सर्वं श्रुत्वाऽर्हद्दासेनोक्तं–भो भार्ये, यत्त्वया दृष्टं तत्सर्वमहं श्रद्दधामि, इच्छामि, रोचे। अन्याभिश्च तथैव भणितं। कुन्दलतयोक्त–मेतत् सर्वमसत्य-मत एव नाहं श्रद्दधामि, नेच्छामि, न रोचे। एतद्वृत्तान्तं राज्ञा मंत्रिणा चौरेण च श्रुत्वा स्वमनसि भणितं–विष्णुश्रिया प्रत्यक्षेण दृष्टं, तत् कथमियं पापिष्ठा व्यलीकमिति निरूपयति। प्रभातसमये गर्दभे चटा-

र्म्यास्या निग्रहं करिष्यामो वयम्। पुनरपि चौरेण स्वमनसि चिन्तितम्— अहो, खलो जात्युत्तमोपि सन् स्वभावं न त्यजति।

तथा चोक्तम्—

" चन्दनादपि सम्भूतो दहत्येव हुताशनः।
विशिष्टकुलजातोपि यः खलः खल एव सः॥ "

इति चतुर्थी कथा।

५—सम्यक्त्वप्राप्तनागश्रियः कथा।

ततो नागश्रियं प्रति भणितं—भो भार्ये, स्वसम्यक्त्वग्रहणकारणं कथय। सा कथयति—

काशीविषये वाराणस्यां पुरि सोमवंशोद्भूतो राजा जितारिः। राज्ञी कनक्चित्रा। पुत्री मुंडिका। सा मुंडिका प्रतिदिनं मृत्तिकां भक्षयति। अतोतिरोगपीडिता बभूव।

राजमंत्री सुदर्शनो। भार्या सुदर्शना। एकदा वृषभश्रियाऽऽर्यिकया सा मुंडिका प्रतिबोध्य जैनी कृता। सत्पुरुषाणां स्वभावोयं यत् परोपकारं करोति। तदनन्तरं निरतीचारं श्रावकव्रतं प्रतिपालयन्ती व्रतमाहात्म्येन नीरोगा जाता। तदाऽऽर्यिकयोक्तं—यो निरवद्यव्रतं पालयति स स्वर्गादिभाजनं भवति, रूपस्य का वार्ता। जितारिणा पुत्र्या अग्रे विवाहार्थं सर्वेपि राजकुमारा दर्शिताः स्वयंवरे। तस्या मनसि कोपि न प्रतिभासते। ततो राजपुत्राः स्वस्थानं जग्मुः। एकदा तुंडविषये चक्रकोटनाम्नि नगरे राजा भगदत्तः दानशूरो रूपलावण्यादि-

गुणोपेतः समस्तवस्तुपरिपूर्णः, परन्तु जातिहीनः । तस्य राज्ञी लक्ष्मीमतिः । मंत्री सुबुद्धिः । तस्य भार्या गुणवती । तेन भगदत्तेन सा मुंद्रिका याचिता । जितारिणाऽभाणि—रेऽजन्मन्, या सुतोत्तमराजपुत्रेभ्यो न दत्ता, भगदत्त तव पापिष्ठस्य कथं तां पुत्रीं दास्यामि । तेनोक्तं—भो राजन्, गुणेन भवितव्यं किं जन्मना? जितारिणोक्तं—रणमध्ये तव वाञ्छितं सर्वमपि दास्यामि । एतद्वचनं श्रुत्वा महाकोपं कृत्वा भगदत्तो राजा जितार्युपरि चलितः । सुबुद्धिना भणितं—हे भगदत्त, समस्तयुद्धसामग्रीं कृत्वा गम्यते । अन्यथा नाश एव भवति ।

तथा चोक्तम्—

"स्वकीयबलमज्ञात्वा संग्रामार्थं तु यो नरः ।
गच्छत्यभिमुखो नाशं याति वह्नौ पतंगवत् ॥"

यथा राजा भृत्यैर्विना न शोभते, यथा च रविरंशुरहितो न शोभते तद्वदेकेन बलवान् न, समुदायेन बलवान् भवेत् । यथा तृणै रज्जुं कृत्वा नागो बध्यते ।

उक्तं च—

"एवं ज्ञात्वा नरेन्द्रेण भृत्या कार्या विचक्षणाः ।
कुलीनाः शौर्यसंयुक्ताः शक्ता भक्ताः क्रमागताः ॥"

भगदत्तेन राज्ञोक्तं—भो सुबुद्धे, हितरूपेण यदुक्तं त्वया तत् सर्वमपि सत्यमेव एव हितचिन्तकस्य वचनं स्वीकारणीयमन्यथा विरूपकमेव भवति । ततः सर्वसामग्रीं मेलयित्वा निर्गमनोद्योगः कृतः ।

एतस्मिन् प्रस्तावे लक्ष्मीमत्या राज्या भणितं—भो स्वामिन् ।

किमर्थं निरर्थो दुराग्रहः क्रियते ? यत्रोभयोः साम्यं तत्र विवाहमैत्र्यादिकं भवति नान्यथा अत एवायुक्तं न कर्तव्यं ।

उक्तं च—

अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति ।
स एव मरणं याति कीलोत्पाटीव वानरः ॥

भगदत्तेनोक्तं—भो मूर्ख, पुरुषपुरुषान्तरे कारणमस्ति । जितारिणा युद्धमध्ये सर्वमपि दीयते, ममाग्रे एवं निरूपितं । अद्याहं तथा न करोमि चेत् ततोऽन्येषामपि भूपतीनामहं न भवामि मान्यः ।

उक्तं च—

" यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितैर्मनुष्यैः
विज्ञानशौर्यविभवार्यगुणैः समेतैः ।
तस्यैव जीवितफलं प्रवदन्ति सन्तः
काकोपि जीवति चिरं च बलिं च भुङ्क्ते ॥ "

ततो महासम्भ्रमेण निर्गतः । लक्ष्मीमत्या भणितं— ' यद्भाव्यं तद्भविष्यति ' । निर्गमनसमये शुभशकुनानि जातानि । तद्यथा-दधिदूर्वाक्षतपात्रं, जलकुंभेषु दंडपद्मनी, प्रसूतवती स्त्रीः, वीणाप्रभृतिकमग्रे सुदर्शनं जातम् । केनचित् पुरुषेणागत्य जितारिराज्ञोऽग्रे निरूपितमेकान्तेन—देव, भगदत्तराज्ञो बलमागतम् । गर्वान्वितेन राज्ञा भणितं—रे वराक, स कोपि महीतलेऽस्ति यो ममोपरि चलति ? अहं जितारिर्नामेति ।

तथा चोक्तम्—

" दृष्टं श्रुतं न क्षितिलोकमध्ये
मृगा मृगेन्द्रोपरि संचलन्ति।
विधुन्तुदस्योपरि चन्द्रमार्कौ
किं वा बिडालोपरि मूषकाः स्युः॥
किं वैनतेयोपरि काद्रवेयः
किं सारमेयोपरि लंबकर्णः।
किं वै कृतान्तोपरि भूतवर्णः
किं कुत्र सैन्योपरि वायसाः स्युः॥ "

यावद् भास्करो नोदेति तावत्तमः। इत्येवं यावद् भणति तावद् गुप्तवृत्त्यागत्य वाराणसीपुरं वेष्टितं भगदत्तेन राज्ञा। कोलाहलं श्रुत्वा महता संभ्रमेण चतुरंगबलेन निर्गतो जितारिः। निर्गमनसमयेऽपशकुनानि जातानि।

तथा चोक्तम्—

" अकालवृष्टिस्त्वथ भूमिकम्पो
निर्घात उल्कापतनं प्रचण्डम्।
इत्याद्यनिष्टानि ततो बभूवु-
र्निवारणार्थे सुहृदो यथैव॥ "

अस्मिन् प्रस्तावे सुदर्शनमंत्रिणा भणितं—हे देव, कन्यां दत्वा सुखेन स्थीयते।

तथा चोक्तम्—

" रक्षन्ति देशं ग्रामेण ग्राममेकं कुलेन च।
कुलमेकेन चात्मानं पृथ्वीत्यागेन पंडिताः॥ "

जितारिणोक्तं—रे मंत्रिन्, किमर्थं बिभेषि ? मम खड्गघातं सोढुं कः समर्थः ।

तथा चोक्तम्—

" कोस्मिन् लोके शिरसि सहते यः पुमान् वज्रघातं
कोस्तीदृग्यस्तरति जलधिं बाहुदण्डैरपारम् ।
कोस्त्यस्मिन्यो दहनशयने सेवते सौख्यनिद्रां
ग्रासैर्ग्रासैर्गिलति सततं कालकूटं च कोपि ॥ "

पुनर्मंत्रिणाऽसमसन्नाहसंयुक्तं परदलं दृष्ट्वा निरूपितं—देव, बहुबलं समागतं युद्धं न क्रियते । जितारिणोक्तं— मन्त्रिन्, ' सत्वेन सिद्धि-र्जयश्च न बहुसामग्र्या यदुक्तं ' । ततो भगदत्तेन दूतः प्रेषितः । दूतलक्षणं—

" मेधावी वाक्पटुश्चैव परचित्तोपलक्षकः ।
धीरो यथोक्तवादी च एतद्दूतस्य लक्षणम् ॥ "

एतादृशो दूतः प्रस्थापितः ।

यतः—

" पुरा दूतः प्रकर्तव्यः पश्चाद् युद्धः प्रकाश्यते ।
दूतेन सबलं सैन्यं निर्बलं ज्ञायते ध्रुवम् ॥ "

तेन दूतेन जितारिराज्ञोग्रे गत्वोक्तं— हे राजन्, मुंडिकां प्रदाय भगदत्तनरेन्द्रस्य सुखेन राज्यं कुरु । अन्यथा नाशो भवति ।

यदुक्तम्—

" अनुचितकर्मारंभः स्वजनविरोधो बलीयसां स्पर्द्धा ।
प्रमदाजनविश्वासो मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि ॥ "

राज्ञोक्तं-रे वराक, किं जल्पसि। रणे ममाग्रे न स्थास्यन्त्येते। 'यद् भावि तद् भवतु' किंतु न ददामि सुतामिति स्वकीयां प्रतिज्ञां सर्वनाशेपि न त्यजामि। यन्महत् पुरुषेणाङ्गीकृतं तन्न त्यजति। तदा राज्ञा क्रुद्धेन दूतमारणाय भटाः समादिष्टाः। ततो मंत्रिणा मंत्रितं दूत मारणमनुचितं। यदुक्तं-भो राजन्, दूतहननात् समंत्री राजा नरकं व्रजति। राजानं विज्ञाप्य दूतो निर्घाटितो मंत्रिणा। ततो दूतेनागत्य भगदत्ताग्रे कथितं-देव, जितारिः स्वभुजबलेन किमपि न गणयति। ततो भगदत्तो युद्धार्थं चलितः। जितारिरपि सम्मुखो भूत्वा स्थितः। तस्मिन् समये किं किं जातं,

तद्यथा—

" दिक्चक्रं चलितं भयाज्जलनिधिर्जातो महाव्याकुलः
पाताले चकितो भुजंगमपतिः क्षोणीधराः कम्पिताः।
भ्रान्ता सुपृथिवी महाविषधराः क्ष्वेडं वमन्त्युत्कटं
वृत्तं सर्वमनेकधा दलपतेरेवं चमूनिर्गमे ॥ "

भगदत्तसैन्यं निर्जितं दृष्ट्वा मंत्री जगाद-हे जितारे, राजन्, पश्य स्वसैन्ये त्रासोऽभूत्। अतो न स्थीयते। राज्ञा जल्पितं-हे मंत्रिन्, किमर्थं कातरो भवसि ? उभयथापि वरं।

उक्तं च—

" जिते च लभ्यते लक्ष्मीः मृते चापि सुराङ्गना।
क्षणविध्वंसिनः कायाः का चिन्ता मरणे रणे ॥ "

पुनर्मंत्रिणा निगदितं-हे राजन्, जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्।

तदुक्तम्—

"नेता यत्र बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः खलु हरेरैरावणो वारणः ।
इत्याश्चर्यबलान्वितोपि बलभिद् भग्नः परैः संगरे
तद्युक्तं ननु दैवमेव शरणं धिक् धिक् वृथा पौरुषम् ॥"

भगदत्तो जितारिपृष्ठे लग्नः । मंत्रिणा निषिद्धः ।

तदुक्तं—

"भीरुः पलायमानोपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा ।
कदाचिच्छूरतां याति मरणे कृतनिश्चयः ॥"

एतज्जनव्यतिकरं श्रुत्वा दृष्ट्वा च मुंडिका जिनदेवं हृदि स्मृत्वा प्रत्याख्यानं कृत्वा परमेष्ठिमंत्रमुच्चार्य कूपे पतिता । सम्यक्त्वप्रभावाज्जलं स्थलं जातम् । तस्योपरि रत्नगृहं । तन्मध्ये सिंहासनं । तस्योपरि निविष्टा सीतावत् स्थिता सा मुंडिका । देवैः पञ्चाश्चर्यं कृतम् । इतो भगदत्तेन राज्ञा प्रतोलीं विदार्य सर्वमपि पुरं लुंटितुमारेभे । यावज्जितारिमन्दिरे भगदत्तः प्रविशति तावद् देवतया स्तंभितः ।

तस्मिन् प्रस्तावे केनचित् पुरुषेण भगदत्तमण्डलेश्वरस्याग्रे मुंडिकावृतान्तो विहितः । तच्छ्रुत्वा प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा मदवर्जितो भूत्वा विनयपूर्वं मुंडिकायाः पादयोः पतितः भगदत्त उक्तवांश्च—भो भगिनि, यन्मया कृतं तदज्ञानतया, तत् सर्वं सहनीयमित्यादि निरूप्य धर्मद्वारं गत्वा जितारिरप्याकारितः । आगतस्य तस्याग्रे तथैवोक्तवान् । ततो

वैराग्यभरभावितान्तःकरणो भगदत्तः पठति स—जिनोक्तो धर्मः प्राणिनां हितं किं किं न करोति, यत उक्तं—" सोयं संसारसिंधौ निविडतरमहाकर्मकान्तारवह्निः।" एवं धर्म एव सहायः। ततः स्वस्वपुत्राय राज्यं वितीर्य भवदत्तनितारिमुंडिकादिभिः प्रव्रज्या गृहीता। अन्येषां बहूनां जीवानां धर्मलाभो जातः। नागश्रिया भणितं—हे स्वामिन्, सर्वमेतत् प्रत्यक्षेण दृष्टं, अतो मम धर्मे मतिर्दृढतरा जाता। मया सम्यक्त्वं गृहीतं। ततोऽर्हद्दासेनोक्त—मेतत् सत्यमतो रोचे, श्रद्दधामि, अन्याभिश्च तथैवोक्तं। ततः कुन्दलतयोक्तं—सर्वमसत्यमतो न श्रद्दधामीति। राज्ञा मंत्रिणा च चिंन्तितं दुष्टेयं। प्रभाते गर्दभं चढाय्यास्या निग्रहं करिष्यामो वयं। पुनरपि चौरेण विमृष्टं दुर्जनस्वभावोयं।

यदुक्तम्—

" न विना परिवादेन रमते दुर्जनो जनः।
काकः सर्वरसान्भुक्त्वा विना मेध्यं न तृप्यति॥"

इति पञ्चमी कथा।

६—सम्यक्त्वप्राप्तपद्मलता—कथा।

ततोऽर्हद्दासः पद्मलतां पृच्छति—भो भार्ये, त्वमपि स्वसम्यक्त्वकारणं कथय। सा करैः संयोज्य कथयति—

अंगविषये चंपापुरे राजा धाडिवाहनः। राज्ञी पद्मावती। श्रेष्ठी वृषभदासो महासम्यग्दृष्टि समस्तगुणसम्पन्नः। भार्या पद्मावती। पुत्री

पद्मश्रीर्महारूपवती । तस्मिन्नेव नगरेऽपरश्रेष्ठी बुद्धदासो बौद्धधर्ममध्ये प्रसिद्धदाता । भार्या बुद्धदासी । पुत्रो बुद्धसिंहः । स बुद्धसिंहो निज-मित्रकामदेवेन सहैकदा कोलाहलेन जिनचैत्यालये गतः । तत्र देवपूजां कुर्वती महारूपवती पद्मश्रीस्तेन बुद्धसिंहेन दृष्टा । श्यामा सा रूपयौवन-सम्पन्ना, मधुरवाक्, कुंभस्तनी, बिम्बोष्ठी, चन्द्रवदना च । एवं विधं पद्म-श्रीरूपमवलोक्य नीचः कामान्धो जातः । महता कष्टेन निजगृहं गत्वा शय्योपरि पतितः । चिन्ताप्रपन्नं पुत्रं दृष्ट्वा मात्रा भणितं—रे पुत्र, केन कारणेन तव भोजनादिकं न प्रतिभाति । महती चिन्ता विद्यते तव । कारणं कथय । लज्जां मुक्त्वा बुद्धसिंहेनोक्तं—हे मात, यदा वृषभदासश्रेष्ठि-पुत्रीं पद्मश्रियमहं विवाहयिष्यामि तदा मम जीवितं नान्यथा । एवं श्रुत्वा बुद्धदास्या निजस्वामिनोऽग्रे पुत्रवृतान्तं सर्वमपि निरूपितं । पित्रागत्य भणितं—रे पुत्र, मद्यमांसाहारिणोऽस्मान् स वृषभदासश्चांडाल-वत् पश्यति, तव कथं कन्यां प्रयच्छति ? अत एव साम्यवस्तुविषये आग्रहः क्रियते नान्यत्र ।

अन्यच्च—

" ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलम् ।
ययोरेव गुणैः साम्यं तयोर्मैत्री भवेद्ध्रुवम् ॥ "

पुत्रेणोक्तं—किं बहुजल्पनेन, तया विना न जीवामि । पित्रोक्त—महो, विषमं कामस्य माहात्म्यं । कामवह्निप्रदीप्तितोऽमृतसिञ्चनेनापि न शाम्यति ।

" तावद्धत्ते प्रतिष्ठां परिहरति मनश्चापलं चैव ताव-
त्तावत्सिद्धान्तसूत्रं स्फुरति हृदि परं विश्वतत्त्वैकदीपम् ।
क्षीणाकूपारवेलावलयविलसितैर्मानिनीनां कटाक्षै-
र्यावन्नो हन्यमानं कलयति हृदयं दीर्घलोलायितानि ॥ "

मूर्खोयं सर्वमपि सुसाध्यं न तु मूर्खचित्तं ।

तथा चोक्तम्—

" प्रसह्यमणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरा—
त्समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदुर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये—
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ "

यो यस्य स्वभावस्तं स शतैरपि शिक्षावचनैर्न त्यजति । पित्रोक्तं—भो पुत्र, स्थिरी भव । तत्कार्यं क्रमेण करिष्यामि ।

तथा चोक्तम्—

" क्रमेण भूमिः सलिलेन भिद्यते
क्रमेण कार्यं विनयेन सिद्ध्यति ।
क्रमेण शत्रुः कपटेन हन्यते
क्रमेण मोक्षः सुकृतेन गम्यते ॥ "

इत्येवं निरूप्य महता प्रपञ्चेन पितृपुत्रौ जैनौ जातौ । तयोर्जैनत्वं दृष्ट्वा वृषभदासश्रेष्ठी महासंतुष्टो भूत्वा भणति—अहो, एतौ धन्यौ, मिथ्यात्वं परित्यज्य सन्मार्गे लग्नौ । इति बुद्धदासेन सह महती मैत्री जाता ।

तथा च—

" ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥ "

एकदा तेन वृषभदासश्रेष्ठिना बुद्धदासः स्वगृहे भोजनार्थ-

मानीतः । भोजनसमये स बुद्धदासो भोजनं न करोति । वृषभदासे-नोक्तं—भो बुद्धदास, किमर्थं भोजनं न करोषि? तेनोक्तं- यदि मम पुत्राय स्वकीयां पुत्रीं ददाति चेत् तदा भुज्यते नान्यथा ।

वृषभदासेनोक्तम्—अहो, सुहृदो येषां गृह आगच्छन्ति ते धन्या, अत एव वयं धन्याः । अवश्यं दास्यामि पुत्रीं । ततः शुभदिने विवाहो जातः । ततः पद्मश्रियं गृहीत्वा बुद्धसिंहः स्वगृहं गतः । पुनरपि बुद्धभक्तौ जातौ । तत् सर्वं दृष्ट्वा श्रुत्वा च वृषभदासश्रेष्ठी विखिन्नो भूत्वा वदत्यहो, गूढप्रपञ्चं कोपि न जानाति ।

उक्तं च—

"सुगुप्तस्यापि दंभस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति ।
कौलिको विष्णुरूपेण राजकन्यां निषेवते ॥"

पुनश्च—

"मायामविश्वासविलासमन्दिरं
दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।
सोनर्थसारं न पतन्तमीक्षते
यथा बिडालो लगुडं पयः पिबन् ॥"

पुनश्च—

"प्राणान्तेपि न भङ्क्तव्यं गुरुसाक्षिश्रुतं व्रतम् ।
व्रतभङ्गो हि दुःखाय प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥"

इत्येवं निरूप्य वृषभदासः श्रेष्ठी तूष्णीं स्थितः । एकदा बुद्ध-दासस्य यो गुरुः पद्मसंघस्तेन पद्मश्रियं प्रति भणितं—भो पुत्रि, सर्व-

धर्माणां मध्ये बौद्धधर्म एव धर्मो नान्यः। पद्मश्रियोक्तं—हे पद्मसंघ, सन्मार्गं परित्यज्य नीचमार्गे कथं मम मनः प्रवर्तते।

तथा चोक्तम्—

" वनेपि सिंहा मृगमांसभक्षकाः
बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता
न नीचकर्माणि समाचरन्ति॥"

अन्यच्च—

" अद्यापि रक्षति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरिणीं खलु पृष्ठभागे।
अंभोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्नि-
मंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति॥"

तथा च—

" निःसौभाग्यो भवेन्नित्यं धनधान्यादिवर्जितः।
भीतमूर्तिः सदा दुःखी व्रतहीनश्च मानवः॥"
आत्मना स्वहितमाचरणीयं
किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।
विद्यते न हि कश्चिदुपायः
सर्वलोकपरितोषकरो यः॥

तत्पद्मश्रीवचनं श्रुत्वा पद्मसंघः स्वगृहं गतः। एकदा पद्मश्रीपिता वृषभदासो मृत्वा स्वर्गं गतः। दुःखेन पद्मश्री-

रतीव दुःखिनी जाता । एकदा वरं प्राप्य बुद्धदासेनोक्तं—हे वधू,—मम गुरुणा तव पितुर्जन्म कथितं मृत्वा वनमध्ये मृगोभूत्। एतद्वचनं श्रुत्वा मनसि महाक्रोधं कृत्वा प्रतारणपरं वचनमभाणि पद्मश्रिया—यद्भवतां गुरव एवंविधा ज्ञातारो भवन्ति तर्हि मया बौद्ध-व्रतं गृह्यते। इत्येवं निरूप्य तेषां बौद्धयतीनां भोजनार्थमामन्त्रणं दत्तं। ते सर्वेपि हर्षिताः समागताः। ततो महतादरेण निजगृहमध्य उपवेशिताः पूजिताश्च। बाह्यप्रदेशे तेषां वामपादस्यैकैकं पादत्राणं गृहीत्वा सूक्ष्मं यथा भवति तथोत्कृत्य भोजनं मध्ये निक्षिप्य सर्वे-पि भोजनं कारिताः प्रशंसिताश्च । गंधलेपताम्बूलादिकं सर्वमपि कृत्वा भणितं—प्रातर्मया बौद्धव्रतं गृह्यते। तैरुक्तं—तथास्तु। ततो निर्गमनसमय एकैकं पादत्राणं न पश्यन्ति । खेटके प्रत्यक्तमस्माकं पादत्राणमेकैकं केन नीतमेतत् कोलाहलं श्रुत्वा पद्मश्रिया भणितं—भवन्तो ज्ञानिनो ज्ञानेन पश्यन्तु। तैरुक्त—मेवंविधं ज्ञानं नास्ति। पद्मश्रिया भणितं—स्वस्वोदरस्थितं पादत्राणं न जानन्ति कथं मम पितुर्गतिज्ञातारः ? तैरुक्तं—किं पादत्राणमस्माकमुदरे तिष्ठति ? पद्मश्रियोक्तमत्र किं संदेहोस्ति ? एवं निरूप्य वामिताः। सूक्ष्मं चर्म-खंडं दृष्ट्वा लज्जिताः। तदनन्तरं बुद्धदासस्याग्रे निरूपितं—रे पापिष्ठ, तवोपदेशेन पद्मश्रिया यदवाच्यं तत्कृतम्। एतत् सर्वं ज्ञात्वा सर्वस्वं गृहीत्वा बुद्धदासेन निजगृहात् पद्मश्रीबुद्धसिंहौ निःसारितौ । पद्म-श्रियोक्तं—हे बुद्धसिंह, मम मातृगृह आवां गच्छावः। तेनोक्तं—परं भिक्षाटनं करोमि न गोत्रमध्ये गच्छामि।

तथा चोक्तम्—

"वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालये पत्रफलादिभोजनम् ।
तृणेषु शय्या वरजीर्णवल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम् ॥"

ततो देशान्तरे चलितौ द्वौ ग्रामाद्बहिः सार्थवाहयोर्मिलितौ । पद्मश्रीरूपं दृष्ट्वा तौ सार्थवाहौ परस्परं लोभं गतौ । परस्परेण विषान्नं भुक्त्वा मृतौ । बुद्धसिंहो भार्यया निवारितोपि रात्रौ विषान्नं भुक्त्वा मूर्च्छां गतः । निजस्वामिशोकं कुर्वन्त्या पद्मश्रिया विभावरी निर्गमिता । प्रभाते केनचिद् बुद्धदासस्याग्रे निरूपितं—हे बुद्धदास, तव पुत्रो मृतः । एतत् वचनं श्रुत्वा महाशोकं कृत्वा च तत्रैवागत्य भणितं—हे शाकिनि, त्वया मम पुत्रो भक्षितः । एतौ सार्थवाहौ च भक्षितौ । किं बहुनोक्तेन मम पुत्रमुत्थापय, अन्यथा तव निग्रहं करिष्यामीत्येवं निरूप्य तस्याः पादमूले पुत्रं संस्थाप्य रोदनं कृतवान् । पद्मश्रिया भणितं—मम यः कर्मोदय आगतः स केन निवार्यते । एवं निश्चित्य कृताञ्जलिर्भूत्वा सा भणति—यदि मम मनसि जिनमार्गनिश्चयोस्ति, यद्यहं पतिव्रता भवामि, यदि मया रात्रिभोजनादिकं निषिद्धमस्ति, तर्हि भो शासनदेवते, मम भर्ता जीवतु । एते सर्वेपि सार्थवाहा जीवन्तु । ततस्तस्या व्रतमाहात्म्येन सर्वेप्युत्थिताः । ततो नगरजनैरबलाबालगोपालादिभिः प्रशंसिता । अहो धन्येयं, ईदृग्विधे रूपे सत्यपि साधुत्वं तदाश्चर्यं ।

उक्तञ्च—

" किं चित्रं यदि राजनीतिनिपुणो राजा भवेद्धार्मिकः
किं चित्रं यदि वेदशास्त्रनिपुणो विप्रो भवेत् पंडितः।
तच्चित्रं यदि रूपयौवनवती साध्वी भवेत् कामिनी
तच्चित्रं यदि निर्धनोपि पुरुषः पापं न कुर्यात्ततः॥ "

एतदाश्चर्यं कृत्वा पूजिता लोकैरपि। ततो देवैः पञ्चाश्चर्यं कृत्वा पूजिता पद्मश्रीः। एतत् सर्वं प्रत्यक्षेण दृष्ट्वा श्रुत्वा च वैराग्यपरः सन् धाडिवाहनो राजा वदति—अहो, जिनधर्मं विहायान्यत्र सर्वेष्टं न लभ्यते। अत एवासौ स्वीकर्तव्यः। ततः स्वपुत्रं नयविक्रमं राज्ये संस्थाप्य धाडिवाहनेन राज्ञाऽन्यैश्च बहुभिर्यशोधरमुनिपार्श्वे तपो गृहीतम्। बुद्धदासबुद्धसिंहादयश्च श्रावका जाताः। केचन भद्र-परिणामिनो जाताः। राज्ञी बुद्धदासी, वृषभदासभार्या पद्मावती, पद्मश्रीप्रभृतयश्च सरस्वत्यर्यिकासमीपे तपो जगृहुः। पद्मलतयोक्तं—हे स्वामिन्, एतत सर्वं मया प्रत्यक्षेण दृष्टमतो मम दृढतरं सम्यक्त्वं जातम्। अर्हद्दासेनोक्तं—भो भार्ये, यत्त्वया दृष्टं तदहं श्रद्दधामि, इच्छामि, रोचे। अन्याभिश्च तथैव भणितं। ततः कुन्दलतयोक्तं—सर्वमेतदसत्यम्। एतत् सर्वमपि राज्ञा मंत्रिणा चौरेण च श्रुत्वा स्वस्वमनसि भणित—महो, पद्मलतया यत् प्रत्यक्षेण दृष्टं तदसत्य-मिति कथमियं पापिष्ठा कुन्दलता निरूपयति। प्रभातसमये गर्दभे चटाप्यास्या निग्रहं करिष्यामो वयम्। पुनरपि चौरेणस्वमनसि भणित—महो, दुष्टस्वभावोयम्।

इति षष्ठी कथा।

७-सम्यक्त्वप्राप्तकनकलता-कथा।

पुनरप्यर्हद्दासश्रेष्ठी कनकलतां प्रति भणति— भो भार्ये, ममाग्रे निजसम्यक्त्वग्रहणकारणं कथय। सा कथयति—

अवन्तिविषये उज्जयिनीनगरे राजा नरपालः। राज्ञी मदनवेगा। मंत्री मदनदेवः। भार्या सोमा। श्रेष्ठी समुद्रदत्तः। भार्या सागरदत्ता। पुत्र उमयः। पुत्री जिनदत्ता। कौशाम्बीनगरे जिनदत्तपरमश्रावकस्य विवाहयितुं दत्ता। स उमयः ससव्यसनाभिभूतो जातः। पितृमातृभ्यां निवारितोपि दुर्व्यसनं न मुञ्चति। ताभ्याममाणि—उपार्जितं को लंघयति। प्रतिदिनं नगरमध्ये चौरव्यापारं करोति। परद्रव्यापहारं क्रियमाणमुमयं रात्रौ यमदंडतलवरेण दृष्ट्वा श्रेष्ठिप्रतिपन्नेन बहुवारान्मोचितो न मारितः। यमदंडेन भणित—महो, एकोदरोत्पन्ना अपि न सर्वे सदृशा भवन्ति। जिनदत्ता साध्वी जाता, असौ महा पापीयान् जातः।

तथा च—

" वल्ली जाता सदृशकटुका स्तुम्बिका स्तुम्बिनीनां
शब्दायन्ते सरसमधुरं शुद्धवंशे विलग्नाः।
अन्यैर्मूढैर्वपुषि निहता दुस्तरं तारयन्ति
तेषां मध्ये ज्वलितहृदयाः शोणितं संपिबन्ति॥ " (१)

एकदा यमदंडेन राज्ञो हस्त उमयं दत्वा भणितं—देव, राजश्रेष्ठिसमुद्रदत्तस्य पुत्रोयमुमय नामेति सहस्रधा निवार्यमाणोपि तस्करव्यापारं न त्यजति। अधुना देवस्य मनसि यद्विद्यते तत् करोतु। राज्ञोक्तं—समुद्रदत्तस्यैकदेशगुणोपि नास्ति कथं तस्य पुत्रो

भवतीति । ततः समुद्रदत्तमाकार्य भणितं राज्ञा—भो समुद्रदत्त, एनं दुष्टं स्वगृहान्निर्घाटय, नो चेदनेन सह तवाप्यभिमानहानिर्भविष्यति।

तथा च—

" दुर्जनजनसंसर्गे साधुजनस्यापि दोषमायाति ।
दशमुखकृतापराधे जलधिर्गभीरबन्धनं प्राप्तः ॥
सर्वथाऽनष्टनैकत्वं विपदे भतशालिनाम् ।
नारिहारघटीपार्श्वे ताड्यते पश्य झल्लरी ॥ "

स्वभार्यां प्रति समुद्रदत्तो भणति—भो भार्ये, असौ झटिति निर्घाटनीयोऽन्यथा विरूपकं भवितुमर्हति ।

तथा चोक्तम्—

" उत्कोचं प्रीतिदानं च द्यूतद्रव्यं सुभाषितम् ।
चौरस्यार्थविभागं च सद्यो जानाति पण्डितः ॥ "

" त्यजेदेकं कुलस्यार्थे " इति ।

तथा च—

बहुभिर्न विरोद्धव्यं दुर्जयो हि महाजनः ।
स्फुरन्तमपि नागेन्द्रं भक्षयन्ति पिपीलिकाः ॥ "

ततो निजगृहान्निर्घाटित उभयः समुद्रदत्तेन । ततो माता दुःखिनी भूत्वा भणति ।

तथा च—

" जलनिधिपरतटगतमपि करतलमायाति यस्य भवितव्यम् ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति । "

ततो निर्गत्य सार्थवाहेन सहोमयः स्वभगिनीसमीपे कौशाम्बी नगरीं गतः। जिनदत्तया स्वबन्धुमवलोक्य विरूपकां वार्तां च श्रुत्वा मन्दादरः कृतः।

तथा चोक्तम्---

"वार्ता च कौतुकवती विशदा च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंगनाभेः।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत् त्रयं प्रसरतीति किमत्र चित्रम्॥"

उमयेनोक्तं--मन्दभाग्योहं। ममात्राप्यापन्न त्यजति।

तथा चोक्तम्---

"खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके
छायार्थी समुपेति सत्वरमसौ बिल्वस्य मूलं गतः।
तत्रोच्चैर्महता फलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितास्तत्रापदामास्पदम्॥"

पुनश्च---

"कैवर्तकर्कशकरग्रहणच्युतोपि
जाले पुनर्निपतितः शफरो वराकः।
जालात्ततो विगलितो गिलितो बकेन
वामे विधौ बत कुतो व्यसनान्निवृत्तिः॥"

पुनरपि वैराग्यपरायणोनोमयेनोक्त--महो कष्टं खलु पराश्रयः।

तथा चोक्तम्—

" उडुगणपरिवारो नायकोप्यौषधीना-
मम्रुतमयशरीरः कान्तियुक्तोपि चन्द्रः ।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः
परसदननिविष्टः को न धत्ते लघुत्वम् ॥ "

इत्येवं निरूप्य जिनालयं गतः । तत्र श्रुतसागरमुनिसमीपे धर्मश्रवणं कृत्वा सप्तव्यसननिवृत्तिं कृत्वा दर्शनपूर्वकं श्रावकव्रतं गृहीत्वा च श्रावको जातः । अपरमप्यज्ञातं फलभक्षणव्रतं गृहीतं । गुणिनां प्रसंगेन गुणहीना अपि गुणिनो भवन्ति ।

ततः सन्मार्गस्थमुभयं ज्ञात्वा महता गौरवेण स्वगृहमानीतः । तस्मै बहुद्रव्यं दत्तम् ।

तथा चोक्तम्—

" यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोपि सहायताम् ।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोपि विमुञ्चति ॥ "

पुनश्च—

पातितोपि कराघातैरुत्पतत्येव कंदुकः ।
प्रायेण साधुवृत्तानामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥ "

एकदोज्जयिनीनगरात्सार्थवाहाः समागताः । तैः सन्मार्गस्थमुभयं दृष्ट्वा प्रशंसितः । त्वं धन्योसि , त्वमुत्तमसंगे उत्तमो जातोसि, इत्येवमनेकधा स्तुतः ।

तथा चोक्तम्—

" संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।

स्वातौ सागरशुक्तिसंपुटगतं मुक्ताफलं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः संसर्गतो जायते ॥ ”

पुनश्च—

“ यथा चन्द्रं विना रात्रिः कमलेन सरोवरम् ।
तथा न शोभते जीवो विना धर्मेण सर्वदा ॥ ”

ततो बहुतरं क्रयाणकं गृहीत्वा सार्थवाहैः सह निजनगरं प्रति निर्गत उभयः । एकस्मिन् दिने कतिपयजनैः सह मातृपितृदर्शनौत्सुक्यातिशयेनोभयोऽग्रतो भूत्वा निर्गतः । रात्रौ प्रमादवशात् मार्गं परित्यज्य महाटव्यां पतितः । प्रभाते सूर्योदयो जातः । ततः क्षुधादिपरिपीडितैर्मित्रैः रूपरसगंधवर्णस्वादयुक्तानि मरणकारणानि किंपाकस्य फलानि दृष्ट्वा भक्षितानि । तदनन्तरमुभयस्य दत्तानि । तेनोक्तं—किंनामधेयानि ? तैरुक्तं—नाम्ना किं, कटुकनीरसदुर्गंधस्वादरहितानि एवमादीनि परित्याज्यान्यानि फलानि भक्षयित्वाऽऽत्मानं संतर्पय । उभयेनोक्तं—अज्ञातफलानां भक्षणे मम नियमोऽस्ति । न भक्षितानि । ततः सहायाः सर्वे मूर्च्छिताः सन्तो भूमौ पतिताः । तेषां शोकेन दुःखी भूत्वोभयो वदति—अहो, ईदृग्विषस्य फलस्य मध्ये कालकूटमस्ति को जानाति । तदनन्तरमुभयस्य व्रतनिश्चयपरीक्षणार्थं मनोज्ञं स्त्रीरूपं धृत्वा वनदेवतयाऽऽगत्य भणितं—रे पथिक, अस्य कल्पवृक्षस्य फलानि किमर्थं न भक्षितानि ? तव मित्रैर्यानि फलानि भक्षितानि तान्यन्यानि विषवृक्षस्य फलानि । असौ कल्पवृक्षः । अस्य वृक्षस्य फलानि पुण्यैर्विना न प्राप्यन्ते । अस्य वृक्षस्य फलानि

योऽस्ति स सर्वव्याधिरहितो भवति । न कदाचिदपि म्रियते । दुःखं न विलोकयति, ज्ञानेन सचराचरं जानाति । पूर्वमतीव वृद्धा, इन्द्रेणैतत्फलभक्षणार्थमहमत्र स्थापिता । एतत् फलभक्षणेनाहं नवयौवना जातेति । एतद्वचनं श्रुत्वोभयेनोक्तं—भो भगिनि, ममाज्ञातफलभक्षणे नियमोस्ति, किमेतैरतिशयैः । किंतु यल्ललाटलिखितं तदेव भवति नान्यदिति किं बहुजल्पितेन । उभयस्यैतद्धैर्यं दृष्ट्वा वनदेवतयोक्तं—भो पथिक, तव तुष्टाहं वरं वाञ्छ । तेनोक्तं—यदि तुष्टासि तर्हि मम सहायानुत्थापय । उज्जयनीनगरीमार्गं च दर्शय । तयोक्तं—तथास्तु ।

तथा च—

" उद्यमः साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः
षडेते यस्य तिष्ठन्ति तस्य देवोपि शंक्यते ॥ "

ततः सर्वेप्युत्थापिताः तदनन्तरं तैर्भणितं—भो उभय, तव प्रसादेन वयं जीविताः । तव व्रतमाहात्म्यमद्य दृष्टमस्माभिः । तव किमप्यगम्यं नास्ति ।

ततस्तया मार्गोपि दर्शितः । सहायैः सह स्वगृहमागत उभयः । सच्चरित्रवन्तमुभयं दृष्ट्वा पूर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा च पितृमातृराजामंत्रिस्वजनपरिजनादिभिः प्रशंसितः । अहो धन्योसि त्वं, महत्संयोगेन त्वमपि पूज्यो जातः ।

तथा च—

" उत्तमैः सह संगत्या पुमानाप्नोति गौरवम् ।
पुष्पैश्च सहितस्तन्तुरुत्तमाङ्गेन धार्यते ॥ "

द्वितीयदिने नगरदेवतयागत्य यथा नगरलोकाः पश्यन्ति तथो-मयस्य रत्नमंडपस्योपरि महाभिषेकः, पूजा, पञ्चाश्चर्यं च कृतमेतत् सर्वं दृष्ट्वा राज्ञा भणितं—जिनधर्म एव सर्वापदं हरति नान्यः।

तथा च—

" धर्मः शर्म परत्र चेह च नृणां धर्मोन्धकारे रविः
सर्वापद् प्रशमक्षमः सुमनसां धर्मो निधीनां निधिः ॥
धर्मो बन्धुरबान्धवे पृथुपथे धर्मः सुहृन्निश्चलः
संसारोरुमरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात्परः ॥ "

तदनन्तरं स्वस्वपुत्रं स्वस्वपदे संस्थाप्य नरपालेन राज्ञा, मदनवेगेन मंत्रिणा, राजश्रेष्ठिना समुद्रदत्तेन, पुत्रेणोमयेन चान्यैश्च बहुभिः सहस्त्रकीर्तिमुनिनाथसमीपे तपो गृहीतं। केचन श्रावका जाताः केचन भद्रपरिणामिनश्च जाताः।

राज्ञ्या मदनवेगया, मंत्रिभार्यया सोमया, राजश्रेष्ठिभार्यया सागर-दत्तयाऽन्याभिश्च बह्वीभिरनन्तमत्यार्यिकासमीपे तपो गृहीतम्। काश्चिच्च श्राविका जाताः।

ततः कनकलतया भणितं—हे स्वामिन्, एतत् सर्वं मया प्रत्य-क्षेण दृष्टं। तदनन्तरं मम दृढतरं सम्यक्त्वं जातं। अर्हद्दासेनोक्तं—भो भार्ये, यत् दृष्टं त्वया तत् सर्वमहं श्रद्दधामि, इच्छामि, रोचे। अन्याभिश्च तथैव भणितं। कुन्दलतयोक्त—मेतत् सर्वमप्यसत्यम्। ततो राज्ञा मंत्रिणा चौरेण स्वमनसि भणित—महो, कनकलतया यत् प्रत्यक्षेण दृष्टं तत् कथमसत्यमियं पापिष्ठा कुन्दलता निरूपयति। प्रभातसमये गर्दभे चटाप्यास्या निग्रहं करिष्यामो वयं। पुनरपि

चौरेण स्वमनसि भणितं—योऽविद्यमानं दोषं निरूपयति स नीचगति-भाजनं भवति।

तथा चोक्तम्—

" न सतोन्यगुणान्हिंस्यान्नासतः स्वस्य वर्णयेत्।
तथा कुर्वन्प्रजायेत नीचगोत्रान्वितः पुमान्॥ "

इति सप्तमी कथा।

८—सम्यक्त्वप्राप्तविद्युल्लता—कथा।

पुनरपि विद्युल्लतां प्रत्यर्हद्दासः श्रेष्ठी भणति—भो भार्ये, स्वसम्य-क्त्वग्रहणकारणं कथय। सा कथयति—भरतक्षेत्रे कौशाम्बी नगरी। राजा सुदंडः। राज्ञी विजया। मंत्री सुमतिः। भार्या गुणश्रीः। राजश्रेष्ठी सूरदेवः। भार्या गुणवती। एकदा तेन सूरदेवेन मंगलदेशे गत्वा वाणि-ज्यार्थं मनोज्ञा वडवाऽऽनीता। सुदण्डराज्ञे दत्ता। तेन राज्ञा बहुद्रव्यं दत्वा सूरदेवः पूजितः प्रशंसितश्च। एकदा तेन सूरदेवेनागमोक्त-विधिना गुणसेनभट्टारकप्रतिलाभतस्तस्मै आहारदानं दत्तं। तद्दान-फलेन सूरदेवगृहे देवैः पञ्चाश्चर्यं कृतम्। तस्मिन्नेव नगरेऽपरश्रेष्ठी गतद्रव्यः सागरदत्तः। भार्या श्रीदत्ता। पुत्रः समुद्रदत्तः। तेन समुद्रदत्तेन सूरदेवदत्तसत्पात्राहारदानफलातिशयं दृष्ट्वा मनसि चिन्तितम्—अहो, अहं गतद्रव्यः कथं दानं करोमि? सूरदेवस्य री-त्या द्रव्योपार्जनं कृत्वाऽहमपि दानं करिष्यामि।

तथा च—

" यस्यार्थस्तस्य मित्राणि यस्यार्थस्तस्य बान्धवः ।
यस्यार्थः स पुमांल्लोके यस्यार्थः स च पंडितः ॥ "

पुनः—

" इह लोके तु धनिनां परोपि स्वजनायते ।
स्वजनोपि दरिद्राणां तत्क्षणाद्दुर्जनायते ॥ "

इत्येवं पर्यालोच्य चतुर्भिर्मित्रैः सह मंगलदेशे चलितं । मित्रैर्भणित—महो समुद्रदत्त, दूरदेशान्तरे कथं गम्यते ? तेनोक्तं— व्यवसायिनामस्माकं किमपि दूरं नास्ति ।

तथा चोक्तम्—

" कोतिभारः समर्थानां किं दूरे व्यवसायिनाम् ।
को विदेशः सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥ "

पुनः—

" परदेशभयाद्भीता बह्वालस्याः प्रमादिनः ।
स्वदेशे निधनं यान्ति काकाः का पुरुषा मृगाः ॥ "

पलाशग्रामे गत्वा समुद्रदत्तेन मित्रैः सह भणित—महो, यत्र कुत्रापि निजक्रयाणकं याति तत्र विक्रेतव्यम्, ग्रहणयोग्यं वस्तु गृहीत्वा च त्रिवर्षानन्तरमत्रस्थाने आगन्तव्यमिति स्थानसीमां कृत्वा त्रयोपि निर्गताः । समुद्रदत्तः पथि श्रान्तस्तत्रैव स्थितः ।

तथा चोक्तम्—

" कष्टं खलु मूर्खत्वं कष्टं खलु यौवनेपि दारिद्र्यम् ।
कष्टादपि कष्टतरं परगृहवासः प्रवासश्च ॥ "

तत्र कुटुम्ब्यशोको घोटकव्यवसायी । भार्या वीतशोका । पुत्री कमलश्रीः । स अशोको घोटकरक्षार्थं भृत्यं गवेषयतीति वार्तां श्रुत्वा समुद्रदत्तोऽशोकपार्श्वे गत्वा भणत्यहं तव घोटकरक्षां करोमि । मम किं यसच्छसि ?

तथा चोक्तम्—

"तावद् गुणा गुरुत्वञ्च यावन्नार्थयते पुमान् ।
अर्थी चेत् पुरुषो जातः क गुणाः क च गौरवम् ॥."

अशोकेनोक्तं—दिनं प्रति वारद्वयं भोजनं, षण्मासेषु त्रिवलिका, (?) कम्बलश्च पादत्राणं च । त्रिवर्षानन्तरं घोटकसमूहमध्ये ईप्सितं घोटकद्वयं गृहीतव्यमिति । तेनोक्तं—'तथास्तु' इति सविनयं घोटकसमूहं रक्षति समुद्रदत्तः ।

तथा चोक्तम्—

"प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखीयति सुखहेतोः को मूढः सेवकादपरः ॥"

स समुद्रदत्तः प्रतिदिनं तस्याः कमलश्रिया मनोज्ञानि फलानि पुष्पाणि कन्दानि च ददाति । तस्या अग्रे हृद्यां स्वकीयां गीतकलां च दर्शयति सः । सा कमलश्रीः कालेन तेन समुद्रदत्तेन स्ववशीकृता ।

उक्तं च—

" हरिणानपि वेगशालिनो ननु बध्नन्ति वने वनेचरा ।
निजगेयगुणेन किं गुणः कुरुते कस्य न कार्यसाधनम् ॥ "

पुनः—

" बाला खेलनकाले दत्तैर्दिव्यफलाशनैः ।
मोदते यौवनस्था तु वस्त्रालंकरणादिभिः ॥
हृष्येन्मध्यवयाः प्रौढरतिक्रीडासकौशलैः ।
वृद्धा तु मधुरालापैर्गौरवेणातिराजते ॥ "

तस्या मनस्येवं प्रतिभासते मम भर्ताभवत्विति चिन्त्यमानाऽहर्निश-मनुरक्ता जाता ।

तथा च—

" नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥ "

दिनावध्यनन्तरं समुद्रदत्तेनोक्तं—हे प्रिये, तव प्रसादेनाहमतीव सुखी जातः । सेवा मर्यादा च जाता । अहं निजदेशं व्रजामि । अतो नियमेनोक्तं सूक्तमसूक्तं वा तत् सर्वं सहनीयं त्वया । इति वचनं श्रुत्वा गद्गद्वचना सा ब्रवीति—हे नाथ, त्वया विना कथं जीवामि । अत एव नियमेन त्वया सार्द्धमागच्छामि । तेनोक्तं—त्वमीश्वरपुत्री सुकुमाराऽहं पथिको महादरिद्रो मम निर्धनकस्य समीपे कुतः सुखं यत् सुखं तवात्रास्ति तत् सुखं वहिर्नास्ति । अत एव मया सह तवागमन-मनुचितं निर्धनस्य कष्टं दारैरपि त्यज्यते । तयोक्तं—किं बहुनोक्तेन क्षणमपि त्वया विना न जीवामि । बहुधा निवारितापि न तिष्ठामि । तेनोक्तं—तर्ह्यागच्छ यत्त्वयोपार्जितं तद् भविष्यति ।

तथा च—

" भवितव्यं प्रभवत्येव नालिकेरफलाम्बुवत् ।
गन्तव्यं प्रगच्छत्येव गजभुक्तकपित्थवत् ॥ "

चढ़ाई की। लक्ष्मीमतीने तब अगत्या कहा—अच्छा जाइए, जो होना होगा वह तो होगा ही। भगदत्तको प्रयाण करते समय कई शुभ शकुन हुए। दही, दूर्वा, अक्षत-पात्र, कमल-पुष्प युक्त जलभरे घड़े और पुत्रवती स्त्रियाँ आदि सामने दिखाई पड़ीं।

उधर किसीने आकर जितारिसे कहा—महाराज, भगदत्त सेना लेकर आप पर चढ़ आया है। उसके लिए कोई उपाय कीजिए। यह सुन जितारिने उस मनुष्यसे कहा—संसारमें ऐसा कौन मनुष्य है जो मेरे ऊपर चढ़ाई कर सके ! सिंह पर हरिणने, राहु पर चंद्रमा और सूर्यने, विलावपर चूहोंने, गरुड़ पर साँपने, कुत्ते पर बिल्लीने, यमराज पर प्राणियोंने और सेना पर कौओंने कभी चढ़ाई की हो, यह बात न कभी देखी गई और न सुनी गई। बात यह है कि जबतक सूर्यका उदय नहीं होता है तभीतक अंधकार रहता है। जितारि यह कह ही रहा था कि भगदत्तने छुपे हुए आकर बनारसको चारों ओरसे घेर लिया। जितारिने जब भगदत्तकी सेनाका कोलाहल सुना तब उसने भी अपनी सब सेना लेकर बड़े वेगसे भगदत्तका साम्हना किया। जितारिको प्रयाण करते समय कई अपशकुन हुए—जैसे अकाल वृष्टि, भूमिका काँपना, प्रचण्ड उल्काका गिरना आदि। ये अशुकन क्या हुए मानों मैत्री-भावसे राजाको युद्ध करनेके लिए मना करने लगे। इन अपशकुनोंको देखकर मंत्रीने कहा—महाराज, मेरी समझमें तो भगदत्तके साथ राजकु-

तथा चोक्तम्—

" शक्यो वारयितुं जलेन दहनं छत्रेण सूर्यातपः
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम् ।
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दंडेन गोगर्दभौ
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥ "

अशोकेनोक्त—मसौ मन्दभाग्यः । यो मन्दभाग्यस्तस्य समीचीनं वस्तु नो भातीत्येवं निरूप्य गृहं गतः । सर्वपरिवारलोकं पृष्टवान्—केनास्य घोटकभेदो दत्तः ? समस्तपरिवारलोकेन शपथं कोशपानं कृत्वा स्वप्रतीतिर्दत्ता । केनचिद् धूर्तेनाशोकस्याग्रे कमलश्रीचेष्टितं निरूपितं सर्वमपि । ततोऽशोकेन स्वमनसि चिन्तितमहो दुष्टेयं ।

तथा चोक्तम्—

" जले तैलं खले गुह्यं पात्रदानं मनागपि ।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥ "

अन्यच्च—

" विचरन्ति कुशीलेषु लंघयन्ति कुलक्रमम् ।
न स्मरन्ति गुरुं मित्रं पतिं पुत्रं च योषितः ॥
सुखदुःखजयपराजयजीवितमरणानि ये विजानन्ति ।
मुह्यन्ति तेऽपि नूनं तत्त्वविदश्चेष्टितो स्त्रीणां ।
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता ।
निःस्नेहं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ "

पुनरप्यशोकेन भणितं—यदि तुरंगमं न ददामि तर्हि प्रतिज्ञाभंगः । महता प्रतिज्ञाभंगो न करणीयः ।

तथा चोक्तम्—

" दिग्गजकूर्मकुलाचलफणपतिविधृतापि चलति वसुधेयम् ।
प्रतिपन्नममलमनसां न चलति पुंसां युगान्तेपि ॥ "

यदि पुत्र्युपरि कोपं करोमि तर्हि सा मर्मज्ञा । अन्यत् किञ्चिन्निधानादिकं कथयिष्यति ।

तथा चोक्तम्—

" सूपकारं कविं वैद्यं वन्दिनं शस्त्रधारिणम् ।
स्वामिनं धनिनं मूर्खं मर्मज्ञं न प्रकोपयेत् ॥ "

इत्येवं विचार्य समुद्रदत्तस्य द्वौ घोटकौ कमलश्रीश्च दत्ता । शुभमुहूर्ते विवाहः संजातः । कतिपयदिनानन्तरमशोकेन समुद्रदत्तस्य यथायोग्यं निरूपितं । मित्रैः सह समुद्रदत्तः स्वदेशे चलितः । ततः पूर्वमशोकेन नाविकः संकेतितः—रे नौवाहक, अस्य समुद्रदत्तस्य समुद्रोत्तरणार्थं घोटकद्वयं याचय । धीवरेणोक्त—मघटितं मया कथं लभ्यते ।

तथा चोक्तम्—

" किवणाणं धणं णाया णागाणं मणि केसराइं सीहाणं ।
कुलवालियाण थणया किंत्ति धणं खु मणुयाणं ॥ "

अशोकेनोक्तं—किं बहुनोक्तेन याचय । तेनोक्तं—तथास्तु । ततोऽशोको निजपुत्र्याः शिक्षां दत्वा व्याघुट्य स्वगृहमागतः । समुद्रदत्तः सहायादिभिः सह समुद्रतीरे गतः । समुद्रः कीदृशो, लोलत् कल्लोलमालः फेनचन्द्राभोयं कल्पान्तकेलिकलितजलधरनक्रचक्रप्रवाल ईदृक्समुद्रः । कैवर्तकेन जलतारणमूल्येन घोटकद्वयं याचितं । कुपितेन समुद्रदत्तेनोक्तं—रे नीच, निःशंकितं युक्तं विहाय स्फुटित-

वराटकमात्रमपि न ददामि घोटकयोः का वार्ता। एवं चेन्नाहं समुद्रपारं प्रापयामि भवन्तं। एतद्वचनं श्रुत्वा कमलश्रिया समुद्रदत्तं प्रति भणितं–हे कान्त, जलगामिनं तुरंगममारुह्याकाशगामिनं हस्ते धृत्वा समुद्रमुत्तीर्य निजगृहं गम्यते आवाभ्यां। समुद्रदत्तस्तथैव कृत्वा निजगृहं गतः। एकदा गगनगामी तुरंगमः समुद्रदत्तेन सुदण्डराज्ञे दत्तः। तेन राज्ञाऽर्द्धं राज्यं दत्तं। निजपुत्र्यनंगसेना विवाहयितुं दत्ता। ततः समुद्रदत्तः सुखी भूत्वा परत्र साधनं दानं पूजादिकं सर्वमपि करोति। एकदा राज्ञाऽसावश्वः परममित्रसूरदेवश्रेष्ठिहस्ते प्रयत्नार्थं दत्तः। उत्तमानां मैत्री आधिपत्येपि न गच्छति।

यदुक्तम्—

" पापं निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥ "

स श्रेष्ठी महता यत्नेन पालयति। एकदा सूरदेवश्चिन्तयति असावश्वो नभोगामी। अस्योपयोगस्तीर्थयात्राकरणेन किमर्थं न गृह्यते?

यदुक्तं—

" यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महा-
नादीप्ते भवने प्रकूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥ "

ततो लालयित्वा वारत्रयं करेण ताडयित्वाश्वमारुह्याष्टम्यादि-

पर्वसु श्रीशत्रुञ्जयादिमहातीर्थेषु यात्रां करोति । शाश्वतचैत्येष्वपि च । एवं कालो गच्छति ।

यतः—

" धर्मशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
इतरेषां मनुष्याणां निद्रया कलहेन च ॥ "

इति पत्नीपतिः सुखेनावतिष्ठति । अस्मिन्नवसरे केनाप्युक्तं—देव, कौशाम्ब्यां सूरदेवश्रेष्ठिसमीपे नभोगामी तुरंगमोस्ति । स श्रेष्ठी तमारुह्यास्याः पत्न्या उपरि देवपूजार्थं याति गगनमार्गे ।

यदुक्तं—

" अपि स्वल्पतरं कार्यं यद्भवेत्पृथ्वीपतेः ।
तन्नवाच्यं सभामध्ये प्रोवाचेदं बृहस्पतिः ॥
चारणैर्वन्दिभिर्नीचैर्नापितैर्मालिकैस्तथा ।
न मंत्रं मतिमान् कुर्यात् सार्धं भिक्षुभिरेव च ॥ "

श्रुत्वा पत्नीपतिस्तूष्णीं स्थितः । अन्यदा गगनमार्गे गच्छन्तमश्वं दृष्ट्वा पत्नीपतिनोक्तं दुर्बलोप्यसौ प्रधानगुणकृद् भाति ।

यदुक्तम्—

" मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेतिनिहतः
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यामपुलिना ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालवनिता
तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु नराः ॥ "

तदनन्तरं सुभटानामग्रे निरूपितं—यो वीर एनमश्वमानीय मम समर्पयति तस्यार्द्धराज्यं स्वपुत्रीं च ददामि ।

यदुक्तं—

" अतिमलिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ॥ "

सर्वसुभटेष्वधोमुखेषु कुन्तलनामाब्रवीत्—स्वामिन्नहमेनमानयामीति प्रतिज्ञां कृत्वा तत्र तेन सर्व उपाया विलोकिताः, परं श्रेष्ठि-गृहे एकोप्युपायो न स्फुरति तस्येति विखिन्नो जातः। कियता कालेन जिनधर्मोपायं लब्ध्वा कस्मिंश्चिद् ग्रामे गत्वा मुनिपार्श्वे कपटतया देववन्दनादिकं शास्त्रं पठित्वा विशिष्टश्राद्धो जातः। कुन्तलो ब्रह्मचारी, सचित्तपरिहारी, प्रासुकाहारी, उभयकालावश्यकारी, भूमिसंस्थारी, चेत्यादिविशेषणयुक्तः षष्ठाष्टमादितपः करोति। तपः प्रभावाल्लोकैः पूज्यते।

यदुक्तम्—

" सुजनस्य हि संसर्गैर्नीचोपि गुरुतां व्रजेत्।
जाह्नवीतीरसम्भूतो जनैरेणवपि वन्द्यते ॥ "

क्रमेण कौशाम्ब्यामागतः सूरदेवकारितचैत्यालय एत्य कपटाच्चक्षुरोगमिषेण पटकं बध्वा स्थितः। लोकानां पृच्छतां कथयति—मम महतीचक्षुर्व्यथा वर्तते। अहमुपवासं करिष्ये।

यदुक्तम्—

" अक्षरोगी कुक्षिरोगी शिरोरोगी व्रणी ज्वरी
एतेषां पञ्चवस्तूनां लंघनं परमौषधम् "

सूरदेवेन पूजार्थमागतेन पृष्टो देवलकपार्श्वे। हे देवलक, क एषः। तेनोक्तं—हे श्रेष्ठिन्, नयनव्यथाव्याधितो महातपस्वी ब्रह्मचार्य-

तिथिः समागतोस्ति । तद्वचः श्रुत्वा श्रेष्ठिना तस्याग्रे गत्वा कथितं—भो धार्मिक, त्वामहं वन्दे । मम प्रसादं कुरु । गृहे पारणार्थमागच्छ । तत्र तव नयनौषधलाभो भावी । भेषजं विना नयनरोगोपशमो न भविष्यति । तेन मायाविनोक्तं—हे श्रेष्ठिन्, ब्रह्मचारिणां गृहे स्थित्यनुचिता । श्रेष्ठ्याह—निवृत्तरागस्य पुंसो गृहमिदं वनमिदमिति भेदो न ।

यदुक्तम्—

"वनेपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहं तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥"

इत्यादि कथनेन सम्बोध्य कथंचिद् गृहमानीतो ब्रह्मचारी । केनचित् धूर्तेन तं मायाविनं दृष्ट्वा श्रेष्ठिनोग्रे भणितं—भो श्रेष्ठिन्, नासौ ब्रह्मचारी किन्तु डिम्भकारी तव गृहं मुषित्वा यास्यति । असौ बकवत्तपश्चरणं करोति । एतच्छ्रुत्वा श्रेष्ठिनोक्तं—जितेन्द्रियस्य निन्दा सर्वथा न क्रियते । जितेन्द्रियो लोके दुर्लभः । निन्दकः पापभाक् स्यात् ।

धार्मिकेणाभाणि—भो श्रेष्ठिवर, अस्य पुण्यवत उपरि कोपं मा कुरु । श्रेष्ठिना चिन्तितमहो, सत्पुरुषोयमस्य निन्दास्तुतिविधायिनि हर्षप्रद्वेषौ न स्तः । श्रेष्ठिसमीपस्थैर्जनैर्भणित—मस्य धार्मिकस्याहंकारो नास्त्येव । ततस्तेन मायाविना कथितं—यः सर्वज्ञो भवति स गर्वं न करोत्यन्यस्य का वार्ता

तदुक्तम्—

" अहंकारेण नश्यन्ति सन्तोपि गुणिनां गुणाः ।
कथं कुर्यादहंकारं गुणार्थी गुणनाशनम् ॥ "

ततः सूरदेवेन महाभक्त्या गृहं समानीय भोजनं कारयित्वा यत्र घोटकोस्ति तत्र विजने स्थापितः । प्रतिदिनं वैयावृत्तं करोति श्रेष्ठी स्वयमेव । स धार्मिकोप्यनुदिनमुपदेशदानेन श्रेष्ठिनं संतोषयत्येव– हे श्रेष्ठिन्, त्वं धन्यो यज्जिनोक्तानि पट् कर्माणि करोपि मुनयोपि तव गृहे भिक्षार्थमागच्छंति ।

यदुक्तम्—

" देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तथा ।
दानं चेति गृहस्थानां पट् कर्माणि दिने दिने ॥ "

एवं सति निद्राविलासिनीवेष्टितमेकदा श्रेष्ठिनं दृष्ट्वा रात्रावश्वमारुह्याकाशमार्गे निर्गतो वर्णी । कशाघातमसहमानेन भूमौ पातितो वर्णी । ततो वर्णिनोक्तं–गजमरणवन्मरणं शरणं जातं मम । घोटकोपि विजयार्द्धपर्वतोपरिस्थितसिद्धकूटचैत्यालयं पूर्वाभ्यासेन गतः । त्रिप्रदक्षिणीकृत्य देवाग्रे स्थितः । अस्मिन्नेवावसरेऽचिन्त्यगतिर्मनोगतिश्चेति चारणयुगलं तत्र सिद्धकूटचैत्यालये समागतं । केनचिद् विद्याधरपतिनाऽगत्य वन्दनां कृत्वाऽचिन्त्यगतिर्मुनिः पृष्टो–भो स्वामिन्, ममाग्रे घोटकवृत्तान्तं निरूपयेति । अवधिज्ञानेनाचिन्त्यगतिना समस्तमपि घोटकस्य वृत्तान्तं निरूपितमपरं च हे खगपते, अश्वनिमित्तं सूरदेवश्रेष्ठिनो महोपसर्गो वर्तते । अत एव उपलालयित्वा त्रिभिर्वारं च करेण हत्वा चाश्वमारुह्य श्रेष्ठिपमीपे धर्मरक्षणार्थं झटिति गच्छ ।

यदुक्तम्—

" भूष्टं कुलं कूपतडागवापी
प्रभ्रष्टराज्यं शरणागतं च ।
गां ब्राह्मणं जीर्णसुरालयं च
य उद्धरेत्पुण्यचतुर्गुणं स्यात् ॥ "

एतद्वचनं श्रुत्वा घोटकमारुह्याकाशमार्गेण यावत् कौशाम्बी-नगर्यामागच्छति खगपतिस्तावत् तत्र किं जातं, निद्राविलासिनीं परित्यज्य यावदुत्तिष्ठति तावत् घोटको नष्टः। श्रेष्ठिना भणित—महो, महा-प्रपञ्चं कोपि न जानाति । ततः स्वमनसि चिन्तित—महो, ममाशुभ-कर्मोद्य समागतमश्वनिमित्तमवश्यं राजा शिरश्छेदं करिष्यति । यत् सुखं दुःखं वा मोक्तव्यं मे भविष्यति । एवं निश्चित्य स्वकुटुम्ब-माकार्य भणितं—मम यद् भाव्यं तद् भवतु तथापि दानपूजादिकं न त्यजनीयं भवद्भिः ।

तथा चोक्तम्—

" प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्ननिहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ॥ "

केनचिदुपहासेन भणितं—भो श्रेष्ठिन्, तव गुरुः समीचीनः । श्रेष्ठि-नोक्तं—स मायावी एकस्यापराधेन किं दर्शनहानिर्जाता । स एव स्व-पापेन गतः ।

तथा चोक्तम्—

" अशिष्यस्यापराधेन किं धर्मो मलिनो भवेत् ।
न हि भेके मृते याति समुद्रः पूतिगन्धताम् ॥ "

अन्यच्च—

" कालः सम्प्रति वर्तते कलियुगः सत्या नरा दुर्लभाः
देशाश्च प्रलयं गताः करभरैर्लोभं गताः पार्थिवाः ।
नाना चोरगणा मुषन्ति पृथिवीं आर्यो जनः क्षीयते
साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रविष्टः कलिः ॥ "

तदनन्तरं श्रेष्ठी झटिति चैत्यालयं गतः । देववन्दनां कृत्वा भणति—भो परमेश्वर, यदा ममायमुपसर्गो गच्छति तदान्नपानादि प्रवृत्तिर्नान्यथेत्युच्चार्य देवस्याग्रे संन्यासेन स्थितः । घोटकवृत्तान्तं सर्वमपि श्रुत्वा कुपितेन राज्ञा भणितं—सूरदेवस्य शिरश्छेदं विहायान्यत् किमपि न करणीयं । राज्ञः समीपस्थैरपि तथैव भणितं—" यथा राजा तथा प्रजा " इति ।

ततो यमदंडतलवरमाकार्य राज्ञा भणितं—रे यमदंड, मदीयशत्रु-सूरदेवस्योत्तमाङ्गं छेदयित्वा झटिति समानय मम समीपे ।

तथा च—

" धर्मारंभे ऋणच्छेदे कन्यादाने धनागमे ।
शत्रुघाताग्निरोगेषु कालक्षेपं न कारयेत् ॥ "

उत्पाटितकृपाणो यमदंडो यावदुपसर्गं करोति तावच्छासनदेवतया स्तंभितो यमदंडः । एतस्मिन् प्रस्तावे घोटकमारुह्य चैत्यालयं त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य देवस्याग्रे स्थितो विद्याधरपतिस्तदा श्रेष्ठिनो व्रतप्रभावं दृष्ट्वा देवैः पंचाश्चर्यं कृतमेतत्समस्तमपि वृत्तान्तं श्रुत्वा राज्ञाऽभाणि—

अहो, अर्थोऽनर्थस्य कारणं भवति । अर्थः कस्यानर्थो न भवति? भरतः समस्तधनलोभरतोऽनुजवधार्थं मनश्चक्रे । एवं निरूप्य झटिति चैत्यालयमागत्य करकमलं मुकुलीकृत्य च वदति राजा—भो श्रेष्ठिन्, क्षमां कुरु । अज्ञानिना यन्मया कृतं तत्सर्वं सहनीयं त्वया । श्रेष्ठिनापि यथोचितमुत्तरं दत्तं राज्ञः । एवमस्तु । अत्रान्तरे केनचिदुक्तं-भो श्रेष्ठिन्, गतोसि त्वं, परं देवैन रक्षितम् । श्रेष्ठिनोक्तं—तत्तथैव वरं, कालेन क्षयं तु कः को न गतः ।

तथा च—

" दुर्गं त्रिकूटं परिखा समुद्रो रक्षापरो वा धनदोस्य वित्तं ।
संजीवनी यस्य मुखे च विद्या स रावणः कालवशाद् विपन्नः ॥ "

तदनन्तरं श्रेष्ठी सर्वजनैः पूजितः प्रशंसितश्च । राज्ञोक्तं—जिनधर्मं विहायान्यस्मिन् धर्मेऽतिशयो न दृश्यते । तदनन्तरं स्वस्वपुत्रं स्वस्वपदे संस्थाप्य राज्ञा सुदंडेन, मंत्रिना सुमतिना, सूरदेवेन श्रेष्ठिना, वृषभसेनेनान्यैर्बहुभिश्च जिनदत्तभट्टारकसमीपे दीक्षा गृहीता । केचन श्रावका जाताः । केचन भद्रपरिणामिनश्च जाताः । राज्या विजयया, मंत्रिभार्यया गुणश्रिया, सूरदेवभार्यया गुणवत्याऽन्याभिश्च वह्वीभिश्चानन्तश्चार्यिकासमीपे दीक्षा गृहीता । काश्चन श्राविका जाताः । विद्युल्लतया भणितं—भो स्वामिन्, सूरदेवश्रेष्ठिव्रतमाहात्म्यं दृष्ट्वा मम दृढं सम्यक्त्वं जातं । एवं श्रुत्वाऽर्हद्दासेन विद्युल्लतां प्रशंस्य भणितं—हे प्रिये, तव सम्यक्त्वमहं श्रद्दधामि भक्त्येच्छामि, रोचे । अन्याभिः प्रियतमाभिः प्रशंसिता विद्युल्लता । ततः कुन्दलतयोक्तम्—

एतत्सर्वमसत्यं। त्वया तव सप्तभार्याभिश्च यद्दर्शनं गृहीतं तदहं न श्रद्धामि, नेच्छामि, न रोचे। एतद्वचनं श्रुत्वा राज्ञा मंत्रिणा चौरेण स्वमनसि चिन्तितं—दुर्जनस्य स्वभावोयम्। एवं निरूप्य राजा मंत्री चौरश्च स्वस्वगृहं प्रति गताः।

प्रभातसमये सूर्योदयो जातः। सूर्यायार्घं दत्वा नमस्कारं कृत्वा प्रभातकृत्यानि कृत्वा तदनन्तरं कतिपयजनैः राजामांत्रिणौ अर्हद्दासस्य गृहमागतौ। तदनन्तरं श्रेष्ठिना महानादरः कृतः।

तथा चोक्तम्—

"एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं प्रीतोस्मि ते दर्शनात्
का वार्ता परिदुर्बलोसि च कथं कस्माच्चिरं दृश्यसे।
एवं ये गृहमागतं प्रणयिनं संभाषयन्त्यादरात्
तेषां वेश्मसु निश्चलेन मनसा गन्तव्यमेव ध्रुवम्॥
दद्यात् सौम्यां दृशं वाचमक्षुण्णमथाननम्।
शक्त्या भोजनताम्बूले शत्रावपि गृहागते॥"

तदनन्तरं राज्ञा भणितं—भो श्रेष्ठिन्, रात्रौ त्वया तव भार्याभिश्च निरूपिताः कथा यया दुष्टया निन्दिता सा दुष्टा तवाग्रे मृत्युकारिणी भविष्यति। अत एव तां ममाग्रे दर्शय, यथा तस्या निग्रहं करिष्यामि।

तथा चोक्तम्—

"दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः॥"

एतद् राजवचनं श्रुत्वा कुन्दलतयाऽगत्य भणितं—भो राजन्,

साहं दुष्टा "एतैः सर्वैर्यदुक्तमेतेषां च यो जिनधर्म-व्रत निश्चयस्तमहं श्रद्दधामि, नेच्छामि, न रोचे।

राज्ञोक्तं-केन कारणेन न श्रद्दधासि? अस्माभिः सर्वैरपि रूपखुर-चौरः शूलमारोपितो दृष्टः। तत्कथमसत्यं निरूपयासि? तयोक्तं-भो राजन्, एतानि सर्वाणि जैनापत्यानि जिनमार्गं विहायान्यमार्गं न जानन्ति। नाहं जैना, न जैनपुत्री। मम मनासि जिनधर्म-व्रतप्रभावश्रवणान्महद् वैराग्यं जातम्।

प्रभातेऽवश्यमेव जिनदीक्षां गृह्णामीति मया प्रतिज्ञातमिति मनो जातमेतैः सर्वैर्जिनमार्गव्रतमाहात्म्यं दृष्टं श्रुतं तथाप्येते मूर्खा उपवासादिना शरीरशोषमुत्पादयन्ति, संसारभोगलम्पटत्वं किमपि न त्यजन्ति।

तथा चोक्तम्—

> गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम्।
> विक्रियन्ते न घंटाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः॥"

एतद् वचनं श्रुत्वा राजप्रभृतिभिः सा बहुधा स्तुता, पूजिता वन्दिता च। तदनन्तरं राज्ञा मंत्रिणा चौरेणार्हद्दासेनान्यैर्बहुभिश्च स्वस्वपुत्रं स्वस्वपदे संस्थाप्य श्रीगणधरमुनीश्वरसमीपे दीक्षा गृहीता। केचन श्रावका जाताः। केचन भद्रपरिणामिनो जाताः।

राज्या, मंत्रिभार्ययाऽर्हद्दासभार्याभिश्चान्याभिर्बह्वीभिरुदयश्री प्रवर्तिनीसमीपे दीक्षा गृहीताः। काश्चन श्राविका जाताः। उग्रतपः

कृत्वा ते सर्वे मोक्षं गताः । केचन स्वर्गं गताः । केचन सर्वार्थसिद्धिं गताः । इतीदं कथानकं गौतमस्वामिना राजानं श्रेणिकं प्रति कथितं । श्रुत्वा सर्वेषां दृढतरं सम्यक्त्वं जातम् ।

इमा सम्यक्त्वकौमुदीकथां श्रुत्वा भो भव्याः दृढतरं सम्यक्त्वं धार्यताम् । तेन भवभ्रमणविच्छित्तिर्भवति ।

तथा चोक्तम्—

" धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण ।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यते बन्धः ॥
धर्मोयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्थिनां पुत्रदः । .
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नाना विकल्पैर्नृणां
किं किं यन्नऽद्ददाति किन्तु तनुते स्वर्गापवर्गावपि ॥

इति श्रीसम्यक्त्वकौमुदी–कथा समाप्ता ।